साहित्यकार

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

[श्रीवाजपेयीजी की ५५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर समर्पित]

"साहित्यकार का सम्मान उसकी व्यक्तिगत निधि कभी नहीं बनती। वह तो तत्काल अपनी अर्चना का थाल सजाकर 'तमसो मा-ज्योतिर्गमय' के रूप में जनता-जनार्दन को तुरन्त समर्पित कर देता है।"

891.263 K 98 K
9646
24205

मुख्य वितरक :—

सरस्वती-सेवा-सदन

पी. रोड, कानपुर

Sh Ghulam Mohamad & Sons.
Book-Sellers, Publishers & Stationers
Govt., Order Suppliers,
Maisuma Bazar, SRINAGAR KASHMIR.

Acc. No ....
Cost Rs. 6.00
Date 30.12.64

सम्पादक-मण्डल
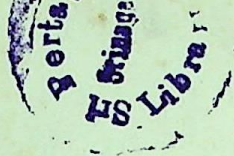
श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी
श्रीविनयमोहन शर्मा
श्रीकन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
श्रीअमृतलाल नागर

H 80.9
B 52 S

मूल्य ६-०-०

प्रकाशक—
श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी-अभिनन्दन-समिति
१०८/१२१, पी. रोड, कानपुर
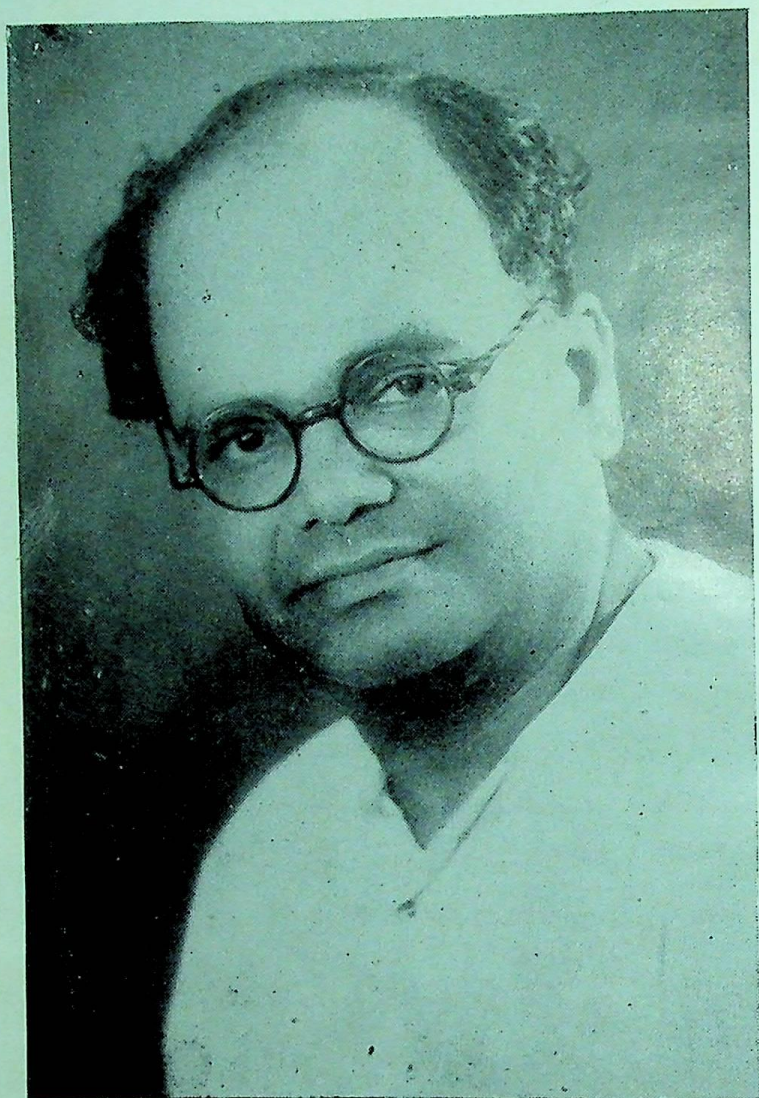
साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

निवेदन

लब्धप्रतिष्ठ कलाकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के उन अमर साधकों में हैं, जिन्होंने अपनी प्रोज्ज्वल प्रतिभा, अप्रतिम मेधा तथा अपने अनवरत परिश्रम से राष्ट्रभाषा हिन्दी के भण्डार को समृद्धिशाली बनाने में विशेष सहयोग प्रदान किया है। उनकी कृच्छ साहित्य साधना एवं निष्कलुष साहित्य-सेवा के उपलक्ष में १३ दिसम्बर सन् १९५३ को कानपुर नगर-निवासियों ने उनका सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन किया तथा उनको एक सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया। इस अभिनन्दन समारोह में नगर के प्रमुख साहित्यकारों एवं नागरिकों के अतिरिक्त सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, वाचस्पति पाठक, अमृतलाल नागर, सुन्दरलाल त्रिपाठी, विद्यावती कोकिल, जगदीश गुप्त 'विश्व', गङ्गाप्रसाद पाण्डेय, धर्मवीर भारती, ज्ञानचन्द्र जैन आदि दिल्ली, प्रयाग, लखनऊ तथा नागपुर आदि के साहित्यकारों ने उपस्थित होकर समारोह को विशेषरूप से सफल बनाया। अभिनन्दन समिति उपर्युक्त सम्मानीय साहित्यकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रकाशन तथा अभिनन्दन-समारोह को सम्पन्न करने में सर्वश्री (प्रो०) नन्ददुलारे वाजपेयी, (प्रो०) विनयमोहन शर्मा, उदयशङ्कर भट्ट, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', अमृतलाल नागर, नारायणप्रसाद अरोड़ा, (प्रो०) लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, (प्रो०) मदन-

मोहन वाजपेयी, (प्रो०) दीनवन्धु त्रिवेदी, (प्रो०) कैलाशनाथ शर्मा, के निर्देशन तथा सर्वश्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल रघुनाथ पाण्डेय 'प्रदीप' रामस्वरूप दुबे, श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल', यादवचन्द्र जैन, लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी, देवीप्रसाद 'धवन', नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, कैलाशनाथ त्रिपाठी एवं इच्छाशङ्कर दुबे आदि के सक्रिय सहयोग से अभिनन्दन समिति को बहुत सहायता प्राप्त हुई है। आप लोगों के सहयोग के अभाव में अभिनन्दन-समारोह का सम्पन्न होना अत्यन्त कठिन होता। अभिनन्दन-समिति उक्त समस्त महानुभावों की हृदय से अभारी है। समिति उन समस्त सज्जनों की भी हृदय से कृतज्ञ है जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अभिनन्दन-समारोह में आर्थिक अथवा अपर सहयोग प्रदान किया है।

अन्त में अभिनन्दन-समिति अभिनन्दन-समारोह तथा अभिनन्दन-ग्रन्थ में हुई समस्त त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करती है। वास्तविकता यह है कि यह कार्य हम साधनहीन व्यक्तियों के वश का नहीं था परन्तु ईश्वर की अनुकम्पा, गुरुजनों के आशीर्वाद तथा साहित्य प्रेमी बन्धुओं की सद्भावनाओं तथा सहयोग से अनेक बाधाओं के होते हुए भी सम्पन्न हो गया। समिति आशा करती है कि पाठकगण तथा साहित्य प्रेमी हमारी विवशता और सीमाओं को ध्यान में रखते हुए क्षमा प्रदान करेंगे।

विनीत—

शम्भूरत्न त्रिपाठी

संयोजक—

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी

अभिनन्दन समिति, कानपुर।

भारती-प्रतिष्ठान
१०८/१२१, पी. रोड,
कानपुर।

विषय-सूची

१-आशीर्वाद और शुभकामनाएँ

२-जीवन परिचय और साहित्य

३-साहित्य-समीक्षा

पृष्ठ

४-संस्मरण, अभिमत और शुभकामनाएँ

पृष्ठ

पृष्ठ

कृतज्ञता प्रकाशन

अभिनन्दन-समिति निम्नांकित महानुभावों के प्रति विशेष कृतज्ञ है जिन्होंने अभिनन्दन समारोह के लिए विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की है—

सर्वश्री गोपालप्रप्रसाद (खेतान लि०, कानपुर), सीताराम जैपुरिया, (जैपुरिया ब्रादर्स लि०), रामप्रसाद गुप्त, (बिहारी निवास, कानपुर), देव शर्मा, (शर्मा एण्ड कम्पनी, कानपुर), कैलाशनाथ अग्रवाल, (रूपनारायण रामचन्द्र, जनरलगंज, कानपुर), तारा अग्रवाल, एम० एल० सी०, गोविन्दनारायण गर्ग, मन्नीलाल नेवटिया, दुर्गाप्रसाद, दुर्गाप्रसाद जैन, रतनजी भगवानजी एण्ड को०, लाटूशरोड, कानपुर, किशोरचन्द्र कपूर, देवीसहाय वाजपेयी।

आशीर्वाद और शुभकामनायें

आशीर्वाद

—श्री 'सनेही'

सत्कृतियों की चले कहानी नगर-नगर में ;
ओज भरो रस भरो राष्ट्रभाषा के स्वर में ।
वाणी का बरदान लिये लेखनी भवानी-;
बाँटे मुक्ता सूक्ति हृदय की बनकर रानी ।
रूप अनन्वय का धरे रहो पूर्ण आह्लाद-से ।
श्रीभगवतीप्रसादजी श्रीभगवतीप्रसाद से ॥

श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के पुराने और मान्य लेखक हैं। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के कामों में मुझे उनके सहयोग प्राप्त करने के अवसर उस समय प्रायः मिला करते थे, जब उनका कार्यक्षेत्र अधिकतर प्रयाग था। उनकी प्रतिभा तथा उनके गुणों के प्रति मेरा सदा आदर और उनके व्यक्तित्व के प्रति स्नेह रहा है।

आजकल उन्होंने कानपुर को जो अपना निवासस्थान बनाया है इसे मैं कानपुर का लाभ और प्रयाग की हानि मानता हूँ; यद्यपि आधुनिक काल में हिन्दी के कार्य में विशेषकर काशी, प्रयाग और कानपुर का सम्मिलित प्रयत्न रहा है।

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी को अभिनन्दनग्रन्थ समर्पित करने का जो निश्चय किया गया है उसके लिये आप लोगों को बधाई।

श्रीअमरनाथ झा, पटना

श्रीभगवतीप्रसाद जी वाजपेयी को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। मैं उनकी साहित्य सेवा से भली भाँति परिचित हूं। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की समितियों में उनकी कार्यपटुता से मैं प्रभावित हुआ हूं। विशेषकर उनके उपन्यासों का मैं आदर करता हूँ। उन्होंने समस्त जीवन राष्ट्रभाषा के हित के लिये समर्पित किया है। ईश्वर उन्हें स्वस्थ और दीर्घायु रक्खे।

श्रीअम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लखनऊ

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी ने उपन्यास क्षेत्र में अच्छा काम किया है और इसलिये कानपुर के साहित्य-सेवियों और हिन्दीप्रेमियों ने उनके ५५ वें वर्ष पर उन्हें अभिनन्दनग्रन्थ समर्पण करने का आयोजन किया है। इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। कम से कम इतना तो हम अपने साहित्यिकों के लिये उत्साहवर्द्धन के लिये कर ही सकते हैं। इस आयोजन से हमारी पूर्ण

सहानुभूति है और हमारा आशीर्वाद है कि भगवतीप्रसादजी दीर्घजीवी ही न हों, कार्यक्षम रहकर अपनी साहित्यसाधना जारी रखें।

श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रयाग

मुझको यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि हिन्दी के प्रेमीजन पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी का अभिनन्दन-समारोह कर रहे हैं। वाजपेयीजी की सेवाए स्तुत्य हैं। उपन्यास की दुनियाँ में उन्होंने एक अरसे से सामने की एक कुर्सी अपनी बना ली है। अब तक सक्षमता से वे उस पर आसीन हैं। ऐसे शुभ कृत्यों से हिन्दी के लेखकों में स्फूर्ति आयेगी, वे और तल्लीनता से साहित्य के अङ्गों की पुष्टि करेंगे। मैं चाहता हूँ, वाजपेयीजी को इस अवसर पर सम्मान के स्मारक के रूप में अच्छी एक थैली भी भेंट की जाय। अन्य सुविधाओं का भी आधान-समाधान आवश्यक है।

श्रीराहुल सांकृत्यायन, मसूरी

यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि समिति वाजपेयीजी के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने जा रही है। वाजपेयीजी कवि और कथाकार दोनों की प्रतिभा रखते हैं। लेकिन उन्होंने अपने लिये कथा के क्षेत्र को अपनाया, और हमारे साहित्य को इसके बारे में गुण और मात्रा दोनों में बहुत समृद्ध किया। अब भी उनकी लेखनी अनवरत चलती जा रही है। हमारी कामना है वह चलती ही रहे। श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयीजी के साथ कितनी ही बार मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। मानव की तरह वह बड़े ही सरल और हँसमुख हैं। ऐसे पुरुष की स्मृति एक बहुमूल्य थाती होती है।

श्रीहरिभाऊ उपाध्याय, मुख्यमन्त्री अजमेर

हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी की साहित्य सेवाओं का आप अभिनन्दन कर रहे हैं, यह हर्ष का विषय है।

श्रीवाजपेयीजी से मेरा बहुत थोड़ा परिचय रहा है; परन्तु वे एक अर्से से उपन्यास और कहानियाँ लिख रहे हैं। उनके कई ग्रंथ विभिन्न साहित्यिक परीक्षाओं में भी रहते हैं। यह उनके साहित्य में सात्विक तत्व होने का प्रमाण है। साहित्य में सात्विक तत्वों को पूर्ण प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल सात्विकता का ह्रास हो रहा

है। आशा है, वाजपेयीजी का अभिनन्दन हमें इस परम सत्य की प्रेरणा देगा। इस अनुष्ठान के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

श्रीद्वारकाप्रसाद मिश्र, मध्यप्रान्त

वाजपेयी जी का हिन्दी भाषा पर प्रभुत्व है। उनकी एक निजी शैली है। वे स्वाधीनचेता विचारक हैं। स्वर्गीय महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के समान ही अक्खड़ हैं। मेरे मन में उनकी स्मृति उनके पुरुषार्थ से अभिन्न है। कौन इन्कार करेगा कि उन्होंने जो कुछ पाया है और जितना भी हिन्दीसंसार को दिया है वह पौरुष का ही फल है? यदि हम हिन्दी के ऐसे पुरुषार्थी सेवकों का आदर न करेंगे तो हिन्दीसाहित्य की प्रगति में बाधा पहुँचेगी।

मैं श्रीवाजपेयीजी का इस अवसर पर हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें चिरायु करे, जिससे वे हिन्दी-साहित्य की अधिकाधिक सेवा कर सकें।

श्री के० एम० मुन्शी, राज्यपाल उत्तरप्रदेश

"भगवतीप्रसादजी की कला यशस्वी और अमर हो, यही मेरी प्रार्थना है।"

श्रीलालबहादुर शास्त्री, मन्त्री यातायात विभाग दिल्ली

श्रीभगवतीप्रसादजी वाजपेयी हिन्दी के पुराने सेवी और कलाकार हैं। उनका आदर-सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। मैं श्रीवाजपेयीजी के दीर्घ-जीवन एवं सतत् साहित्य-सेवा की हृदय से कामना करता हूँ।

श्रीश्रीप्रकाश राज्यपाल, मद्रास

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी की साहित्य-सेवा के उपलक्ष में अभिनन्दन ग्रंथ तैयार कर रहे हैं। मेरी शुभ-कामना है कि आप अपने प्रयत्न में सर्वथा सफल हों। श्रीवाजपेयीजी को मेरा भी प्रशंसात्मक अभिनन्दन पहुँचा दीजियेगा।

श्रीगुलाबराय एम० ए०, आगरा

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वाजपेयीजी को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया जा रहा है। कथा-साहित्य में वाजपेयीजी का एक विशेष व्यक्तित्व है। उनका सम्मान होना सर्वथा उचित है।

श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी, खँडवा

पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी की क़लम पर हिन्दीजगत में कौन है जिसे न गर्व हो। मैं तो उन्हें ३२-३३ वर्षों से जानता हूँ। उन दिनों वे और पं० विष्णुदत्त शुक्ल, श्रद्धेय अरोड़ा जी के दैनिक 'विक्रम' में अपनी लेखनी का कौशल दिखाते थे। उसके पश्चात् मैंने उनके कलाकार को पढ़ा, दुलराया और सम्मान किया। मैं आपके आयोजन के साथ हूँ।

श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, बलिया

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्रीभगवतीप्रसादजी वाजपेयी की ५४ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में आपकी समिति ने उन्हें एक वृहत् अभिनन्दन-पत्रिका समर्पित करने का आयोजन किया है। श्रीवाजपेयीजी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा विविध प्रकार के साहित्य का सृजनकर जो हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की है उसके लिये हममें से प्रत्येक हिन्दीप्रेमी उनका सच्चे हृदय से आभारी है और आगे भी रहेगा। हमें उन्होंने अनेक ग्रंथरत्न दिये हैं।

उनकी ५४वीं वर्षगाँठ के इस शुभ अवसर पर मैं उनका सहर्ष अभिनंदन करता हूँ। मैं उनका चिरंजीवी होने की हार्दिक शुभकामना प्रकट करता हूँ और आशा भी करता हूँ कि वे इसी प्रकार लगन के साथ हमारी राष्ट्रभाषा का भंडार भरते रहने के लिये सदा तत्पर रहेंगे।

श्रीश्रीकृष्णदत्त पालीवाल, आगरा

श्रीभगवतीप्रसाद जी वाजपेयी उन साहित्यसेवियों में से हैं जिनकी कृतियों से हमारी मातृभाषा और देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी के गौरव की वृद्धि हुई है। उनकी कृतियों में मौलिकता, सहृदयता और सहानुभूति का संगम है। कला, शिक्षा और मनोरंजन तीनों का जो सुन्दर समन्वय वाजपेयीजी की रचनाओं में पाया जाता है वह सर्वत्र नहीं मिल सकता। जीवन के प्रति वाजपेयीजी का दृष्टि-कोण आशा और अनुराग का है, जो एक ऐसा अमर और शाश्वत सत्य है कि वह अकेला ही वाजपेयीजी की कृतियों को स्थायित्व प्रदान करता है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह वाजपेयीजी को दीर्घायु करे, जिससे वह अपने देश, समाज तथा साहित्य की और भी अधिक सेवाएँ कर सकें।

श्रीबालकृष्ण शर्मा 'नवीन', कानपुर

पंडित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी मेरे पुराने मित्र हैं। प्रायः मैं तीस वर्षों से उन्हें जानता हूँ। उनके प्रति मेरे हृदय में स्नेह और आदर है। जिन प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने साहित्य-सेवा की है उन परिस्थितियों में साधारणतः लोग टूट जाते हैं। वाजपेयीजी का जीवन कष्टों में बीता है। फिर भी उनका हृदय मानवप्रेम से भरा है। यह बड़ी बात है कि कष्टों में जीवनयापन करनेवाले जन बहुधा कटु हो जाते हैं। भगवतीप्रसादजी इस नियम के अपवाद हैं।

आपने उनके अभिनन्दन का आयोजन किया है, यह हर्ष की बात है। इस कार्य में मेरी सह-अनुभूति आपके साथ है।

भगवान् पंडित भगवतीप्रसादजी वाजपेयी को शतंजीवी करें और उन्हें अधिकाधिक सेवा करने का अवसर दें—यही मेरी प्रार्थना है।

जीवन-परिचय और साहित्य

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी : जीवन-परिचय

कलाकार अपने युग के साथ अवतरित होता है, और उसकी कला उस युग के लिये न्योछावर होती है। पं० भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी इसी कोटि के कलाकार हैं। इसीलिये आज हिन्दी-जगत् उनकी कला के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर उनका सम्मान कर रहा है।

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी का जन्म बुधवार, अश्विन शुक्ल ७ सं० १९५६ को कानपुर के अन्तर्गत मंगलपुर ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम पं० शिवरतनलाल था। वाजपेयीजी के मामा स्व० पं० जगन्नाथ मिश्र भी मंगलपुर में ही रहते थे और अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। उन्होंने धार्मिक ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था। उन्हीं के पद-चिह्नों पर चलकर वाजपेयीजी के भ्राता स्व० रामभरोसे वाजपेयी ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। इन दोनों व्यक्तियों का वाजपेयीजी के बालजीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

वाजपेयी जी की प्रारम्भिक शिक्षा मंगलपुर ग्रामीण पाठशाला में ही हुई। प्रारम्भ से ही वे होनहार संस्कृत श्लोकों के धाराप्रवाह पाठ से अपने शिक्षकों को आश्चर्य चकित कर देते थे। मामा तथा ज्येष्ठ भ्राता के आकस्मिक निधन से वाजपेयीजी का विद्यार्थी जीवन संकटापन्न हो गया। वाजपेयीजी के पिता गाँव में खेती करते थे; स्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिये उन्हें विवश होकर हिन्दी मिडिल उतीर्ण करने के पश्चात् अपनी ग्रामीण पाठशाला में ही शिक्षक का कार्य करना पड़ा। इस प्रकार जो समय विद्याध्यन का था वह जीवन-संग्राम में लग गया। ऐसी परिस्थिति में श्रीअमृतलाल नागर के कथनानुसार "आवश्यकतावश घर के गाय, भैंस, बकरियाँ चराईं, खलिहानों में दांय और उड़नई का काम किया, पैसों की थैली लाद कर साहूकारी की। उसके बाद गाँव के प्राइमरी स्कूल की अध्यापकी की, शहर की लाइब्रेरी में पन्द्रह रुपये मासिक पर लाइब्रेरियन रहे, किताबों का गट्ठर कंधे पर लाद कर बेचा, बीबी के गहने

बेचकर दूकानदार बने, तब चोरी हो गई। बेंगाल बैंक की खज़ांचीगीरी के अपरेंटिस हुये, कम्पाउंडर बने, प्रूफरीडर बने, सहकारी सम्पादक हुए, फिर सम्पादक बने। रोटी की लड़ाई में एक साधारण सिपाही बनकर वे आये और आज भारतीय जनसमाज के नामी जनरलों में उनका स्थान है। लगभग तीन सौ कहानियाँ, एक दर्जन उपन्यास, नाटक, निबन्ध, काव्य, कोर्स की किताबें रेडियो-वार्ताएँ, फ़िल्म के कथानक-संवाद लिखकर एक अपढ़ किसान के बेटे ने कितना नाम कमाया है! वाजपेयी हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन की साहित्य परिषद के सभापति होने का गौरव भी प्राप्त कर चुके हैं!"

डॉ० उदयनारायण जी तिवारी (प्राध्यापक इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने लिखा है—

"पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी से गत तीन दशाब्दियों से मेरा घनिष्ठ सम्पर्क है। इस दीर्घकाल में मुझे उनके जीवन के उतार-चढ़ाव को देखने का अवसर मिला है। वाजपेयीजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके निर्माण में, उनके मित्रों तथा सहायकों का बहुत कम हाथ रहा है। उन्होंने अपने ऊबड़-खाबड़ कार्य को स्वयं प्रशस्त किया और उस पर वे अबाध गति से आगे बढ़ते गये हैं। उन्होंने परिस्थिति से संघर्ष किया और निरन्तर स्वाध्यायों से अपने को इस योग्य बनाया, जिससे वे आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के सर्जन करनेवालों में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकें। इस स्वाध्याय का एक लम्बा इतिहास है और वह तभी प्रकट हो सकता है जब वाजपेयी जी अपने किसी उपन्यास के नायक के रूप में अवतरित हों अथवा अपनी आत्म-कथा से हिन्दी-साहित्य के इतिहास को समुज्वल करें।"

वाजपेयीजी विनोदप्रिय साहित्यिक हैं। अपनी मित्र-मंडली में वह अत्यन्त लोकप्रिय हैं। उनमें लेखन-शक्ति के साथ-साथ भाषण-शक्ति भी है। अपने जीवन के उठान के साथ उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा को भी मांजा है और उसे उन्नतिशील बनाया है। उनके साहित्यक-जीवन में जो प्रवाह, जो चमत्कार और जो शालीनता है वह उनकी अर्जित सम्पत्ति है और उनके साहित्य की स्थायो निधि।"

वाजपेयीजी सन् १९२० से निरन्तर साहित्य सेवा करते आ रहे हैं। इस दीर्घकाल में आपने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। जीवन के भयंकर संघर्षों से संघर्ष करते हुए भी आपकी साहित्य-साधना अबाध गति से

चलती रही है। आपकी साधना के तीन क्षेत्र हैं—उनका ग्राम मंगलपुर, कानपुर और प्रयाग। मंगलपुर में पं० बांकेलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आने पर उन्हें बीज रूप से जो साहित्यिक प्रेरणा प्राप्त हुई, वह कानपुर के साहित्यिक वातावरण में प्रस्फुटित हुई और प्रयाग में आकर फलीभूत हुई।

वाजपेयीजी अपने जीवन की विविधता के कारण ही इतने सफल मार्मिक कलाकार हो गये हैं। वे सर्वथा मौलिक कलाकार हैं। अपनी धारणाओं तथा मान्यताओं के अनुरूप वास्तविक जीवन के उपासक हैं। आपका कथन है—"मैं सत्य के सौन्दर्य का पुजारी हूँ। मधु का ही नहीं, कटु सत्य का भी। सत्य का ही दर्शन, चिंतन और मंथन मैं साहित्य में करना और देखना चाहता हूँ।" सत्य का अनुसंधान ही उनके साहित्य में बिखरा मिलता है। वे शुद्ध मानवता के उपासक हैं। इसी से वहाँ कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता का महत्व अधिक है। करुण वेदना और उनसे उमड़ती हुई सहानुभूति—यही उनकी कला का अमर संदेश है। वाजपेयी जी आजकल मसिजीवी होकर साहित्य की असाधारण सेवा कर रहे हैं।

चौवन वर्ष के ऐसे महान् कलाकार आदरणीय पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के साहित्यिक अभिनन्दनोत्सव के उपलक्ष में उनकी अभ्यर्थना करते हुये हम सब लोग उनके दीर्घायु और स्वस्थ होने की शुभकामना प्रकट करते हैं।

वाजपेयीजी का साहित्य

१—उपन्यास

प्रेमपथ (१६२६), मीठी चुटकी (१६२८), अनाथ पत्नी (१६२८), त्यागमयी (१६३२), लालिमा (१६३४), प्रेम-निर्वाह (१६३४), पतिता की साधना (१६३६), पिपासा (१६३७), दो बहनें (१६४०), निमंत्रण (१६४२), गुप्तधन (१६५०), चलते-चलते (१६५१), पतवार (१६५२), धरती की साँस तथा मनुष्य और देवता (१६५४)।

२—कहानी संग्रह

मधुपर्क (१६२६), दीपमालिका (१६३१), हिलोर (१६२६), पुष्करिणी (१६२६), खाली बोतल (१६४०), मेरे सपने (१६४०), ज्वार-भाटा

(१६४०), कला की दृष्टि (१६४२), उपहार (१६४३), अंगारे (१६४४), उतार-चढ़ाव (१६५०)।

३—नाटक

छलना।

४—कवितासंग्रह

ओस के बूंद।

५—बाल साहित्य

आकाश-पाताल की बातें, बालकों के शिष्टाचार, शिवाजी, बालक प्रह्लाद, बालक ध्रुव, हमारा देश, नागरिक शास्त्र की कहानियाँ, प्रौढ़ शिक्षा की योजना।

६—सम्पादित ग्रंथ

प्रतिनिधि कहानियाँ, हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ, नवकथा, नवीन पद्य-संग्रह, युगारम्भ।

साहित्य-समीक्षा

वाजपेयीजी एक सफल नाटककार

ले०—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी०

पुराने और नये दृष्टिकोणों का "छलना" में समन्वय हुआ है। प्रत्येक पात्र के मनोविकारों का सहानुभूतिपूर्वक और मार्मिक चित्रण हुआ है। भाषा भी परिमार्जित, सुन्दर, सरस और प्रायः सुबोध है...ऐसे नये, कठिन और कोमल काम के करने में वाजपेयीजी को जितनी सफलता मिली है वह सर्वथा सराहनीय है। आपकी साहित्यिक तपस्या और विदग्धता की यह सुन्दर कलिका है।

रूपकों का अस्तित्व संसार के सभी साहित्यों में न्यूनाधिक पाया जाता है। सबने रूपक को साहित्य का एक रुचिर अंग माना है। कुछ विद्वानों का मत है कि रूपक की सृष्टि भारतवर्ष ही में सबसे पहले हुई। ऋग्वेद आदि संहिताओं में अनेक स्थलों पर रूपक पाये जाते हैं। उस पुराने काल से आज तक इस देश में रूपकों का आदर होता आया है। महाभारत और पुराणों में छोटे और बड़े, एक-से-एक सुन्दर रूपक मिलते हैं, जिनको पढ़कर सहृदय पाठक चकित और विभोर हो जाते हैं, तथापि उनमें उसका स्थान गौण था।

पाणिनि, पातंजलि और नाट्य-शास्त्रकार भरत के समय तक अनेक रूपक रचे गए, किन्तु उसके व्यवस्थित, सुसंस्कृत और प्रस्फुटित रूप का आरम्भ अश्वघोष ही से माना जाता है। उसका 'सारिपुत्र प्रकरण' उसके पश्चात् आनेवाले साहित्यकारों के लिए पथ-प्रदर्शक हो गया। यदि उसके समय के पूर्व नहीं तो उसके समय में 'रूपक' का स्थान गौण से विशेष हो गया। यद्यपि हमारे अगणित पुराने ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं, फिर भी नाटकों और रूपकों का हमारे यहाँ अभाव नहीं है।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्णमिश्र ने सुप्रसिद्ध रूपक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की रचना की। तेरहवीं शताब्दी में यशपाल ने 'मोहराज-पराजय' चौदहवीं में वेंकटनाथ ने 'संकल्प-सूर्योदय' और सोलहवीं में कवि कर्णपूर ने 'चैतन्य-चन्द्रोदय' और गोकुलनाथ ने 'अमृतोदय' की रचनाएँ कीं। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में भी 'विद्यापरिणयन' और 'जीवनानन्द' नामक रूपकों की रचना हुई।

रूपक की एक तो व्यापक और दूसरी विशिष्ट परिभाषा है। संस्कृत-काव्य के आचार्यों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है। एक तो श्रव्य और दूसरा दृश्य। दृश्य वे होते हैं जिनका अभिनय किया जा सके। इस परिभाषा के अनुसार कठपुतली के खेल, मूक अभिनय, भाण और रंगमंच पर खेले जानेवाले नाटक आदि भी रूपक के ही अंग माने गए हैं। इसी व्यापक अर्थ में संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग प्रायः होता है। तथापि रूपक की एक विशिष्ट और संकुचित परिभाषा भी की जाती है। इसके अनुसार रूपक उपमा का ही एक विशद रूप है। भेद केवल इतना है कि उपमा क्षणिक, चंचल, तरल और भावना-प्रधान है, किन्तु रूपक कल्पनात्मक होते हुए भी स्थिर, अभिनय-योग्य एवं तर्कशील है। तर्क-गर्भित होना उसका विशेष लक्षण है। इस परिभाषा के पोषकों का कहना है कि पद्य के नीहारा-च्छन्न वायवीय तारल्य को स्थिरता प्रदान करने एवं गद्य की रुक्षता का निवारण करने के लिए ही रूपक की सृष्टि हुई है। कल्पना के सौंदर्य को तर्क के पाश में लपेट लेने से रूपक का आविर्भाव हो जाता है।

इस प्रकार की रचनाएँ यूरोप में भी पुराने समय से होती रही हैं। तेरहवीं शताब्दी में फ्रांस में इस प्रकार के साहित्य की अच्छी उन्नति हुई। 'रोमाँ दलारोज़' नामक रूपक सैकड़ों वर्षों तक बड़े आदर के साथ पढ़ा जाता

था। फ्रांस से प्रभावित होकर इंगलैंड में भी उसकी वृद्धि हुई। स्पेन्सर की 'फ़ेयरीक्वीन' और बनियन का 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' उसके अच्छे प्रमाण माने जाते हैं। बेन जान्सन आदि आलोचकों की राय में स्पेन्सर के छन्द और भाव दोनों अरुचिकर हैं, किन्तु महाकवि मिल्टन स्पेन्सर को गम्भीर कवि और द्रष्टा मानते हैं। लेम्ब उसे 'कवियों का कवि' और डाउडन उसे 'गुरू' की पदवी देते हैं। योरप में अनेक कारणों से रूपक की परिपाटी का ह्रास हो गया, किन्तु अभाव नहीं हुआ। इस संकुचित परिभाषा को दृष्टि में रखकर उपर्युक्त संस्कृत ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है; अन्यथा वे अपना विशेषत्व खोकर साधारण नाटक श्रेणी में रख दिये जाते।

हिन्दी साहित्य में भी रूपक पहले ही से पाया जाता है। संस्कृत-साहित्य का तो प्रभाव उस पर पड़ा ही है, किन्तु वह फ़ारसी साहित्य से भी पूर्णतया प्रभावित हुआ है। उसका सूक्ष्म रूप हमें कबीरदास आदि संतों की रचनाओं एवं वैष्णव कवियों के काव्य में अनेक स्थलों में मिलता है। किन्तु जायसी के पद्मावत में उसका पूर्ण विकास हुआ है। कुछ साहित्य-सेवियों की सम्मति में सारा वैष्णव-साहित्य ही अन्ततोगत्वा अपूर्व, स्थायी और व्यापक रूपक है। सूफ़ी कवियों ने अपने सिद्धान्तों को सुगम और रोचक बनाने के लिए रूपकों का ऐसा आश्रय लिया कि हिन्दी में साहित्य का एक विशेष विभाग निर्मित हो गया। किन्तु हिन्दी के साहित्यकारों ने गद्य अथवा नाटकों की शैली में रूपकों की रचना की चेष्टा ही नहीं की। वस्तुत: हिन्दी के पूर्व अथवा माध्यमिक काल में गद्य की कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं हुई। कुछ संस्कृत नाटकों का अनुवाद अवश्य किया गया, किन्तु नये और मौलिक नाटक लिखने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ। अनुवादित नाटकों में 'प्रबोध-चन्द्रोदय' भी है, जिसका अनुवाद ब्रजवासीदास ने किया।

हिन्दी के आधुनिक काल में बाबू हरिश्चन्द्र ने नाटकों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने कई संस्कृत नाटकों के अनुवाद किये और कुछ स्वतन्त्र नाटक भी रचे। उन्होंने रूपक भी बाँधे हैं, किन्तु उनमें उनको बहुत सीमित सफलता मिल सकी। उनके समय से आज तक दर्जनों नाटक लिखे गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी-नाटककारों को अधिकतर पौराणिक अर्द्ध-ऐतिहासिक और ऐतिहासिक कथानक अधिक प्रिय और रुचिकर हैं। इधर

कुछ गिने-चुने साहित्य-प्रेमियों ने सामाजिक और समस्या-गर्भित नाटकों की भी रचना आरम्भ कर दी है, किन्तु ऐसे नाटकों की संख्या बहुत कम है। या तो सामाजिक विषय कहानी, उपन्यासों आदि के लिये ही उपयुक्त समझे जाते हैं, अथवा नाटककारों का ध्यान यथेष्ट रूप से उनकी ओर गया ही नहीं। सामाजिक नाटककारों ने या तो पूर्व-परिचित पातिव्रतधर्म की प्रतिष्ठा की है, या मद्यपान, जातपाँत के दुष्परिणामों के चित्रों अथवा यूरोपीय दृष्टिकोण से कल्पित समस्याओं की रचना की है। आशा है कि ऐसे नाटकों की दिनों-दिन वृद्धि होती रहेगी। किन्तु रूपकों का हिन्दी में अभी तक अभाव ही है। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए ही श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'छलना' की रचना करके पथ-प्रदर्शन किया है।

'छलना' के पात्रों, कथानक और रीति में वाजपेयीजी ने नवीनता रखी है। संस्कृत रूपकों के रचयिता धर्म अथवा सम्प्रदाय-विशेष के उत्कर्ष को ही अपना ध्येय मानते थे। हाँ, बाबू हरिश्चन्द्र ने राजनीतिक पुट देने की अवश्य चेष्टा की है; किन्तु न तो उनकी इन रचनाओं में गंभीरता है और न कोई स्थायी गुण ही है। वाजपेयीजी ने 'छलना' में बाबू साहब की रचनाओं के दोषों से बचने की चेष्टा की है और उनको सफलता भी मिली है। रूपकों में एक दोष यह भी होता है कि वे प्राय: गरिष्ठ और उबा देनेवाले होते हैं। इसी कारण यूरोप में उस परिपाटी का ह्रास हो गया। वाजपेयीजी ने इस दोष को भी बचाया है। आपके रूपक में नवीनता, कौतूहल, विचार, काव्य और रोचकता का समाहार है। इन बातों को सोचकर 'छलना' का महत्व और बढ़ जाता है। आपने अभिनय के योग्य उसे बनाने में भी कोई कसर उठा नहीं रखी।

'छलना' में किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय अथवा धर्म-प्रवर्तक की श्रेष्ठता स्थापित करने एवं दुरूह दार्शनिक सिद्धान्तों को सुगम बनाने या प्रतिपादन करने की चेष्टा नहीं की गई है। यह अवश्य स्पष्ट है कि इस रूपक में आदर्श-वाद की प्रधानता और महत्वपूर्ण आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। किन्तु यह भी इतनी कुशलता से किया गया है कि वह खटकता नहीं। आदर्शवादी होने और साहित्य में आदर्शवाद की आवश्यकता मानने के कारण वाजपेयीजी की रचना में आदर्शवाद की प्रधानता अनिवार्य-सी हो गई।

किन्तु आदर्शवाद की उपासना में वाजपेयीजी इतने मुग्ध नहीं हुए कि उन्होंने यथार्थ अथवा वस्तुवाद के साथ अन्याय किया हो। यथार्थवाद का चित्रण भी आपने बड़ी सहृदयता और सहानुभूति के साथ किया है। आपका तात्पर्य शायद यह है कि कल्पना जब तक आदर्श की छत्र-छाया में फलती-फूलती रहती है और कामना आदर्श की गोद में खेलती रहती है, तब तक वे कल्याण के साथ रहती हैं। किन्तु जब वे आदर्श को छोड़कर खुल खेलने के लिए चल देती हैं तब वे बिना लंगर अथवा पतवार की नौका की तरह हो जाती हैं; मानव-व्यापार के झंझावात एवं जीवन-सागर की निष्ठुर लहरों से प्रताड़ित होकर या तो नष्ट ही हो जाती हैं या जीर्ण-शीर्ण होकर व्यर्थ हो जाती हैं। दोनों ही दशाओं में परिणाम शोचनीय ही होता है; जीवन दु:खमय और व्यर्थ हो जाता है।

'छलना' में किसी आदर्श-विशेष की रूप-रेखा नहीं रखी गई। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह भोग-विलास, आमोद-प्रमोद और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति-मात्र से ऊपर है। उसमें आत्मविश्वास और आत्म-गौरव है। किन्तु कोरा आदर्श भी छलना से ख़ाली नहीं। आदर्श की प्राप्ति और उसकी अनुभूति के लिए यह उचित और सम्भवत: आवश्यक है कि जीवन के अन्य अंगों के पारस्परिक सम्बन्ध का भी ध्यान रखा जाय। जो कामना, कल्पना आदि जीवन को अन्त में विषमय कर देने की शक्ति रखती हैं, वे ही उसको सुखमय बनाने की क्षमता भी रखती हैं। इस रहस्य के ज्ञान के बिना जीवन सार्थक नहीं होता और सच्चा सुख नहीं मिलता। इसका सम्बन्ध ग़रीबी या अमीरी से नहीं है। इसकी स्वतन्त्र सत्ता है और इसमें आत्मानन्द है।

उपर्युक्त सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में वाजपेयीजी ने कथानक की अवहेलना नहीं की है। चरित्र-चित्रण, मानसिक व्यापारों और भावों का भी आपने ध्यान रखा है। कथानक रुचिकर और विनोदवर्द्धक हैं। उसके पात्र प्राय: नवीन हैं। 'कल्पना', 'कामना' और 'निद्रा', तीनों स्त्रियाँ भिन्न मात्राओं में नवीन दृष्टिकोण रखती हैं, यद्यपि उनकी अन्तरात्मा में भी आदर्श की चिनगारी छिपी हुई है। केवल ग़रीब 'चम्पी' पुराना दृष्टिकोण रखती है। इसी प्रकार 'विलासचन्द्र' और 'नवीन' आधुनिक दृष्टिकोण रखते हैं। 'बलराज' आदर्शवादी होता हुआ भी नवीन दृष्टिकोण से वंचित नहीं है। पुराने और

नये दृष्टिकोणों का 'छलना' में अच्छा समन्वय हुआ है। प्रत्येक पात्र के मनोविकारों का सहानुभूतिपूर्वक और मार्मिक चित्रण हुआ है। भाषा भी परिमार्जित, सुन्दर, सरस और प्राय: सुबोध है।

'छलना' में चार गीत भी हैं। वे भी भावपूर्ण और चुटीले हैं। उनका प्रयोग भी उपयुक्त स्थानों पर किया गया है। वे आलाप के भाव को बड़ी सुन्दरता से प्रतिबिम्बित और प्रकाशित करते हैं। काव्य की दृष्टि से भी वे अच्छे हैं और मनोवृत्ति और सिद्धान्त की रक्षा अच्छी तरह करते है।

यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि 'छलना' में किसी प्रकार की कमी नहीं। सर्वथा दोषहीन रचना तो शायद युग में एक ही आध होती हैं। 'छलना' में भी इधर-उधर तराश और माँजने की गुंजायश है। किन्तु ऐसे नये, कठिन और कोमल काम के करने में वाजपेयीजी को जितनी सफलता मिली है वह सर्वथा सराहनीय है। आपकी साहित्यिक तपस्या और विदग्धता की यह सुन्दर कलिका है। कहानी, उपन्यास और कविता लिखने में तो आपने अच्छा स्थान प्राप्त कर ही लिया है। हिन्दी साहित्य के प्रेमियों से आशा है कि वे इस नये क्षेत्र में भी आपका स्वागत करते हुए आपके प्रयत्नों का यथेष्ट आदर और उत्साह का प्रवर्द्धन करेंगे।

वाजपेयीजी की कहानियाँ

लें०—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

वाजपेयीजी की रचनाओं की भूमि एकान्तिक है। कला के विकास के लिए यह भूमि बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। एक अवस्था विशेष, एक घटना विशेष, किसी मनुष्य विशेष अथवा उसकी मानसिक प्रवृत्ति विशेष को उसके आस-पास की चौहद्दी से अलग निकालकर और फिर उस टुकड़े को असाधारण योग्यता के साथ सजाकर दर्शक या पाठक के सामने प्रस्तुत कर देना वाजपेयीजी की सिद्धहस्त कला का नमूना है, जो उनकी इन कहानियों में पाई जाती है। वाजपेयीजी का विवेक पर्याप्त परिपुष्ट है और जहाँ तक निर्माण की सुघरता का प्रश्न है, हिन्दी कथा-साहित्य में निश्चय ही वे उच्चतम स्थान के अधिकारी हैं।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के प्रमुख ख्यातिप्राप्त कथाकार हैं। उनका परिचय कराने की आवश्यकता मुझे नहीं। उनकी वृत्तियाँ

हिन्दी की संपति हो चुकी हैं, वे किसी की रुचि या अरुचि पर आश्रित नहीं रहीं। मैं यह मानता हूँ कि व्यावहारिक समलोचना का मुख्य कार्य यही है कि वह प्रत्येक कृति का अपना सौंदर्य, जो कुछ उसमें है, उद्घाटित कर दे और इस दृष्टि से आलोचक अपने द्वारा उठाये हुए काम के दायरे में बंधा होता है। पर मैं यह भी मानता हूँ कि प्रत्येक समीक्षक अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रख सकता है, और इस हैसियत से वह अपनी रुचि के अनुसार अपना निजी वक्तव्य और सन्देश भी सुना सकता है। उसका यह दोहरा कार्यकलाप अथवा व्यक्तित्व ध्यान देने योग्य है। एक में वह मुख्यत: साहित्य और कलाओं की विभिन्न कृतियों का अनुशीलन और विश्लेषण करता तथा उनके गुण-दोषों को सामने रखता है और दूसरे में वह अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्र होकर जो चाहता पढ़ता और जो चाहता लिखता है। किसी कृति की समीक्षा करते हुए तो उसे अपनी स्वतन्त्र रुचि का विज्ञापन करने का अधिकार नहीं होता, पर अन्य समयों में वह ऐसा कर सकता है। कभी-कभी समीक्षक के इस दोहरे आचरण से भ्रान्ति भी फैलने की सम्भावना रहती है, किन्तु इस कारण वह अपनी स्वतन्त्र अभिरुचि का समर्पण नहीं कर सकता। हाँ, किसी विशेष कला रचना की विवेचना करते समय उसे अपनी यह अभिरुचि काम में नहीं लानी चाहिए।

अस्तु मेरी व्यक्तिगत अभिरुचि ऐसी नहीं है कि मैं हठात् वाजपेयीजी की रचनाओं की ओर आकृष्ट होता। सच तो यह है कि वह सारा साहित्य जो व्यक्तिगत, चारित्रिक विशेषताओं, असाधारण परिस्थितियों, एकान्तिक मनोविज्ञान और सामाजिक निष्क्रियता और उद्देश्यहीनता का निरूपक है, चाहे वह साहित्यिक दृष्टि से कितना ही प्रशस्त और ललित क्यों न हो, मेरी अपनी रुचि के अनुकूल नहीं। कला जब अपना लक्ष्य सूक्ष्म मानसिक प्रेरणा का चित्रण अथवा अनोखी स्थितियों और मनोदशाओं का प्रदर्शन बना लेती है, तब वह लोक-प्रिय न रहकर वैज्ञानिक और दुरूह बन जाती है। और जब कलाकार अपने युग की अथवा किसी अन्य युग की किंकर्त्तव्यज्ञान-रहित, करुण और निष्प्राण सामाजिक चेष्टाओं और आदर्शों का खाका खींचने लगता है तब वह कला की दृष्टि से कितना ही समृद्ध क्यों न हो, मेरे विचार से सामूहिक अभ्युदय का क्षेत्र छोड़कर बड़ी हद तक इतिहास की सामग्री जुटाने लगता है। वह कितनी ही मार्मिक रीति से उस सामाजिक या सामू-

हिक अवसाद के विविध पहलुओं का चित्रण क्यों न करे अथवा दिवंगत आदर्शों और अभिलाषाओं के लिए (जो ऊपर से बड़ी सात्विक प्रतीत होती हैं किन्तु जिनका नवीन जीवन में लौटना न उपयोगी है, न सम्भव) अपनी कितनी ही कला-सामग्री क्यों न व्यय करे, मुझे विशेष रुचिकर नहीं। वे कलाकार जो निष्प्राण करुण जीवन को चित्रित करते हैं दो श्रेणियों में आ सकते हैं। एक वे जो निष्प्राण जीवन को चित्रित कर उसके प्रति विरक्ति का भाव भरते हैं और दूसरे वे जो उस बीते या बीतते जीवन के लिए आँसू बहाते और पाठकों को द्रवित करते हैं। इनमें से प्रथम तो बुद्धि-व्यवसायी और प्रगतिशील कलाकार होते हैं और दूसरे होते हैं केवल भावना या कामना को चित्रित करनेवाले। इनमें से कुछ तो बहुत ही समुन्नत कोटि के साहित्यकार हुए हैं जिनमें मैं, चेखब, सडरमैन, जोला और फ्लावर्ट आदि की गणना करूँगा। इनकी कलात्मक विशेषताएँ जग-जाहिर हैं और केवल कला की दृष्टि से इनकी अनेक रचनाएँ बिलकुल बेजोड़ हैं। मानस के सूक्ष्म प्रेरक सूत्रों की इनकी पहचान और उनका उद्‌घाटन पाठक को स्तंभित कर देता है। वे कला को विज्ञान की अकाट्यता निःस्पृहता और वास्तविकता प्रदान करने में समर्थ हुए हैं, किन्तु मेरी व्यक्तिगत रुचि उनकी ओर अधिक नहीं है। उनकी अपेक्षा कलात्मक पूर्णता की दृष्टि से चाहे हीन ही हों, पर टाल्सटाय और गोर्की, इब्सन और शा मुझे अधिक रुचते हैं। उनकी रचनाओं में निदरुण करुण नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविक ओजस्विता और प्रवाह हमें मिलते हैं। इनकी कला मनोविज्ञान के विश्लेषण में मुख्य रूप से प्रवृत नहीं है, मानव-जीवन के साहसी और सक्रिय स्वरूपों की अभिव्यक्ति करने में लगी है। वह परिपूर्ण कला जो अगति या शून्य का चिन्तन करती है हमें उतनी नहीं भाती, जितनी वह अपूर्ण कला जो जीवन का जाग्रत कलरव हमारे कानों को सुनाती है! यह मेरी कमज़ोरी हो सकती है पर स्थिति कुछ ऐसी ही है!

इस व्यक्तिगत स्थिति का इज़हार करने के साथ ही मुझे कहना होगा कि वाजपेयीजी की रचनाओं की भूमि एकान्तिक है। कला के विकास के लिए यह भूमि बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। एक अवस्था विशेष, एक घटना विशेष, किसी मनुष्य विशेष अथवा उसकी मानसिक प्रवृत्ति विशेष को उसके आस-पास की चौहद्दी से अलग निकालकर और फिर उस टुकड़े को असाधारण योग्यता के साथ सजाकर दर्शक या पाठक के सामने प्रस्तुत कर देना

वाजपेयीजी की सिद्धहस्त कला का नमूना है, जो उनकी इन कहानियों में पायी जाती हैं। उनकी कहानियों की तुलना मुक्तक काव्य से की गई है जिनमें सोने के तौल जैसी सफ़ाई और राई-रत्ती तुली हुई डाँड़ी होती है। आवश्यकता से अधिक एक भी शब्द नहीं होता। 'खाली बोतल' संग्रह में इस कला का सबसे सुन्दर उदाहरण पहली कहानी है जिसका शीर्षक पुस्तक का शीर्षक भी है। इसमें खाली बोतल के प्रतीक एक व्यक्ति-विशेष का चित्रण किया गया है। उसके जीवन सम्बन्धी एक विशेष प्रसंग की झाँकियाँ कहानी में दी गई हैं; किन्तु उतने ही से उसका सारा जीवन चित्र आँखों के सामने नाच जाता है। जैसा कि ज़रूरी था, यह खाली बोतल कहानी के अन्त में फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गई हैं, जिसकी स्पष्ट ध्वनि यह है कि उस व्यक्ति का क्रियाकलाप समाप्त होगया है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन, चुस्ती और कलात्मक पूर्णता की दृष्टि से यह कहानी निश्चय ही बहुत ऊँचा स्थान रखती हैं।

यह कहानी समाप्त होते हुए उच्चवर्गीय संस्कारों और मनोभावों का निरूपण करती है। कहानी का उद्देश्य इन मनोभावों की व्यर्थता को चित्रित करना है और इस दृष्टि से कहानी का बहुत ही उपयुक्त अन्त हुआ हैं। उच्च वर्गों की वर्तमान अगतिपूर्ण मनोभावना इसमें स्पष्ट हो जाती है। यह आवश्यक नहीं कि लेखक का उद्देश्य इन मनोभावों का उपहास करना भी हो। वह तो उनका चित्रण करके ही अपने कर्त्तव्य की पूर्ति कर लेता है।

क्या इन कहानियों को हम 'मानवता के चीत्कार की कहानियाँ' कह सकते हैं (यह उपशीर्षक पुस्तक के प्रारम्भ में पाया जाता है)? मेरी अपनी धारणा यह है कि इनमें व्यक्तिगत दुखों का चित्रण होते हुए भी मानवता का चीत्कार इन्हें नहीं कहा जा सकता। अवश्य इन कहानियों में कुछ ऐसे आदर्शों का भी निरूपण है जिनमें त्याग और कष्ट सहन की भावना उभर कर सामने आई है। उदाहरण के लिए 'अंधेरी रात' कहानी में वेश्या के जीवन की एक साधना प्रदर्शित की गई है और 'मैना' तथा 'हार-जीत' और 'ट्रेन पर' कहानियों में कुछ आदर्शों के लिए किये गये त्याग की झलक दिखाई गई है; किन्तु बस आदर्शवादी त्याग के लिए 'मानवता का चीत्कार' शब्द व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इससे त्याग की महिमा घट जाती है। न इन्हें हम जागरण की कहानी कह सकते हैं। वास्तव में ये एक विशृङ्खल सामाजिक व्यवस्था के युग में रहने वाले व्यक्तियों के अनुताप और किंकर्तव्यता

की कहानियाँ हैं और कला की दृष्टि से बहुत ही सुडौल कृतियाँ हैं। इनकी विशेषता वर्तमान स्थिति के वैषम्य के प्रदर्शन में है। यह आवश्यक नहीं कि कलाकार सदैव 'चीत्कार अथवा जागरण' की कहानियों का ही निर्माण करे। न यही आवश्यक है कि वह इस वैषम्य के भीतर से उद्धार का कोई मार्ग भी खोल निकाले। वैषम्य और दुरवस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण वह कर सका है, यही उसकी कला की सफलता और कृतकार्यता है।

ह्रासोन्मुख जीवन के निरूपक कलाकार अपनी रचनाओं में अधिकतर वस्तुवादी कलाशैली को अपनाते हैं और सूक्ष्म मानसिक विवृत्ति द्वारा ही उस जीवन की करुणापूर्ण अगति का चित्र उपस्थित करते हैं। उनका लक्ष्य होता है उक्त अगति का नंगा चित्र प्रस्तुत करना ताकि पाठक उस विषम स्थिति का साक्षात्कार कर लें और तब उनके मन में प्रतिक्रिया जन्म ले। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि अगति के सभी चित्रकार वस्तुवादी ही हों। वे आदर्शप्रवण भी हो सकते हैं; जैसा कि वाजपेयीजी की अपनी कतिपय कहानियों में है। उदाहरण के लिए 'अंधेरी रात' कहानी में नायिका कजली, जो वेश्या का व्यवसाय करती है, अपनी शारीरिक पवित्रता की रक्षा कितने असाधारण कष्ट झेलकर करती है यह उसी के शब्दों में प्रकट करना ठीक होगा—

'सिर से पैर तक वस्त्रहीन होकर तब कजली बोली—जो अपराध तुमने मुझ पर लगाये हैं, उनकी सफ़ाई मेरे बदन भर में पड़ी हुई इन काली, नीली, मिटी और बनी रेखाओं से पूछो, घावों के निशानों और जली हुई खाल की सफ़ेदी से पूछो। रो मैं सकती नहीं, नहीं तो आँसुओं से भी बहुत कुछ बतला सकती थी। था कभी आँसुओं का सोता, लेकिन अब वह सूख चुका है। इतने पर भी अगर विश्वास न हो तो पुलिस के पुराने काग़ज़ों में दर्ज आत्मघात के मेरे प्रयत्नों से पूछ देखो।'

यह आदर्शवाद भी घोर विवशता का परिचायक है। यह उद्धार का कोई मार्ग नहीं है। अंधकार को प्रगाढ़ करने में ही यह सहायक हुआ है।

ऐसी कलापूर्ण और निराशमयी स्थितियों के चित्रकार कभी-कभी स्वयं अपने चित्रों से विचलित हो जाते और अपनी तटस्थता अथवा अनासक्ति का त्याग कर स्वयं निराशामूलक भाग्यवादी दर्शन के अनुयायी हो जाते हैं। वे अपनी उस प्रारम्भिक स्थिति को भूल जाते हैं जब वे चित्रकार मात्र थे और

कला की दृष्टि से अपना व्यवसाय कर रहे थे। अपनी कोमल प्रवृत्ति और भावुकता के वश होकर वे उन चित्रों में जीवन का आदर्श देखने लगते हैं। किन्तु वे चित्र तो हैं अगति के आदर्श, उन्हें प्रगति का आदर्श कैसे बनाया जा सकता है! यहीं से कलाकार ह्रासोन्मुख जीवन का चित्रण छोड़कर ह्रासोन्मुख कला की सृष्टि करने लगता है। वह समय के प्रवाह में बह चलता है और अपना असली उद्देश्य छोड़ बैठता है। तब तो वह विवेक का त्याग कर लिप्सा और खुमारी का शिकार हो जाता और अगति में ही प्रगति की कल्पना करने लगता है। किन्तु सभी बड़े कलाकार इस खाई से खूब सावधान और सतर्क रहा करते हैं। वाजपेयीजी कई बार उस सीमा से इस सीमा में प्रवेश कर जाते रहे हैं; किन्तु यह अतिक्रमण क्रमशः कम होता जा रहा है और इन नई कहानियों में बहुत कुछ विरल है।

ह्रासोन्मुख जीवन का चित्रकार अपना क्या संदेश सुनाये? वह लम्बे-चौड़े आदर्शों का हवाला नहीं दे सकता, हिंसा-अहिंसा पर प्रवचन नहीं कर सकता। सभा-सोसाइटियों में मसीहा और दार्शनिक बनने का दम वह नहीं भरा करता। यह स्पष्ट ही है इसलिए कि किसी गौरवपूर्ण आदर्शवाद या प्रगतिशीलता से उसका सम्बन्ध नहीं। वह संप्रति जिस नकारात्मक उद्योग में लगा हुआ है उसमें किसी प्रत्यक्ष ऊँचे उद्देश्य की दुहाई नहीं दे सकता। उसकी स्थिति उस डाक्टर की-सी है जो आपरेशन का ही काम करता है। यह कोई आकर्षक या लोकरंजक काम नहीं कि भीड़ उसके पास जमा हो। आपरेशन वह करता है, लोगों में प्रेम की अपेक्षा भय की भावन बढ़ाता है और फिर भी किसी के सामने खुलकर वह नहीं कह सकता कि उसका मरीज़ चंगा ही हो जायगा। वह कुछ कहे या न कहे; किन्तु क्या इस बात में संदेह है कि वह लोक हितैषणा के कार्य में ही लगा हुआ है।

हमारे कतिपय कहानी-लेखक अध्यात्मवादी और अहिंसाव्रती हैं; उनकी रचनाओं में अहिंसा का पूर्ण परिष्कार चाहे न आया हो, पर अपना संदेश वे सुना सकते हैं। कुछ अन्य कथाकार जो शोषित के सहायक और निपीड़ित के पक्षपाती हैं, अपना लोक-मोहक व्याख्यान जारी रख सकते हैं। उनमें से कुछ तो अपनी पूर्ववर्ती कलाकृतिओं का केवल इसलिए उपहास करते हैं कि उनमें सहानुभूतिशील मध्यवर्ग के चित्रण मिलते हैं। कुछ अन्य हैं जो स्वातन्त्र्य के सीमाविस्तार को ऐन्द्रिय-लिप्सा के सीमाविस्तार का समानार्थी

समझते हैं और लारेन्स और रोमानाफ़ और न जाने अन्य कितनों की दुहाई देकर साहित्य को अनाकांक्षित गंदगी का अडडा बना रहे हैं। उन्हें यह मालूम नहीं कि यूरोप में किन स्थितियों की प्रतिक्रिया लारेन्स आदि के द्वारा व्यक्त हुई है और भारत में उस स्थिति का अस्तित्व भी है या नहीं। अन्तिम श्रेणी उन कथाकारों की है जो शुष्क तर्क या सिद्धान्त स्थापन के लिये कहानियाँ गढ़ते हैं किन्तु उनमें कला की विश्वसनीयता, निर्माण की कुशलता नाम-मात्र को ही आ पाती है। इन वाचाल वर्गों के बीच वाजपेयीजी चुपचाप काम कर रहे हैं। वे अपनी पुस्तक की प्रस्तावना भी स्वत: नहीं लिखते।

वाजपेयीजी की शैली व्यंग्यात्मक नहीं है, यद्यपि जीवन के व्यंग्य को वे काफ़ी बेरहमी के साथ चित्रित करते हैं। उनका चित्रण-क्रम पूर्ण तटस्थता लिए हुए नहीं है और अकसर यह शङ्का उत्पन्न करता है कि रचनाकार की व्यक्तिगत सहानुभूति भी अस्तव्यस्त जीवन की अस्तव्यस्त प्रवृत्तियों के प्रति है। इसी भ्रम के कारण कतिपय व्यक्तियों ने यह शिकायत की है कि वाजपेयीजी किसी समुन्नत भावना से प्रेरित होकर साहित्य-सृष्टि नहीं कर रहे, केवल ओछे ढङ्ग की बंगाली भावुकता के हिन्दी प्रतिनिधि हैं। वस्तुवादी कलाकार की स्थिति इस दृष्टि से बड़ी सङ्कटपूर्ण होती है। वह ह्रासशील वर्गों की शिथिल और निरुद्देश्य प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने को बाध्य है। ओछी भावुकता भी उनमें से एक प्रवृत्ति है। अब यदि कलाकार पर्य्याप्त सचेष्ट नहीं है तो बहुधा इस आरोप की सम्भावना रहेगी कि वह स्वयं उन विकृतियों के आक्रान्त हैं। फिर जब रचनाकार स्वयं इस प्रकार वाक्छल अपने उपहार-पत्र में जाने दे कि 'आप मादकता से बहुत घबराते हैं पर मैं तो जीवन को भी एक नशा मानता हूँ' तब भ्रान्ति का और भी बढ़ जाना स्वाभाविक है पर असल में यह दिखावटी नशा है, खाली बोतल है। इसकी परीक्षा के लिये कई व्यावहारिक तरीक़े काम में लाये जा सकते हैं—

१—लेखक ने कहीं किसी पात्र को नशे में बुत बनाकर अश्लीलता की सीमा तो नहीं पार कराई ?

२—उसने नशे की स्थापना आदर्श रूप में की है या वस्तु के रूप में, उसका गुणगान किया है अथवा केवल चित्रण ?

३—उसने नशे को सुखान्त या दुखान्त चित्रित किया है।

यहाँ नशे से मेरा मतलब समाज की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों में से है। वाजपेयीजी ने कहीं ऐसी प्रवृत्तियों को आदर्श या सुखहेतुक मानकर चित्रित नहीं किया। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ दुःखान्त हैं जो ऐसे चित्रणों की स्वाभाविक परिणति होनी चाहिए। वाजपेयीजी इन सभी कसौटियो में खरे उतरते हैं। उनका लक्ष्य वस्तून्मुखी कला का निर्माण है। इस कार्य में वे क्रमशः अधिकाधिक सफल हो रहे हैं। समीक्षकों को उनके कार्य की कठिनाई समझनी चाहिए। आपेक्ष करना बड़ा सरल धंधा है, पर कला की रचना करना कठिन कार्य है; विशेषतः वस्तूनमुखी कला की रचना करना—और वह भी जब वस्तु रमणीक और उदात्त नहीं, बल्कि उसके विपरीत है—आग के साथ खेलना है। समीक्षकों को यह कला सावधानी के साथ परखनी चाहिए।

रोमांटिक कल्पनाओं की वाजपेयीजी की कथाओं में कमी नहीं है; पर चारित्रिक और मनोवैज्ञानिक वैचित्र्य का उद्घाटन उनकी नवीन आख्यायिकाओं में प्रधानता पाता जा रहा है। दुःख और कष्टसहन उनके मुख्य आकर्षण हैं। उनकी कथाओं के निर्माण में इन्हीं दोनों का प्रधान स्थान है। असाधारणता की ओर प्रवृत्ति होने के कारण दुःख और कष्ट-सहिष्णु चरित्र भी वे उच्च और मध्यवर्गीय समाज में से चुनते हैं। आर्थिक क्षेत्र में जो दुःखान्त नाटक 'सर्वहारा' समाज द्वारा खेला जा रहा है; वाजपेयीजी ने अभी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। अभी वे उच्च और मध्यम वर्ग की सामाजिक विशृङ्खला को ही दिखा रहे हैं। असल में यह भी नवीन सांस्कृतिक उत्थान का ही सहायक कला-आंदोलन है, यदि यह विवेकपूर्वक चलाया जाय। विवेक से मेरा मतलब यह है कि लेखक अपना मूल उद्देश्य भूले नहीं कि उसे अपनी कलाकृति द्वारा पाठक की संवेदना सम्यक् रूप से जगाकर सम्यक् दिशा में लगानी है। दूसरे शब्दों में यह कि वह आत्म-विस्मृत न हो जाय।

वाजपेयीजी का विवेक पर्याप्त परिपुष्ट है और जहाँ तक निर्माण की सुघरता का प्रश्न है, हिन्दी कथा-साहित्य में निश्चय ही वे उच्चतम स्थान के अधिकारी हैं।

उनके अभिनन्दनोत्सव के अवसर पर मैं उनकी हार्दिक अभ्यर्थना करता हूँ।

छलना : एक समीक्षा

ले०—डा० नगेन्द्र, एम० ए०, डी०-लिट्

इसमें नारी की समस्या यद्यपि आदिम एवं चिरन्तन समस्या के रूप में ग्रहण की गई है (और वह है भी) फिर भी उसका धरातल सामाजिक है और इसलिए हमारे निकट है। उसकी पृष्ठभूमि में कामना (प्रसादजी का रूपक) का फूलों का लोक नहीं है और न ज्योत्सना (पन्तजी का रूपक) का इन्दुलोक; वहाँ तो हमारा आज का संघर्षमय समाज है।

'छलना' में नारी की समस्या यद्यपि आदिम एवं चिरन्तन समस्या के रूप में ग्रहण की गई है (और वह है भी) फिर भी उसका धरातल सामाजिक है और इसलिए हमारे निकट है। उसकी पृष्ठभूमि में कामना (प्रसादजी का रूपक) का फूलों का लोक नहीं है और न ज्योत्सना (श्रीसुमित्रानन्दन पन्त का रूपक) का इन्दुलोक, वहाँ तो हमारा आज का संघर्षमय समाज है। उसके पात्र-पात्रियाँ तारा की सन्तान अथवा द्यौलोक के ज्योतिष्पिण्ड न होकर इन्टर-मीडिएट कॉलिज का अध्यापक बी० ए० का छात्र, फिल्म अभिनेता और रिटायर्ड सेशन्स जज की पुत्री आदि हैं।

24205

हाँ, तो 'छलना' की समस्या नारी की समस्या है। कल्पना नारी का स्वरूप है—चञ्चल उच्चाकांक्षा से भरी हुई विलास की ओर उन्मुख—परन्तु भीतर गहरे में नारीत्व की निधि को सँजोनेवाली। बलराज पुरुष है, गम्भीर संयत, अभिमानी और दृढ़ है। एक और पात्र है— विलास। विलास पुरुष के वाह्यरूप की अधूरी तस्वीर है—आकर्षक, अपनाने की शक्ति लिए हुए, शिष्ट छली और अदृढ़। कल्पना की उच्चाकांक्षाएँ बलराज के गम्भीर, मर्यादित और सन्तुष्ट जीवन से टकराकर वापस लौट आती हैं—इसीलिए वह दुखी है—बलराज के प्रति उसको आकर्षण नहीं होता। अतः प्रेम भी नहीं—परन्तु बलराज के पुरुषत्व के प्रति उसे श्रद्धा अवश्य है। विलास उसे आकृष्ट करता है—उसको वहाँ रङ्गीन दृश्य दिखाई देते हैं—पर विलास भी उसे नहीं पा-सकता; क्योंकि उसमें वाञ्छित पुरुषत्व की कमी है। वह उसकी आत्मा में बैठी हुई नारी का स्पर्श नहीं कर सकता। कल्पना इन दोनों के बीच भटक जाती है। यही उसके जीवन की छलना है। जब कभी नारी प्रकृत पुरुषत्व से असन्तुष्ट होकर आकर्षक (विलासमय)—पुरुषत्व की ओर आकृष्ट हुई है, तभी उसके जीवन में ट्रेजडी घटित हुई है।

कामना नारी के वाह्यरूप की तस्वीर है अधूरी—चञ्चल, विमुग्ध और मोहक। वह विलास की मित्र है। उन दोनों की प्रकृति समान है, पर वे जैसे एक दूसरे के अभाव से भलीभाँति परिचित हैं—इसलिए वे एक दूसरे को अपना नहीं सकते। वह बम्बई जाती है, वहाँ निद्रा के रूप में अभिनेत्री बनकर बलराज (पुरुष) को भुलाए रखने का प्रयत्न करती है। बलराज का उसमें मन बहलता है अथवा नहीं, पर वह सर्वथा उससे असंपृक्त रहता है, इस कारण कामना उससे डरती है। नारी का तीसरा रूप है चम्पी; कुरूप लँगड़ी भाग्य की मारी हुई, पति के द्वारा निर्वासित, फिर भी उसकी मीठी स्मृति हृदय में छिपाये हुए सन्तुष्ट—इसलिए कल्पना और कामना की अपेक्षा अधिक सुखी, फिर भी वास्तव में दुखी। यह नारी के अन्तर का चित्र है।

इन दोनों (कामना और चम्पी) एकपहलू चित्रों के बीच लेखक ने बड़े कौशल के साथ नारी का पूरा चित्र रखा है। कामना का चित्र अपनी भूठी चमक से और चम्पी का अपने कालेपन से कल्पना की रेखाओं को गहरा करता है (उसकी ट्रेजडी को तीखा)।

'छलना' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ट्रेजडी है। बलराज को फिर से पाकर भी कल्पना विलास की मृत्यु की बात सुनकर मूर्छित हो जाती है और उसकी मूर्छित अवस्था में ही पर्दा गिरता है। बलराज ट्रेजडी की कितनी स्पष्ट व्याख्या करता है—

"प्रतीत होता है, मनुष्य की आत्मा के साथ विलास का ऐसा ही सम्बन्ध होता है, आदर्श का सम्पर्क होते ही वह अन्तर्धान हो जाता है......(और ट्रेजडी यह है) किन्तु कल्पना उसे मृत्यु के बाद भी अपने से पृथक् नहीं कर पाती।"

श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी ने व्यर्थ ही इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। इसका समाधान लेखक के पास नहीं है, तभी तो इस रूपक का नाम 'छलना' है।

'छलना' की टेकनीक में बहुत सफ़ाई नहीं है। चम्पी, सूर, जगेसर—और उधर नवीन कथा-वस्तु के अङ्ग नहीं हैं। उनका सम्बन्ध प्रभाव से ही है। नारी को कल्पना नाम ही क्यों दिया गया? क्या कल्पना के व्यक्तित्व में केवल कल्पना ही है? अथवा क्या आकांक्षा और कल्पना एक ही वृत्ति है? आदि प्रश्न हमारे मन में उठ सकते हैं। नवीन किस भावना का प्रतीक है? बलराज के पुरुष रूप की रूपरेखा स्पष्ट करने के अतिरिक्त रूपक की अन्तर्धारा में नवीन का क्या प्रयोजन है? पर ये बातें सभी गौण हैं—ज्योत्स्ना से तो इस दृष्टि से उसकी तुलना ही क्या! उसके पात्रों की रूपरेखा एकदम मांसल है, विलास और बलराज का चरित्रांकन बहुत प्रौढ़ है। वे कहने को प्रतीक हैं, पर उनके व्यक्तित्व किसी भी स्वतन्त्र पात्र के व्यक्तित्व से समता कर सकते हैं। रङ्ग-संकेत सामाजिक और पात्र सजीव होने के कारण अभिनय का गुण (रजतपट पर) इस नाटक में बराबर मिलता है। भाषा में व्यञ्जना और कवित्व तो है, परन्तु सर्वत्र सुख-सरल गति नहीं है। गाने मीठे हैं।

कलाकार की सामाजिक पृष्ठभूमि

लें०—श्री अमृतलाल नागर

रोटी की लड़ाई में एक साधारण सिपाही बनकर वे आये और आज भारतीय जन-समाज के नामी जनरलों में उनका स्थान है। लगभग तीन सौ कहानियाँ, एक दर्जन उपन्यास, नाटक, निबंध, काव्य, कोर्स की किताबें, रेडियो वार्ताएँ तथा फ़िल्म के कथानक-संवाद लिखकर इस अपढ़ किसान के बेटे ने कितना नाम कमाया है! वाजपेयीजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-परिषद् के सभापति होने का गौरव भी प्राप्त कर चुके हैं और आज हिन्दी माता की ओर से उनका अभिनन्दन हो रहा है!

कलाकार अपने युग के साथ अवतरित होता है, और उस युग के लिए ही उसकी हस्ती निछावर होती है। यह बात दूसरी है कि उसकी कला-सिद्धि के कारण मानव समाज युग-युग तक उसकी 'न्योछावर' पर बलिहार होकर अपना विकास करते हुए कलाकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता रहे।

विक्रमी संवत् १९५६ दो दृष्टियों से उल्लेखनीय है। उस वर्ष मारवाड़—आगरा तक अकाल फैला था। उस अकाल की मर्म-व्यथा को चाहे आज हम पौने दो सेर का गेहूं खाते हुए पूरी तौर पर न समझ पायें, परन्तु उस समय रुपये का पाँच सेर गेहूं खुद खाकर तथा पन्द्रह सेर का भूसा अपने ढोरों को खिलाकर मनुष्य घोर कलयुग के आगमन से त्राहि-त्राहि कर उठा था। आगरे की एक बुढ़िया माई से मुझे छप्पनिया अकाल पर जोड़े गये गीत का यह अंश भी एक बार सुनने को मिला था :

"आयो री जमाईड़ो धसक्यो जीव ; कहाँ से लाऊँ मैं शक्कर घीव—
छप्पनिया अकाल फेर मती आइजो म्हारी मारवाड़ में ॥"

संवत् '५६ में ही मंगलपुर ग्राम में कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी का जन्म हुआ। अपढ़ किसान का बेटा मातृकुल की सरस्वती से वरदान पाकर बढ़ा, और आगे चलकर उसने अपना सारा जीवन मां सरस्वती के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया। वाजपेयीजी के कलाकार बनने के पीछे भी अनुभवों का लम्बा-चौड़ा इतिहास है। सात वर्ष की आयु में मामा का स्वर्गवास हो जाने से उन्हें और उनके बड़े भाई को बुज़ुर्ग बनना पड़ा। भगवतीप्रसाद हिन्दी मिडिल से आगे न पढ़ पाये। आवश्यकतावश घरके गाय-भैंस, बैल, बकरियाँ चराईं, खलिहान में दायँ और उड़नई का काम किया ; पैसों की थैली लादकर गाँव की साहूकारी की ; उसके बाद गाँव के प्राइमरी स्कूल की अध्यापकी की, शहर की लाइब्रेरी में पन्द्रह रुपये मासिक पर लाइब्रेरियन रहे ; किताबों का गट्ठर कंधे पर लाद कर बेचा, बीबी के गहने बेचकर दूकानदार बने, चोरी होगयी; बैंक की खज़ांचीगीरी के अपरेंटिस हुए; कंपाउण्डर बने; प्रूफ़रीडर बने; सहकारी संपादक हुए; फिर संपादक बने। रोटी की लड़ाई में एक साधारण सिपाही बनकर वे आये, और आज भारतीय जन-समाज के नामी जनरलों में उनका स्थान है। लगभग तीन सौ कहानियाँ, एक दर्जन उपन्यास, नाटक, निबंध, काव्य, कोर्स की किताबें, रेडियो वार्ताएँ, फ़िल्म के कथानक-संवाद लिखकर इस अपढ़ किसान के बेटे ने कितना नाम कमाया है ! वाजपेयीजी हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की साहित्य परिषद् के सभापति होने का गौरव भी प्राप्त कर चुके हैं और आज हिन्दी माता की ओर से उनका अभिनन्दन हो रहा है !

लेकिन वय और साहित्य क्षेत्र में अग्रज, अपने इस आदरणीय मित्र का सविनय-सप्रेम अभिनन्दन करते समय यह बात मेरे भुलाये नहीं भूलती कि प्यारे 'भ० प्र० वा०' जी सब मित्रों-प्रशंसकों के अभिनन्दनों का ताज पहन लेने के बाद भी जस-के-तस ही रहेंगे—उनके छत-फोड़ क़हक़हे, बात-बात में ज़ोर ज़ोर से 'खूब-खूब! धन्य-धन्य!' कहने की आदत बदलकर उस संजीदगी का रूप हरगिज़ धारण न कर सकेगी जिसे ऐसी हालत में कोई पैदायशी मिडिल क्लासवाला शायद बाआसानी ओढ़ लेता। यह विशेषता—सरलता —वाजपेयीजी को मंगलपुर से मिली है। भारत देश अपने मंगलपुरों में ही अधिक रहता है; बम्बई, दिल्ली, कानपुर में बहुत कम।

बीसवीं शताब्दी वाजपेयीजी की हमउमर है। रोटी के लिए कठिन संघर्ष करनेवाले कलाकार का इतिहास ही बीसवीं सदी का भी इतिहास है। तिरेपन बरस पहले से आजतक के शहरी समाज के विकास का नक्शा देखते हुए जब हम कलाकार के संघर्ष और उसकी साहित्य-सृष्टि को देखते हैं तब उसकी हार-जीत, दोनों ही की क़ीमत का सही-सही अंदाज़ लगता है।

उन्नीसवीं शताब्दी की अंतिम दशाब्दि से ही ज़माना काफ़ी तेज़ी से बदलने लगा था। शहरों में अँगरेज़ी स्कूल हो गये थे, क्लर्की का चलन काफ़ी हद तक फैल चुका था; हिन्दुस्तानी घरों में गोरी-काली मिशनरी मेमें जाकर हमारी पुरखिनों को साक्षर और प्रभु येसू की भेड़ बनाने का भरसक प्रयत्न करने लगी थीं। ग़दर में बुरी तरह से कुचले जाने के बाद से भारतीय प्रजा आम तौर पर अँगरेज़ों से दब गई थी। जन-समाज में यह विश्वास प्रचलित था कि मल्का विक्टोरिया त्रिजटा राक्षसी का अवतार है तथा सीता जी के वरदान से उनका और उनके वंशजों का भारत पर अटलछत्र राज्य रहेगा। 'जी हुज़ूरी' समाज के अभिमान की वस्तु बन गई थी। जो जितना बड़ा जी हुज़ूर होता था उसका समाज में उतना ही बढ़-चढ़कर आदर होता था।

उस समय अँगरेज़ भारत का ब्राह्मण था। अँगरेज़ियत हमारा आदर्श थी, और अँगरेज़ का वतन हमारा आदर्शलोक वैकुण्ठ। जो विलायत पास कर आता था वह स्वर्गदूत की तरह आम जनता के बीच, सिक्कों में गिन्नी और नगों में हीरा-मानिक बनकर, अँगरेज़ सरकार की छत्र-छाया में अपने आपको प्रतिष्ठित करता था। यद्यपि यहाँ के रूढ़िवादी समाज में उन्हें हर

अधिकार से वंचित कर दिया जाता था। मैंने इस सम्बन्ध में बड़े ही मज़ेदार क़िस्से इकट्ठा किए हैं। एक 'पंडत साहब' ने पूरी कश्मीरी ब्राह्मण बिरादरी को बिरादरी से बाहर निकाल दिया था, क्योंकि उन्हें शक होगया था कि विलायत पास पंडित विशननारायण दर के समर्थक 'बिशन-सभाई' बिरादरी के हर घर में हो गये हैं। अपने कुल को पवित्र रखने के लिए उन्होंने अपनी लड़कियों को आजन्म कुँवारी रखना क़बूल किया, पर बिरादरी से खान-पान और रक्त सम्बन्ध स्थापित करना क़बूल न किया। स्वयं मेरी बुआ अपने इकलौते भाई, मेरे पिता के विवाह के अवसर पर उत्सव में सम्मिलित होने से रोक दी गई थी; उनके जेठ विलायत हो आये थे और प्रायश्चित भी नहीं किया था। इसलिए उन्हें यह दण्ड भोगना पड़ा। हमारी बिरादरी की आगरा निवासिनी एक जन-दादी—सरस्वती दादी—की बातों से मालूम पड़ा कि मेरी बुआजी के जेठ "डाक्टर पंड्या ने पंचों पर सिरकार से कहकर मुकदमा चलवाया कि हमें जात बाहर कर दिया है। उस वखत में आगरा हमारी जात में 'हैड कलेक्टर' था। चारों ओर चिट्ठियाँ पड़ जाती थीं। जो आगरे से चिट्ठी जाय वो सबको मंजूर। मुकदमा चला तो आगरे से सब जगै चिट्ठी पड़ी। सो सब लोग गुस्सा होगये कि चाहे पंचों को हतकड़ियाँ पड़ जाँय या कुछ हो, मगर जात में तो नहीं ही लेंगे। फिर सिरकार ने पंचों को हतकड़ियाँ नहीं डालीं।"

यों उक्त डाक्टर साहब 'जात-निकाले' के सम्बन्ध में भले ही पंचों से मुक़द्दमा हार गये हों, मगर काशी के एक प्रतिष्ठित और धनाढ्य कुल ने इसी विलायत-गमन के मामले में प्रिवी काउंसिल तक केस लड़कर अपनी बिरादरी के पंचो को चीं बुलवा दी थी। अन्त में बिरादरी चन्दा देते-देते हार गई, और उसका चौधरी अपनी निजी सम्पत्ति भी इस सामाजिक केस के निमित्त फूँककर कंगाल हो गया।

इस तरह धन, कुरसी, डाक्टरी और बैरिस्टरी की शक्ति ने उस समय प्रगतिशील बनकर उस प्रतिक्रियावादी समाज को परास्त कर दिया जिसने (इतिहास के लिए भी) अनजाने काल से समुद्री यात्रा करनेवाले भारतीय राष्ट्र को झूठ-मूठ का शास्त्र-निषेध लगाकर समुद्र लाँघने से रोक रक्खा था।

जिस समय कलाकार भगवतीप्रसाद मंगलपुर ग्राम में अपना संघर्षभरा बचपन बिता रहे थे, उस समय शहरों में नये पढ़े-लिखे वर्ग की सामाजिक

और राजनैतिक जागृति हो रही थी। अँगरेज़ आक़ाओं की खूबियाँ निरखते-निरखते जब-जब 'पढ़े लिखे' लोग अपने समाज और धर्म (अर्थात वह सब खुराफ़ात जो इस शब्द के साथ उस समय प्रचलित था और काफ़ी हद तक अब भी है) की बुराइयों को देखते, तो अपने अन्दर शर्म, घृणा, चिढ़ और क्रोध महसूस करते थे। यह सब महसूस करते हुए भी उस समय तक उन धार्मिक बुराइयों के विरुद्ध बग़ावत करने की बात उनके सपने तक में नहीं आती थी। हां, हर जाति के पढ़े-लिखों ने—नये बनते हुए मिडिल क्लास ने—अपनी-अपनी जातियों की क्लब-सभाएँ खोलकर सुधार-चर्चा आरम्भ कर दी थी। पुराने समाज और इस नये पढ़े-लिखे समाज का जो अत्यन्त घरेलू और मानसिक संघर्ष विदेशी शासकों की भाषा, विज्ञान, साहित्य और संस्कृति की टक्कर से उस समय उत्पन्न हुआ था, वह उस नये भारत का भी अंकुर था, जो आजकी फैली हुई घोर राजनैतिक, नैतिक और सांस्कृतिक अराजकता के बावजूद मानव हृदय के घने छायादार और विशाल वृक्ष की तरह बढ़ रहा है; जिसके नीचे बैठकर आज के तपते अहंकार से त्रस्त दुनियां कल विश्राम पायेगी। कलाकार वाजपेयी ने संस्कार रूप में अपने बचपन के वातावरण से सही प्रेरणा लेकर इसी वृक्ष को सींचा है। उन्होंने सचमुच इंसान का दिल पाया है।

स्वदेशी आंदोलन, श्री अरविन्द और लाल-बाल-पाल की त्रिपुटी ने देश के इस मध्यम वर्ग को झिंझोड़ कर जगाया। रामानुजम्, सी. वी. रामन, जगदीश बसु आदि के वैज्ञानिक अन्वेषण तथा रवीन्द्रनाथ की नोबुलप्राइज़ विजय और रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, दयानन्द, भारतेन्दु, बंकिम, नर्मद आदि महर्षियों का योगबल गौरांग प्रभुओं की तुलना में अपने को अत्यन्त हीन और निकम्मी, क्लर्की के सिवाय और किसी क़ाबिल न समझनेवाली भारत की पढ़ी-लिखी जनता के लिए टानिक बनी।

इस तरह जिस समय देश का शहरी समाज बढ़नेवाले आर्थिक सङ्कटों के बावजूद नई चेतना की शक्ति लेकर आगे बढ़ रहा था, उसी समय देश का ग्रामीण अपनी निरक्षरता और कूप-मण्डूकता के कारण इस नये प्रकाश से वंचित रहकर घोर आर्थिक सङ्कट के कारण क्रमशः टूटता चला जा रहा था। अँगरेज़ों के आने से पहले तक हमारे गाँवों ने चाहे और कितने ही सङ्कट झेले हों, पर विषम आर्थिक सङ्कट से कभी उनका सामना नहीं पड़ा था। यह बात नहीं कि अँगरेज़ से पहले के भारतीय गाँवों में ग़रीब नहीं होते थे, होते थे;

पर ग़रीबी के कारण किसी को अपने बाल-बच्चों के साथ कभी भूखों नहीं मरना पड़ा। परन्तु बालक वाजपेयी के ज़माने में बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक क्रांतियों के बावजूद अङ्गद के चरण की तरह डटे रहनेवाले भारतीय लड़खड़ा चुके थे। नया ज़माना गाँवों में भी अपनी चाल चल रहा था। सम्पन्न किसान पटवारियों के बेटे शहरों में पढ़-लिखकर बाबू बनने के लिए आने लगे थे। आर्थिक नाग-पाश से मुक्त होने के लिए बहुत से लोग बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, मद्रास आदि की मिलों में जाकर मज़दूर हो गये। बहुत से लोग दूसरे आस-पास के शहरों में जाकर पल्टन के सिपाही, दफ्तरों के चपरासी. पुलिस-मैन, गुमाश्ते, टहलुये, रसोइये, पानी-पांड़े, चौकीदार या छोटे-मोटे फेरीवाले सौदागर बन गये। रोटी की कशमकश ने हमारे कलाकार वाजपेयीजी को क्या-क्या नहीं बनाया ?

यहाँ एक बात खास तौर से ध्यान देने योग्य है। गाँव से शहर में आया हुआ कुलीन ब्राह्मण, ठाकुर तथा इतर हीन कहलानेवाली जातियों के लोग एक नये मज़दूर वर्ग के सदस्य होकर बराबर की सतह पर आ गये थे। बहुधा यह भी होता कि हीन जाति के लोग कुलीन जाति के लोगों के अफ़सर (मजदूरियत की चौहद्दी के अन्दर ही) बनकर ऊँच-नीच का एक नया मापदण्ड स्थापित करते थे।

नये आर्थिक ढाँचे ने ब्राह्मण की सनातन-काल से चलती आयी हुई बपौती—पुरोहितडम—की कुतुबमीनार को ढाना शुरू किया। ब्राह्मण कुली बना, दूधवाला, गाड़ीवान, रसोइया, बनियां, चपरासी, गुमाश्ता, अत्तार, सिपाही बना—और बकौल शरत् बाबू के बाबूओं का 'कम्बाइण्ड हैण्ड' बन कर कहीं-कहीं तो वह मालिक के जूते साफ़ करने और जूठे बर्तन माँजने तक का काम करने लगा था! नये आर्थिक ढाँचे के समाज में—जो धनी और निर्धनों के बीच एक मिडिल क्लास बन कर खड़ा हुआ था—ब्राह्मण की पोज़ीशन अजब कार्टूनी क़िस्म की हो गई। इस आर्थिक ढाँचे में खुद ब्राह्मण-ब्राह्मण में ही भेद की गहरी खाई खुद गई। सत्ताधारी मिडिल क्लास का ब्राह्मण स्वयं अपने निर्धन निरक्षर भाई-बिरादर को हिक़ारत से देखने लगा। यह सब होते हुए भी निर्धन, निरक्षर, 'कम्बाइण्ड हैण्ड' ब्राह्मण पंडित और महाराज की पदवियों से विभूषित रहा। कनागतों में उसका भाव कुछ बढ़ जाता था। मंसापूजी और दान-दक्षिणा देने के सिलसिले में इन 'कम्बाइण्ड

Pertap Singh Library Srinagar

हैण्डों' के मालिकों का यह रुख रहता था कि "अरे, बेचारा ब्राह्मण है। इसे कुछ दे दो; पुण्य होगा।" यह पुण्य प्रदान करने की क्षमता रखना ही निर्धन-निरक्षर भट्ट-पंडित-महाराज के कुचले-दुचले अहं को संतुष्ट रखना था। उसे मालिक से सुअर, डैमफूल आदि सुनने की आदत शुरू-शुरू में तो कुछ खल कर ही पड़ी, पर बाद में गोरे-काले साहबों के बूटों की ठोकरें तक खाकर 'आसिरबाद, देने का अभ्यास उसे बड़ी अच्छी तरह से हो गया था!

इस तरह ब्राह्मणत्व और कुलीनता का पुराना मापदण्ड टूट गया और उसके स्थान पर अँगरेजी पढ़े-लिखेपन तथा उससे भी अधिक पैसे की ऊँचाई-निचाई ही इस देश में नई मान-दण्डिका बनकर सर्वत्र पुजने लगी।

ब्याह-शादी रिश्तों तक में शहर के (गाँव छोड़े हुए) पढ़े-लिखे अफ़सरों, क्लर्कों ने गाँवों से प्राय: नाता तोड़ दिया। गाँव के रिश्तेदार, अनपढ़ और ग़रीब माँ-बाप तक उनकी 'बिरादरी' से निकल गये। यही भेद शहरों के मुहल्ले से सिविललाइन्स में जा बसनेवालो रिश्तेदारियों में पड़ने लगा। पति-पत्नी में भेद पड़ गया। बौद्धिक छोटाई-बड़ाई घर-घर की अहम समस्या बन गई।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही पश्चिमी विज्ञान की नई नई करामातें औसत मध्यवर्गीय घरों में भी तेज़ी से पहुँचने लगी थी। तेल के दीपक के स्थान पर मध्यवर्ग के जिस घर में लालटेन आ जाती थी वह बड़ी शान का समझा जाता था। सिलाई की मशीनें, घड़ी, साइकिल, मोटर, गैस के हण्डे, आर्गन-बाजे यह सब उस ज़माने में लोगों की जहनियत में सामने लगे थे। सन् १९१२ में इलाहाबाद में होने वाली प्रदर्शनी ने लोगों के दिलों और दिमाग़ों पर गहरा असर डाला था।

नये जमाने से गहरा झकोला खाकर पुराना समाज अपनी सनातन कमज़ोरियों के साथ नये सुधारों का जहाँ तक समझौता कर सकता था, करने लगा था। आर्यसमाज ने देशी समाज पर गहरा प्रभाव डाला।

इन सब प्रभावों से नये-नये फ़ैशन प्रचलित हुए। महाशय जी और नमस्ते शब्द चलन में आये। जय शङ्कर, जय राम, जय श्रीकृष्ण, जय बजरङ्गी, पालागन-दण्डवत वग़ैरह मुहल्ला-समाज के सुधारक वर्ग को पुरानी जँचने लगीं। नमस्ते के साथ-साथ गुडमार्निंग का भी जाबेजा इस्तेमाल होने लगा।

लड़कों में अँगरेज़ी शब्द मिश्रित हिन्दी (या अपनी-अपनी प्रादेशिक मातृ-भाषा में) बोलने का रिवाज हुआ। चूँकि उन दिनों स्कूलों में अँगरेजी में बातचीत करने पर अधिक ज़ोर दिया जाता था, इसलिये जो लड़के फराफर अँगरेजी बोल लेते थे उनकी बड़ी धूम मचती थी। यह देखकर 'जैराम-जै-सी-किस्न' वाला वर्ग भी चेतने लगा। उसके पिता ने राष्ट्रीय स्वाभिमान वश होकर उसे म्लेच्छ भाषा नहीं पढ़ने दी थी, परन्तु वह अब नये ज़माने के प्रभाव में अपने लड़कों को अँगरेज़ी पढ़ाने का पक्षपाती होगया था। उस ज़माने में मिडिल पास की बड़ी वक़त थी। मेट्रिक छोड़, बी. ए. पास तक जनसाधारण की दृष्टि में मिडिल पास से बढ़े न थे। लोग बाग बी. ए. पास वालों से पूछ बैठते—"अमां एमे. बीए. किया सो ठीक, मगर अभी तक मिडिल पास किया था नहीं?" औरतों ने गीत तक जोड़ लिए थे—"सैयां हमारे मिडिल पास अँगरेज़ी बिगुल बजाते हैं।" हमारे भ० प्र० वा० उसी ज़माने के मिडिल पास हैं—हालांकि उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बनाने में जो प्रबल निष्ठा 'पास' की है, उसके आगे सारी डिगरियाँ हेच हैं।

औरतों में भी गोटे-पट्ठे की साड़ियों का रिवाज़ धीरे-धीरे उड़ने लगा; पारसी साड़ियों का फ़ैशन चला। पैरों में कलकतिया स्लीपरें, मोज़े, रेशमी रूमाल भी फ़ैशन में आगये। पत्तियों की दुपत्तियां, चौपत्तियां माँग निकलने लगीं। सलूके की जगह जम्पर ने ले ली। जम्पर में भी नये-नये तरीक़े के गले और बालों की काट आगई। गहनों में नेकलेस (बोल-चाल में नेक्लस, निर्कालिस, नेकलीस नेकलेट आदि) का माहात्म्य बढ़ा; इसी तरह इयरिंग (ऐरिंग, ऐरन), डायमण्डकट (डामरकाट, डामल) आदि गहने फ़ैशनेबुल चर्चा का विषय बने। धीरे-धीरे तमाम क़िस्मों के पुराने गहनों का चलन बंद हुआ। यद्यपि अब फिर कुछ पुराने गहने चलन में लौट आये हैं।

ज़माना और बढ़ा तो मुहल्लों की लड़कियां स्कूल जाने लगीं। सिविल लाइन्स की बाज़-बाज़ लड़की कालेज तक पहुँचने लगी। शादी में पढ़ी लिखी लड़कियों की माँग होने लगी, लड़की की फोटो देखने का हठ लड़कों में बढ़ा। दूल्हे सूट पहन कर घोड़े पर बैठने लगे। लड़कों को ज़री की कामदार टोपियों से चिढ़ होगई। कुछ रईस बच्चे असली और बाकी नक़ली फ़ैल्ट कैप पहनने लगे। सिर पर नाली, पान रखवाने या खस-खसी, पट्टेदार बालों के बजाय अंगरेज़ी फैशन के बाल आगये। यह सब नये चलन समाज में आ तो

गये, परन्तु उस काल की पूर्व सूचना के रूप में, जो काल पहली लड़ाई के दौरान में और उसके तुरन्त बाद आनेवाला था। रहा मूंछ पुराण, जो खास तौर पर दूसरी शताब्दी में तेज़ी से बढ़ा, सो उसके माहात्म्य कहाँ तक बखानूँ ! देश में अगर कोई मुछ-मुंडन इतिहास बटोरने को निकले, तो नोट्स के इतने काग़ज़ जमा हो जायेंगे कि उस इतिहासकार के कमरे में या तो वह खुद ही रहेगा, या उसके नोट्स रहेंगे। कहने का मतलब यह है कि जिस देश में मूंछ का बाल गिरवीं रखकर हज़ारों रुपये क़र्ज़ में मिल सकते हों, उस देश में यह क़हर बरपा हो जाय कि मूँछ नदारद हो जाय ! साढ़े पाँच हाथ के पिताजी बैठे रहें और सरवन पूत मुछमुण्डे होजायँ ! महाकवि अकबर उस ज़माने के हिन्दुस्तानी वालिद-बुज़ुर्गवारों के जी की बात कह गये है :

"कर दिया कर्ज़न ने ज़न मर्दों की सूरत देखिये।
इब्तिदा दाढ़ी से की और इन्तेहा में मूँछ ली ॥"

मगर इन सब परिवर्तनों से हुआ क्या ? नये-पुराने पेशों का हेर-फेर हुआ। पुराने पेशों के जानकार बेकार होकर बाल-बच्चों सहित भूखों मरने लगे। यहीं तक नहीं, अब तो पढ़े-लिखों के लिए भी बेकारी की समस्या सामने आगई थी। बीसवींसदी के पहले दस वर्षों में पिछली सदी दो शताब्दियों की अपेक्षा पढ़ा-लिखा वर्ग कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ा। आगे भी पढ़ा-लिखा तबक़ा तेज़ी से बढ़ा और बराबर बढ़ता ही जा रहा है। अपने क्लाइमैक्स पर पहुँच जानेवाली आज के शिक्षित वर्ग की बेकारी अपनी विकरालता का प्रथम परिचय नगर निवासी 'जैन्टिलमैन' समाज को देने के लिए, पहली लड़ाई से पहले ही आगई थी।

इस जगह, क्षण भर रुककर एक बार हम पीछे की तस्वीर को दुहरा कर देख लें। अंग्रेज़ों के आने से पहले नगर और ग्राम अपनी-अपनी आर्थिक चौहद्दी में सुरक्षित, खाते-पीते मस्त थे। ग़रीबी-अमीरी का भेद था ; अमीरों द्वारा ग़रीब सताये भी जाते थे ; सूदखोरी, मुनाफ़ाखोरी भी होती थी—यह सब होते हुए भी कोई भूखा नहीं मरता था; क्योंकि इन नगरों और गाँवों में रहनेवाले प्रत्येक जन को काम अवश्य मिल जाता था। इसके दो कारण थे: एक तो हमारी सांस्कृतिक परम्परा के प्रताप से निरंकुश सामंतों और सूदखोर महाजनों का यह धार्मिक कर्त्तव्य हो जाता था कि वे किसी को भूखा

न रहने दें ; दूसरे हमारे उद्योग-धंधे वैज्ञानिक साधनों के प्रभाव में छोटे पैमाने पर थे। इसलिए मुनाफ़े का पेटा भी अधिक फैला हुआ न था।

फिर अंग्रेज़ आये। ये लोग कोरे सम्राट न थे, बनिये भी थे। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे चलाने के लिए इन्हें शहरों की ज़रूरत थी। हिन्दुस्तानी बनिया भी सूदखोरी और छोटे औद्योगिक क्षेत्र से निकलकर वैज्ञानिक युग का उद्योग-पति बना। इन देसी-विलायती बनियों को चूसने के लिए गाँव गन्ने के समान जान पड़े। अँगरेज़ों के आने पर भारत के इतिहास में शायद पहली बार गाँवों की स्वतन्त्र स्थिति नष्ट हुई। गाँव नगर के ज़रखरीद ग़ुलाम बन गये। गाँव उजड़ने लगे, शहरों की रौनक बढ़ी। शहरों में रहनेवाला अफ़सरवर्ग व्यवसायी वर्ग और 'पढ़ा-लिखा' वर्ग तीनों बड़े खुशहाल थे ; किन्तु ज्यों-ज्यों पढ़ा लिखा वर्ग बढ़ता गया त्यों-त्यों शहरों में भी बेकारी फैलने लगी। इस तरह नये आर्थिक ढाँचे में ढलने वाले समाज में पहली बार प्राय: समान रूप से सार्वभौमिक बेकारी बढ़ी। देश में जागनेवाला राजनीतिक आंदोलन इस बेकारी से बल पा रहा था।

इसी अवसर पर पहला महायुद्ध आया। बेकारी की समस्या अस्थायी तौर पर हल हुई। मगर उन महायुद्धों से—जो 'प्रबल राष्ट्रों द्वारा अपने-अपने उद्योग-धन्धों के लिए बाज़ार बनाने के वास्ते, अपनी मुनाफ़ाखोरी का पेटा बढ़ाने के वास्ते किए जाते हों—मानव की मौलिक समस्याएँ कभी हल हो ही नहीं सकतीं। यह हम दो महायुद्धों के अनुभव से भली-भाँति जान गये हैं। गांधी के नेतृत्व में होनेवाला भारतव्यापी महान् जन आंदोलन पहले महायुद्ध के कारण रोज़-ब-रोज़ बढ़नेवाली महँगाई, बेकारी, ग़रीबी, भुखमरी का नाश करने के लिए ही आया था। दूसरे महायुद्ध के बाद विलायती बनिया तो रोग-अकाल पीड़ित नंगी भारतीय जनता के तेज से तप कर भाग खड़ा हुआ ; और अब हमारा देसी बनिया सींग-पूँछ फटकार कर जनता का बल-वैभव तथा अपनी निरंकुशता, नृशंसता का अंत देखने के लिये तैयार हो रहा है।

छप्पनिया अकाल की पृष्ठभूमि में जन्म लेनेवाला मंगलपुर का हीरो नगर में आकर, मिडिल क्लास का अंग बनकर उन सभी अच्छी बुरी मान्य-ताओं से टकराया है जो इन तिरेपन वर्षों से इस देश पर छा रही हैं। वाजपेयीजी रोमांटिक कहानियों के प्रणेता हैं, यह सही है ; पर न तो

उन्होंने सस्ती छिछली भावनाओं को बढ़ावा दिया है और न वे कभी समाज की कुरीतियों तथा राजनीति की कुरीतियों से ही ग़ाफ़िल रहे हैं। उन्होंने दहेज प्रथा की हृदयहीनता का चित्रण किया है, पतिता कहलानेवाली स्त्रियों का उज्वल पक्ष दिखलाकर पाठकों के हृदय में उनके लिए सहानुभूति जगाई है, बापू की छत्र-छाया में होने वाले जन-आंदोलन की तस्वीरें पेश की हैं और मज़दूरों भिखमंगो को भी अपने साहित्य का हीरो बनाया है।

इतने पापड़ बेलने के बाद, चौवन वर्ष की आयु तक पहुँच कर भी मेरे महामना कलाकार भ. प्र. वा. ने कभी सुख-चैन की रोटी नहीं खाई। इस अपढ़ किसान के बेटे का साहित्य-दान बड़े-बड़े धनाधीशों के लाखों के दान से कई लाख गुना अधिक मूल्यवान है।

ऐसे अटूट लगनवाले चौवन बरस के नौजवान कलाकार को मेरे शत्-शत् प्रणाम्!

वाजपेयीजी की कहानियाँ : शिल्पविधान

ले०—डा० लक्ष्मीनारायणलाल, एम० ए०, पी-एच० डी०

इन कहानीकारों ने प्रेमचन्द की यथार्थ कला को ही विकास नहीं दिया, बल्कि उन्होंने अपने-अपने विधानात्मक स्वर भी दिये हैं। ये स्वर विशेषतया समाज की यथार्थ भाव-भूमि से उसके विश्लेषण, मूल्यांकन और उसके ह्रास के प्रति मानवीय सहानुभूति और आदर्श के स्वर थे। श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी इसी स्वर के अग्रणी और विशिष्ट कहानीकार हैं।

हिन्दी कहानियों के विकासयुग के अधिष्ठाता थे—प्रेमचन्द और प्रसाद। इनसे यद्यपि दो स्वतन्त्र विराट प्रवृत्तियों का विकास हुआ, लेकिन इन दोनों कृतिकारों की कला का उद्देश्य प्राय: एक ही था। मार्ग दो थे, विधान अलग-अलग, लेकिन लक्ष्य एक ही था जातीय गौरव की भावना। इस एकांतिक भावना ने प्रसाद को अतीत के भाव-लोक की ओर प्रेरित किया। प्रेमचन्द को दूसरा पथ मिला—वह था, यथार्थ समाज और उसकी व्यापक दुर्व्यवस्थाएँ। अतएव समाज का वैषम्य, अत्याचारों का विरोध, शोषित-निर्धन और जर्जर समाज के प्रति गहरी समवेदना आदि प्रेमचन्द की कला के विशिष्ट स्वर थे।

कला की यही यथार्थवादी परम्परा अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली ढङ्ग से आगे बढ़ी और इसी विकास-पथ में हिन्दी के वे समस्त कहानीकार आये, जिनसे प्रेमचन्द के उपरान्त इस कला को समृद्धि मिली। इन कहानीकारों ने प्रेमचन्द की यथार्थ कला को ही विकास नहीं दिया, बल्कि उन्होंने अपने-अपने विधानात्मक स्वर भी दिये। ये स्वर विशेषतया समाज की यथार्थ भाव भूमि से उसके विश्लेषण, मूल्यांकन और उसके ह्रास के प्रति मानवीय सहानुभूति और आदर्श के स्वर थे। श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी इसी स्वर के अग्रणी और विशिष्ट कहानीकार हैं। उनकी विशिष्टता के दो कारण थे—वाजपेयीजी ने अपनी कहानी-कला के लिये समाज के जिस अङ्ग को उपजीव्य बनाया, वह एक सीमित और उनका अति परिचित क्षेत्र था। दूसरी ओर, उस सीमित क्षेत्र से कहानीकार का दृष्टिकोण अत्यन्त विशद और असीम था—तभी उसका दृष्टि-विन्दु निरपेक्ष, निरासक्त था और अगर उसमें कहीं आसक्ति भी थी, तो उसका एक निश्चित एकांतिक उद्देश्य था, जो मानवीय समवेदना और आदर्शों में अत्यन्त भारतीय था।

वाजपेयीजी ने १६२२ ई० से कहानियाँ लिखनी आरम्भ की थीं। उनका प्रथम कहानी-संग्रह 'मधुपर्क' १६२६ में प्रकाशित हुआ था। इस विकास-पथ में उनके अनेक कहानी-संग्रह जैसे—दीपमालिका (१६३१), हिलोर (१६२१), पुष्करिणी (१६३६), खाली बोतल (१६४०), मेरे सपने (१६४०), ज्वारभाटा (१६४०), उपहार (१६४३), अंगारे (१६४३) और उतार-चढ़ाव (१६५०)।

उक्त समस्त कहानी-संग्रहों में संकलित, वाजपेयीजी की कहानियों के स्वर एक हैं—मध्यमवर्गीय समाज, उसकी अपनी मान्यताएँ, मान्यताओं में उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन, उन्नयन और ह्रास और इसके भी ऊपर एक कटु आलोचक की भाँति समाज को अत्यन्त समीप से देखना, लेकिन इसके साथ ही साथ अपनी परम भावुकता, आदर्शवादिता और भारतीयता के स्पर्शों से समाज के कुचक्रों, भयानक विवर्तों में पड़े हुए घायल-उदास-असहाय व्यक्तियों के हृदय को रँग देना, इन कहानियों की अपनी विशेषता है।

'मधुपर्क', 'दीपमालिका', 'हिलोर' और 'पुष्करिणी' की कहानियाँ, वाजपेयीजी की कला के प्रथम चरण में आती हैं। दूसरे चरण की कहानियाँ 'मेरे सपने', 'ज्वार-भाटा' और 'कला की दृष्टि' में संकलित हैं और 'उपहार',

'अङ्गारे' और 'उतार-चढ़ाव' की कहानियाँ वाजपेयीजी के तीसरे चरण की कहानियाँ हैं। इन तीनों चरणों की कहानियों को हम क्रमशः आरम्भ, विकास और उत्कर्ष काल की कृतियाँ कह सकते हैं।

प्रथम काल की कहानियों में जितने भी कथानक आये हैं, उनमें एक-सूत्रता और इतिवृत्तात्मकत्व स्पष्ट है और इससे भी बड़ी विशेषता उनमें कथासूत्र की निश्चितता है। उनके निर्माण में संयोगों, घटनाओं का सहारा तो लिया गया है, लेकिन फिर भी उनको एकसूत्रता देने के लिये कथानक निर्माण के कई ढङ्ग सामने आये हैं। यथा—

(अ) प्रथम पुरुष में कहानी का सूत्र आरम्भ होता है, पुरुष की दृष्टि में कुछ सामूहिक पात्र अपना काम करते चलते हैं। उन्हीं के बीच से कथासूत्र विकसित होता है और वर्णनकर्ता पुरुष अपनी समवेदना, अपनी दृष्टि से उसकी सम्पूर्णता को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जैसे—'निंदिया लागी' 'हृद्गति' 'तारा' 'स्वप्नमयी' 'शबनम' और 'गृहस्वामिनी'।

(आ) दूसरे प्रकार के कथानक वे हैं, जिनका निर्माण, अलग व्यक्तियों से सम्पृक्त सूत्रों को पत्रों, डायरी के पृष्ठों द्वारा एक में गूँथकर उसमें इतिवृत्तात्मकता का सौन्दर्य्य उपस्थित किया जाता है। जैसे—'प्रेमचक्र' 'प्रेमलता'।

(इ) तीसरे प्रकार के कथानक वे हैं, जो वर्णनात्मक शैली से उभारे गये हैं। यहाँ कभी एक, दो या तीन पात्रों को लेकर वह सूत्र आगे बढ़ा है और कभी पात्रों के समूह को भी लेकर। कथा के इस निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक घटनाएँ, अधिक कार्य-व्यापार प्रस्तुत किये गये हैं और इनमें कौतूहल के भी तत्त्व अधिक हैं, जिसके फलस्वरूप कथा में एकरसता और समरसता आ सकी है। जैसे—'बैक ग्राउण्ड' 'बरात में' 'चोर' 'प्रतिदान' और 'सूखी लकड़ी'।

दूसरे चरण की कहानियों में कथानक की इतिवृत्तात्मकता अपेक्षाकृत सूक्ष्म हुई है। लेकिन एकसूत्रता उसी तरह निश्चित और स्पष्ट है। कथासूत्र के निर्माण में अब संयोगों—अप्रत्याशित घटनाओं—की सशक्त योजना नहीं है, बल्कि इस चरण की कहानियों की कथाएँ अत्यन्त स्वाभाविक और सहज हुई हैं। कथासूत्र की सीमा में अपेक्षाकृत अब जीवन का एक प्रसंग लिया गया है और उस प्रसंग में एक विशेष मनोभाव पर—उसके दिग्दर्शन, विश्लेषण,

आकलन पर ध्यान दिया गया है। कथासूत्र के निर्माण में और भी कलात्मक ढङ्ग हमें मिलने लगे हैं। (अ) प्रथम पुरुष से सूत्र आरम्भ होकर आगे बढ़ता है; उसमें और भी पात्र आकर अपनी आत्म-कथाओं के संयोग से उस सूत्र को सबलपूर्ण बनाते हैं। जैसे—'खाली बोतल' 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' तथा 'कबाड़ी'। (आ) वर्णनात्मक शैली के बीच से चिन्तन, स्मृति के सहारे कथासूत्र का निर्माण करना। जैसे—'जहाँ सभ्यता साँस लेती है' 'झरना' और 'अँधेरी रात'।

तीसरे चरण की कहानियों में कथासूत्र की इतिवृत्तात्मकता टूट-सी गयी है। छोटे-छोटे घटनाचक्रों के बीच से एकसूत्रता को बाँधने का प्रयत्न हुआ है। जैसे—'नर्तकी'। अन्यपुरुष की भी शैली में चिन्तन, स्मृति-खण्डों के बीच से सूत्र विकसित किया गया है। जैसे—'छोटे बाबू' 'एलबम' 'रात के दो बजे' 'घटनाचक्र' तथा 'संकल्पों के बीच में'। जीवन के एक विशेष प्रसंग के बीच चरित्र की समस्त भावनाओं, वृत्तियों में से किसी एक को लेना और उसे 'स्नैपशाट' के रूप में कहानी में प्रस्तुत कर देना। जैसे—'वह रात' और 'एक बार'।

वाजपेयीजी की कहानियों में चरित्र-व्यवस्था और उनकी देश-काल-परिस्थिति सीमित है। जैसा कि आरम्भ में कहा गया है; वाजपेयीजी ने अपनी कला में समाज के मध्यम-वर्ग—मुख्यत: निम्नमध्यम वर्ग को लिया है। इस वर्ग में भी इन्होंने विशिष्टता स्त्रीपात्रों को दी है। स्त्रीपात्रों को ही इनकी कहानियों में प्राय: नायकत्व मिला है। उन्हीं के दर्द-दुख, शोषण, उत्पीड़न, प्रेम-नैराश्य की ही संवेदनाओं से इन्होंने अपनी उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी हैं। लेकिन एक ही वर्ग से लिये जाने पर भी स्त्रीपात्रों के अनेक रूप, अनेक संभावनाएँ और ऐसी अनेक स्थितियाँ हमारे सामने आती हैं जिनके फलस्वरूप एक तरह से सम्पूर्ण स्त्रीत्व, उसके सब प्रश्न, सब मर्यादाएँ, सब स्तर हमारे सामने आ जाते हैं।

स्त्रीपात्रों के चरित्र-निर्माण और उनके चरित्र-चित्रण का रहस्य ही तो वाजपेयीजी की कला का मेरुदण्ड है। स्त्रीपात्रों की विविधता और उनके अनेक रूपों के माध्यम से उन्होंने समाज की यथार्थ भावभूमि को छुआ है; और उनके शोषण, उत्पीड़त और करुणा के आँसुओं में डूबकर वे तलदर्शी हुए हैं। गृहस्वामिनी—रजनी, घर-परिवार की अधिष्ठात्री है। उसके व्यक्तित्व में घर का सारा यथार्थ वातावरण और आदर्श प्रतिष्ठित है। 'हृदगति' की फूल, 'शबनम' की शबनम, 'तारा' की तारा, 'स्वप्नमयी' की नलिनी, 'मैना'

की 'साधना' 'छोटे बाबू' की 'शशि' आदि स्त्री-चरित्र प्रेम के सम्पूर्ण चित्रफलक पर अत्यन्त स्वस्थ, भारतीय और कर्म-प्रेरणाओं के प्रतीक रूप में आये हैं। इन चरित्रों से एक ओर समाज के असंगत-अस्वस्थ-उच्छृंखल प्रेम की परीक्षा हुई है और उसमें ह्रासोन्मुख सामाजिक चेतना को स्पर्श किया गया है—लेकिन दूसरी ओर इन्हीं चरित्रों द्वारा ह्रास के स्थान पर उन्नयन, असंगत के स्थान पर संगत, अस्वस्थ के नाम पर स्वस्थ भावना की भी प्रतिष्ठा हुई है।

स्त्री पात्र वाजपेयीजी की कहानियों में एक तीसरी भी भूमिका से आये हैं। यह भूमिका शहर-नगर की तङ्ग गलियों और सभ्यता के अन्धकार में उभरती है। यहाँ से इन्होंने अनेक वेश्या-स्त्री पात्रों को लिया है; जैसे—'चोर' की 'शबनम' 'अँधेरी रात' की 'कजली'। इन चरित्रों के माध्यम से वाजपेयीजी ने सामाजिक अगति और उसके नङ्गेपन को पर्दाफाश करके दिखाया है—"मैं वेश्या हूँ। क्या मेरे हृदय नहीं है, आत्मा नहीं है? मनुष्यता मर गयी है?"··· "जो अपराध तुमने मुझ पर लगाये हैं, उनकी सफ़ाई मेरे बदन भर में पड़ी हुई इन काली-नीली, मिटी और बनी हुई रेखाओं से पूछो—घावों के निशानों और जली हुई खाल की सफ़ेदी से पूछो।"······"तो घड़ी चुप रह कर भी कुछ बोल रही है, बतलाती है कि मैं क्यों मौन हूँ। यों मौन रह कर भी वह मौन रहने का मर्म खोलती है। कहती है कि मैं इसी तरह पड़ी रहती हूँ। हाँलाकि टूट गयी हूँ और रहती सदा मौन हूँ। घृणित भी मेरे लिये ग्राह्य है।"

पुरुष चरित्रों की अवतारणा वाजपेयीजी की कहानियों में प्राय: सहायक पात्रों के रूप में हुई है। लगता है जैसे इनकी कला की नियामिका, सूत्र धारिणी स्त्रियाँ हैं और पुरुष पात्र उनके पुतले हैं जो उनके संचालन और नायकत्व के निर्देशन में विकसित होते हैं। ये पुरुष पात्र भी उसी वर्ग से आये हैं और उनके भी उतने ही स्तर, उतनी ही स्थितियाँ यहाँ स्पष्ट हुई हैं। लेकिन जितनी अन्तर्दृष्टि, जितनी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा स्त्री-पात्रों की हुई है उतना पुरुष पात्रों की नहीं। यों कहा जा सकता है कि स्त्री पात्र को नायकत्व, विशेषता मिलने के कारण उनकी जहाँ व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ पुरुष पात्रों के चरित्र-चित्रण और चरित्र व्याख्या ही देकर कहानीकार संतुष्ट हो गया है।

इस दिशा में, लेकिन एक सत्य सर्वोपरि है—वाजपेयीजी की समस्त कहानियों में चरित्र-अवतारणा अत्यन्त मानवीय भूमिका से हुई है। सब चरित्र उतने ही निर्बल, उतने ही निम्न हैं, जितना कि वे कहीं-न-कहीं महान और

उत्कृष्ट हैं। क्योंकि सब चरित्र संघर्षों और जीवन के ज्वारभाटों के बीच से उभारे गये हैं। सब में गति है, अगति है, लेकिन बहुत कम चरित्र कुंठित और मन-रहित हैं।

रचनाविधान की दृष्टि से वाजपेयीजी की कला में विशेष विभिन्नता नहीं है। कहीं से भी कलागत प्रयोग का आग्रह नहीं है। मुख्यत: निम्नलिखित शैलियों में कहानियाँ लिखी गयी हैं :—

(अ) ऐतिहासिक (वर्णनात्मक) शैली। जैसे—रहस्य की बात, संकल्पों के बीच, ज़हर के बदले, बरात में, चोर, जहाँ सभ्यता साँस लेती है, लिली आदि।

(आ) स्वगत कथन-शैली। जैसे—'निंदिया लागी', 'बैक-ग्राउण्ड', 'हृदगति', 'तारा', 'स्वप्नमयी', 'शबनम', 'प्रेमलता', 'कबाड़ी' और 'खाली बोतल' आदि।

(इ) पत्रात्मक शैली। जैसे—'प्रेमचक्र'।

(ई) मिश्रित शैली (पत्र-डायरी-वर्णन)। जैसे—'प्रेमलता'।

उक्त समस्त विधानों में स्वगत कथन-शैली में वाजपेयीजी को सबसे अधिक सफलता मिली है। इस विधान में उन्हें अन्तर्दृष्टि के साथ-ही-साथ विश्लेषण और वस्तु-मनन में सफलता मिली है। इस शैली में कला पर कलाकार के व्यक्तित्व के प्रक्षेपण की सबसे बड़ी आशंका रहती है। बड़े-से-बड़े कलाकार इस शैली में असफल हो जाते हैं। वाजपेयीजी को कहीं-कहीं अपूर्व सफलता मिली है—'खाली बोतल' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

विशुद्ध रचना की दृष्टि से वाजपेयीजी की कहानियों में विकास के उक्त तीनों चरण अपनी-अपनी कलागत विशेषताओं के साथ आये हैं। प्रथम चरण की कहानियाँ भूमिका के साथ प्रारम्भ होती हैं। उनका विकास चमत्कारिक घटनाओं और अप्रत्याशित कार्यव्यापारों से किया गया है। चरम सीमाएँ भी घटना या संयोग पर प्रतिष्ठित हुई हैं। इस चरण की कहानियों में चरमसीमा के उपरान्त उपसंहार भी जोड़ा गया है—"यह कथा यहीं समाप्त हो गयी है, किन्तु इस कथा के प्राण में जो अन्तर्कथन है, उसी की बात कहता हूँ—कभी-कभी रात के सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट-सा मैं कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ... कोई खिलखिलाकर हँस रही है......।"

दूसरे और तीसरे चरण की कहानियों में क्रमशः रचनातत्त्व से भूमिका और उपसंहार—ये दोनों समाप्त हो गये हैं। कहानियाँ जीवन के एक प्रसंग को लेकर कौतूहल के साथ आरम्भ होती हैं, विकास-क्रम में जिज्ञासा के सहारे सहज घटनाएँ, कार्य-व्यापार आते रहते हैं और कहानियाँ अपनी चरम एकांतिकता और प्रभाव पर समाप्त हो जाती हैं। विकास का यही क्रम वाजपेयीजी की भव्य शैली-वर्णन-चित्रण और कथोपकथन आदि के सम्बन्ध में भी मिलता है। देश-काल-परिस्थिति आदि के चित्रण-वर्णन में सूक्ष्मता और सरलता है।

वाजपेयीजी की समस्त कहानियाँ विशुद्ध सामाजिक धरातल से निर्मित हुई हैं। उनके चित्र-फलक पर हमारा मध्यमवर्ग साफ़ उतर आया है। इस वर्ग में वस्तुगत-चरित्रगत-व्यक्तिगत-समाजगत कितनी विषमताएँ और विशृंखलताएँ उपस्थित हुई हैं और होती जा रही हैं, वाजपेयीजी की कहानियों का यही एकान्तिक स्वर है। यही कारण है कि अधिकांश कहानियाँ करुणाजनक है। प्रायः सब की चरमसीमाएँ जीवन के एक ऐसे मोड़, ऐसी स्थिति पर प्रतिष्ठित होती हैं, जहाँ करुणा है, चोट है, घाव है, मूक विराग है। लेकिन वाजपेयीजी के कृतिकार व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता भी वहीं है, जहाँ उन्होंने हमारे घाव को छूकर, समाज का पर्दाफ़ाश करके, उसे उसी तरह नहीं रहने दिया है, वरन् उस पर अपने अदम्य आशावाद के अमृत से नव-प्राण, नवसृजन का संदेश दिया है।

हिन्दी कहानी को वाजपेयीजी की विशेष देन

ले०—प्रो० मोहनलाल 'जिज्ञासु', एम० ए०, एल-एल० बी०

आधुनिक कहानियों को बाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ाकर मानव जीवन के अन्त: जीवन-रहस्यों के उद्घाटन का साधन बनाने का श्रेय मुंशी प्रेमचन्द को अवश्य प्राप्त है, किन्तु उन्होंने मानव-चरित्र का साधारण चित्र ही अपनी कहानियों में अंकित किया है। मनुष्य के जीवन में जटिलताओं की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ इस बात की आवश्यकता हुई कि मनोवैज्ञानिक कारणों से जीवन के परिवर्तित रूपों को भी सांकेतिक घटनाओं और प्रसंगों के बीच स्थान मिले। इस अभाव की पूर्ति वाजपेयीजी द्वारा मार्मिक रूप से हुई है, यह निःसंकोच स्वीकार करना पड़ेगा।

विश्वविद्यालयों में विविध हिन्दी-कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में कहानियों का एक-न-एक संग्रह अवश्य रहने से मुझे लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की कहानियों का

अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब तक ऐसा कोई कहानी-संग्रह मेरे देखने में नहीं आया, जिसमें श्रद्धेय भगवतीप्रसादजी वाजपेयी की कहानी को स्थान न मिला हो। इससे कहानी के क्षेत्र में उनकी सर्वप्रियता का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। मैं उनकी कला को आदर की दृष्टि से देखता रहा हूँ और जब कभी गूढ़ साहित्य का अध्ययन करते-करते थक जाता हूँ तो भाव-विश्राम के लिए उनकी कहानियों की शरण लेता हूँ। इस नाते उनसे मेरा साहित्यिक परिचय पुराना है।

वाजपेयीजी हिन्दी के उन इने-गिने कहानीकारों में से हैं, जिन्होंने कहानी-साहित्य की परम्परा में एक अभूतपूर्व परिवर्तन कर उसे नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया है। एक युग था, जब कहानी पढ़ने-सुननेवालों के जीवन में पर्याप्त अवकाश था। लम्बी कहानियों की चाह थी। आधुनिक युग यान्त्रिक सभ्यता का युग है। पाठक के पास अवकाश कम है। मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं पर अविरत प्रकाश पड़ता जा रहा है। पाठक की जानकारी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है। अतः आज के कर्म-क्लांत जीवन में जो कहानीकार छोटी-से-छोटी कहानी द्वारा कम-से-कम समय में पाठकों के जीवन को आनन्द-रस से सरसित कर सके, वही सच्चा कहानीकार कहा जा सकता है और उसी की कहानियाँ जनता के गले का हार हो सकती हैं। हर्ष का विषय है कि वाजपेयीजी को नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप कहानी की सूक्ष्म पहिचान है। आत्मा, रूप और शैली की दृष्टि से आधुनिक कहानियों को हृदयंगम करने के लिए उनका कहानी-साहित्य बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

वाजपेयीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, बाल-साहित्य और सम्पादित ग्रंथ लिखे हैं और खूब लिखे हैं, किन्तु प्रधानतः वे एक कथाकार के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। कहानी के क्षेत्र में उन्हें विशेष रूपसे सफलता प्राप्त हुई है। वे अपने समय के एक अति मौलिक कलाकार हैं। 'मधुपर्क' (१९२९), 'दीपमालिका' (१९३१), 'हिलोर' (१९२१), 'पुष्करिणी' (१९३९), 'ख़ाली बोतल' (१९४०), 'मेरे सपने' (१९४०), 'ज्वार-भाटा' (१९४०), 'कला की दृष्टि' (१९४२), 'उपहार' (१९४३), 'अंगारे' (१९४३) और 'उतार-चढ़ाव' (१९५०) संग्रहों की कहानियाँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। 'मधुपर्क' से लेकर 'उतार-चढ़ाव' तक उनकी कहानी-कला का क्रमिक विकास हुआ है, जिससे विद्वान-लेखक के व्यक्तित्व को

समझने में बड़ी भारी सुविधा होती है। वाजपेयीजी की कहानियाँ इतनी अधिक हैं कि शैली और रूप की दृष्टि से उनका वर्गीकरण करना एक दुस्तर कार्य है। उन्होंने प्राय: सभी प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं और लिखने की प्राय: सभी पद्धतियों का आश्रय लिया है। एतदर्थ, किसी विशेष कहानी को दृष्टि-पथ पर न रखते हुए हम उनकी समष्टिवत विवेचना ही प्रस्तुत करेंगे। वैसे पृथक् रूप से उनका विवेचन एक लम्बा-चौड़ा विषय है।

आधुनिक कहानियों में कथा-भाग नगण्य होता है। केवल मनोरंजक बातों, चुटकुलों और चित्ताकर्षक प्रसंगों के आधार पर लिखी जानेवाली कहानी हमारे हृदय को क्षिप्रता से स्पर्श कर लेती है। वाजपेयीजी के पास भी अपने पाठकों से कहने के लिए मन की एक छोटी सी बात होती है, जिसे वे इतने कलात्मक ढँग से कह डालते हैं कि पढ़नेवाला उनके पीछे-पीछे हो लेता है, रुकने का कहीं नाम नहीं लेता और निर्विघ्न कहानी के अन्त तक पहुँच जाता है। कहानी के बीच में वे अपनी ओर से निकालकर कुछ भी नहीं देते। पाठक कहानी के अन्त में उनके मतलब से अवश्य अवगत हो जाता है और जहाँ ऐसा होता है, वहीं कहानी समाप्त हो जाती है। पाठक मन मारकर रह जाता है।......एक कुशल व्यावहारिक पुरुष जैसे किसी को झाँसा देते हुए अपना मतलब सिद्ध कर चलता बनता है, वैसे ही वाजपेयीजी को कहानी के रूप में अपने पाठकों की आँखों में धूल झोंकना खूब आता है और यह काम वे बड़ी ही सतर्कता, सावधानी और बुद्धिमानी से कर लेते हैं।

आधुनिक कहानियों के सम्बन्ध में यह बात विचारणीय है कि कहानी कहना भी दूसरों को धोखा देना है; लेकिन यह धोखा एक साहित्यिक धोखा होता है, एक अनोखे ढंग का होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वाजपेयीजी को जहाँ कहानी कहना आता है वहाँ वे कहानीपन को भी नहीं भूले हैं। उनकी कहानियाँ चातुर्य से तैयार की गई कलात्मक पूर्णता के उत्कृष्ट उदाहरणों की ओर संकेत करती हैं।

इन विविध संग्रहों की कहानियों में मानव-चरित्र के सुन्दर और प्रभावशाली रूप चित्रित किये गये हैं। वाजपेयीजी की कहानियाँ वस्तुत: मनोविज्ञान को अपना आधार बनाकर चलती हैं, जिनमें असाधारण परिस्थिति के बीच पात्रों के चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। घटनायें और प्रसंग केवल संकेत मात्र होते हैं, जिनके द्वारा प्रधान पात्र के प्रतिनिधि

गुण-अवगुण ही पाठकों के ध्यान में लाये जाते हैं। इस प्रकार इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य किसी पात्र के गुण अथवा अवगुण का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना ही होता है। आधुनिक कहानियों को वाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ाकर मानव-जीवन के अन्त:रहस्यों के उद्घाटन का साधन बनाने का श्रेय मुंशी प्रेमचन्द को अवश्य प्राप्त है, किन्तु उन्होंने मानव-चरित्र का साधारण चित्र ही अपनी कहानियों में अंकित किया है। मनुष्य के जीवन में जटिलताओं की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ इस बात की आवश्यकता हुई कि मनोवैज्ञानिक कारणों से जीवन के परिवर्तित रूपों को भी सांकेतिक घटनाओं और प्रसंगों के बीच स्थान मिले। इस अभाव की पूर्ति वाजपेयीजी द्वारा मार्मिक रूप से हुई है, यह नि:संकोच स्वीकार करना पड़ेगा। इस दृष्टि से उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को सुन्दर रूप से विकसित किया है। इधर कुछ वर्षों से हिन्दी के अन्य कहानीकारों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ है, जिनमें जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पहाड़ी, सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', इलाचन्द्र जोशी आदि के नाम सगर्व लिये जा सकते हैं। किन्तु इनमें ऐसे लेखक भी हैं जिनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दुरूहता में निष्प्राण हो गईं हैं और जो सहज ही में पकड़ में नहीं आ सकतीं। यह सच है कि कहानी में मनोविज्ञान का आधार हो और मनोविज्ञान के आधार पर लिखी गईं कहानियाँ उच्चतम कला-कृतियाँ होती हैं, किन्तु साथ ही इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि लेखक कहानीपन भूलकर मनोविज्ञान का ज्ञाता ही बन बैठे। यदि कहानीकार दार्शनिक बनकर ऐसी कहानी का सूत्रपात करेगा तो एक ओर उसे समझने में बड़ी भारी कठिनाई होगी तथा दूसरी ओर किसी रस, कार्य, घटना अथवा प्रसंग के अभाव में वह शुष्क और नीरस हो जायगी। वाजपेयीजी की कहानियाँ इस दोष से सर्वथा रहित हैं। उन्होंने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ कहानी की मर्यादा की अच्छी रक्षा की है। सारांश में वे अपने समकालीन लेखकों से बहुत आगे निकल गये हैं। 'अपमान का भाग्य', 'झाँकी', 'त्याग', 'वंशीवादन', 'आत्मघात', 'हत्यारा', आदि कहानियाँ कला की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष हैं। उनकी 'मिठाईवाला' ने तो सबका दिल चुरा लिया है।

वाजपेयीजीकी कहानियों में पात्रों के कथोपकथन बहुत स्वाभाविक हैं और पात्रों के अनुसार भाषा में भी परिवर्तन उपस्थित कराया गया है,

इससे उनकी सजीवता में वृद्धि हुई है। अन्य स्थानों पर उनकी भाषा सरल, सुन्दर, चुस्त और हृदयग्राही है। शैली में प्रसाद गुण कह देने से ही तृप्ति नहीं होती, उसमें एक विशेष प्रकार का माधुर्य देखने को मिलता है। वर्ण्य शैली ग़ज़ब की है। वे जिस वस्तु का वर्णन करते हैं, उसकी जीती-जागती तसवीर हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है। ऐसा करते समय उन्होंने चतुर कहानीकार की तरह केवल थोड़ी रेखाओं से ही काम लिया है। इस दृष्टि से 'सूखी लकड़ी', 'निंदिया लागी', 'चोर', 'प्रतिदान', 'गृह-स्वामिनी', 'एलबम', 'रजनी' आदि उल्लेखनीय हैं। वातावरण-प्रधान कहानियों में लेखक ने सौंदर्य से परिपूर्ण यथार्थ वातावरण की सृष्टि की है।

एक बात और। उनकी कहानियों का अन्त अन्य कहानी-लेखकों से भिन्न होता है। यहाँ वाजपेयीजी की विशेषता केवल इसी बात में है कि वे अन्त से पूर्व अपने पाठक को निकाल कर कुछ नहीं देते। मेरा अभिप्राय कहानी के प्रमुख लक्ष्य तथा पात्र की विशेषता से है। अन्त में केवल थोड़े शब्दों में साँस लेकर उस ओर संकेत कर देते हैं और इसी स्थल पर कहानी का यथार्थ सौंदर्य देखा जा सकता है। हठात् हम लेखक की रचना-चातुरी पर आश्चर्य प्रकट करने लगते हैं। इसी में उनकी मौलिकता है। 'निंदिया लागी' का यह अन्त देखिये—

"यह कथा यहीं समाप्त हो गई है; किन्तु इस कथा के प्राण में जो अन्तर्कथा है, उसी की बात कहता हूँ। उपर्युक्त घटना के पीछे कुछ वत्सर और जुड़ गये हैं। यह बँगला अब मुझे रहने के लिए दिया गया है। मैं अब अकेला ही इसमें रहता हूँ। कई सहस्र पुस्तकों के महत् ज्ञान से आवृत मैं—लोग कहते हैं— प्रोफ़ेसर हूँ : जीवन और जगत का तत्वदर्शी। लेकिन मैं अपनी समस्या किससे कहूं—अपना अन्तर किसको खोलकर दिखलाऊँ ? बच्चे सुनें तो हँसे और बीबी सुने तो कहे—पागल हो गये हो !

कभी-कभी रात के घोर सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट-सा मैं कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूं। कोई खिल-खिल हँस रही है। कोई धक्का देकर कह रही है—गा री पत्ती ! और चूड़ियाँ खनक उठती हैं, छत कुटने लगती है और एक कोमल अत्यन्त कोमल गायन स्वर फूट पड़ता है—निंदिया लागी......।

श्रौर उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, वे वहाँ से उठकर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं!"

इस प्रकार यदि हम उद्देश्य की दृष्टि से इन विविध कहानियों का विश्लेषण करें तो उनके अन्तराल में पायेंगे—व्यक्ति और समाज की जलती हुई मनस्थितियों का यथार्थ चित्रण, पीड़ित मानवता के करुण आर्त्तनाद और जागरण का कलापूर्ण निरूपण। ये कहानियाँ निःसन्देह समाज के उन गुप्त स्थलों की मर्मवाणी हैं, जहाँ सभ्यता के चरण रुक जाते हैं। वाजपेयीजी ने जहाँ पृथ्वी पर के शोषितों का यथार्थ चित्रण उपस्थित किया है, वहाँ वे स्वर्ग की कल्पना करना भी नहीं भूले हैं। उनके मत में इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनना है और यह तभी सम्भव है, जब हम अपनी संकुचित स्वार्थ-भूमि से ऊपर उठ कर दुनियाँ का दुख-सुख अपना दुख-सुख समझें। इस प्रकार का आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद समाज के लिए श्रेयस्कर है। वे अपनी प्रतिभा और चातुर्य के कारण अखिल भारतीय कहानी लेखकों में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो गये हैं।

जीवन के प्रति वाजपेयीजी का दृष्टिकोण स्वस्थ और स्पष्ट है। मानव-जीवन सम्बन्धी गहरे अनुभव और मांसल अनुभूतियाँ ही उनकी समस्त कहानियों की आधार-शिलाएँ हैं। उन्हें बात करना आता है, बात बनाना आता है और बात को सुधारना भी आता है। उनकी बात-बात में कहानी के तत्त्व उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं। फिर उन्होंने इस चलती-फिरती, बनती-बिगड़ती दुनियाँ को समीप से देखा है, समझा है और अनुभव किया है। इन्हीं सब कारणों से उन्हें एक सुन्दर कलापूर्ण कहानी की सृष्टि करते देर नहीं लगती।

गत वर्ष दिल्ली में मेहरचन्द-मुन्शीराम फ़र्म (प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता) के स्वामी भाई मनोहरलाल जैन के यहाँ मेरी उनसे सर्व प्रथम भेंट हुई थी। उन दिनों उनका 'पतवार' उपन्यास छप रहा था। 'प्रूफ़्स' मेज पर पड़े हुए थे। वे उनको पढ़ने में लगे हुए थे। भोजन साथ-साथ होने के पश्चात् करीब डेढ़-दो-घण्टे तक हमारी साहित्यिक वार्ता हुई थी। इधर वर्षों से मैं उनकी कला-कृतियों को आदर और सम्मान की दृष्टि से देखता रहा था। अतएव उनके शब्द-शब्द को बड़े ध्यानपूर्वक सुन रहा था। मैंने उनके जीवन में सादगी और विचारों में उच्चता देखी और देखा कि हिन्दी-कहानी-साहित्य का यह मर्मज्ञ लेखक केवल अपनी कहानियों में ही इस रूप का निर्वाह नहीं

कर रहा है, प्रत्युत उसके बोलने में भी एक खास तर्ज, अदा और लोच है। जीवन और साहित्य की एकरूपता देखकर मुझे विशेष प्रसन्नता हुई। अपनी बातचीत के दौरान में हमने अनेक कहानीकारों पर विचार प्रकट किये। उन दिनों मेरी नवीन कृति 'कहानी और कहानीकार' का प्रकाशन हुआ ही था। उस ओर संकेत करते हुए मैंने वाजपेयीजी से पूछा—"आपने पढ़ी है?"

वाजपेयीजी ने उत्तर दिया—"सुना है। पढ़ी नहीं, अब पढ़ूँगा।"

"इसमें मैंने आप पर भी कुछ लिखा है।"

इस पर उन्होंने बिना किसी रुचि के उत्तर दिया—"ठीक है; लेकिन मेरे विचार से पुस्तक ऐसी लिखी जाय, जिसमें लेखक जिस विषय को उठाये, उसका इतना सर्वाङ्गीण विवेचन प्रस्तुत कर दे कि बाद का कोई भी लेखक कम-से-कम उस विषय पर तो शीघ्र लिखने का साहस न कर सके......।"

प्रस्तुत निबंध लिखते समय मेरे स्मृति-पथ पर बार-बार वह दिन आकर खड़ा हो जाता है और उसके साथ उनके ये वाक्य भी याद आ जाते हैं। सोचता हूं तो जैसे लगता है, यदि हिन्दी-साहित्य के समालोचक इसी सिद्धान्त को मानकर अपनी पुस्तकें लिखें तो कम-से-कम उस 'घासलेटी साहित्य' का अन्त हो सकता है, जिसके पीछे दल-बन्दियों में पड़कर पैसों के साथ व्यभिचार करना पड़ता है और अपनी सड़ी-गली वस्तु को पाठ्य-क्रम में लाने के प्रलोभन से साहित्यिकता का गला घोटकर लोगों के पीछे मारा-मारा फिरना पड़ता है।

इस प्रकार वाजयेयीजी जीवन और साहित्य, इन दोनों क्षेत्रों में अपना प्रकृत स्वरूप लेकर उपस्थित हुए हैं। उनके विपुल कहानी-साहित्य को दृष्टि-पथ पर रखते हुए उनके महानतम भविष्य की सहज ही में मङ्गल कामना की जा सकती है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि स्वतंत्र भारत की आधुनिक गतिविधियों के अनुरूप वे ऐसी ही कला-पूर्ण कहानियों की सृष्टि करते रहेंगे।

श्रीभगवतीप्रसादजी वाजपेयी हमारे साहित्य और राष्ट्र के लिये चिरायु हों।

वाजपेयीजी की नाट्यकला

लेo—डाo हजारीप्रसाद द्विवेदी

यद्यपि लेखक मानव-चरित्र के शाश्वत प्रश्नों की ओर ही अधिक सचेत है; तथापि उसने आधुनिक वैयक्तिकता का स्वरूप उद्घाटित किया है और इस प्रकार आधुनिक पाठक को अपनी बात सुनाने का अनुकूल अधिकारी बना लिया है। यह कार्य भी बड़े कौशलपूर्ण ढंग से किया गया है। लेखक की सबसे बड़ी सफलता यही है।

"छलना" सामाजिक रूपक नहीं है, यद्यपि उसकी प्रधान समस्या स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है, जो समाज की मूल भित्ति है। कृषिजीवी सभ्यता से निकलकर मनुष्य जब व्यावसायिक सभ्यता के क्षेत्र में आया, तभी से उसके पुराने आदर्श शिथिल होने लगे। इस पुरातन आदर्श के शैथिल्य से आज के समाज में वैयक्तिकता का प्राधान्य हो गया है। और अद्भुत विरोधाभास यह है कि फिर भी सामाजिक जीवन अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भी इसीलिए जहाँ एक तरफ़ वैयक्तिकता द्वारा चालित हो रहा है, वहाँ दूसरी तरफ़ सामाजिक जटिलता के द्वारा

नियंत्रित भी हो रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि व्यक्तिगत जीवन में बन्धनहीनता और पारिवारिक जीवन में सामाजिकीकरण का ज़ोर है। एक तरफ प्रेम-विवाह, परीक्षणात्मक विवाह (ट्रायल मैरेज) और तलाकों की धूम है और दूसरी तरफ रंधनशालायें टूट रहीं हैं और होटल आबाद हो रहे हैं; सूइयों में मोर्चे लग रहे हैं और फैक्टरियाँ बढ़ रही हैं; बच्चे घट रहे हैं और मातृ-सेवासदनों की बाढ़ आ गई है। ऐसे समय में संसार के सभी विचारशील मनुष्य भविष्य की चिन्ता से व्याकुल हैं।

श्री भगवतीप्रसादजी वाजपेयी ने भी इस नाटक में अपनी चिन्ता और उसके समाधान की ओर इशारा किया है। उनकी चिन्ता वर्तमान पर केन्द्रित नहीं है। उनके मत में यह एक शाश्वत समस्या है, वर्तमान ने उसे अपने ढंग की अभिव्यक्ति-मात्र दी है। इस तथ्य को प्रकट करने के लिए उन्होंने तीन स्त्री-पात्रों की कल्पना की है। ये व्यक्ति नहीं हैं जो वर्तमान सभ्यता की समस्या हैं; ये समाज के प्रतिनिधि भी नहीं है, जिनकी ओर वर्तमान सभ्यता आशा या निराशा की दृष्टि से देख रही हैं। ये टाइप हैं जो सदा रहेंगे और समाज और व्यक्ति के सामने सदा किसी-न-किसी रूप में प्रकट होते रहेंगे। तीन स्त्रियाँ हैं—कल्पना, कामना और चम्पी। प्रथम दो क्रमशः राजसिक और तामसिक वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, (कामना का ही दूसरा रूप निद्रा है) और तीसरी तमोभिभूत और सात्विक प्रकृति की हैं। दो पुरुष बलराज और विलासचन्द्र हैं, जो सात्विक और राजसिक वृत्तियों के प्रतिनिधि हैं। चम्पी अपने दो भिखमंगे साथियों के साथ केवल प्रथम दो चरित्रों—कल्पना और कामना (और उन्हीं के साथ बलराज और विलास) के रंग को और भी गहरा कर देने के लिए आती है। वह मूल घटना से एकदम निर्लिप्त होकर भी मूल घटना के प्रभाव को अत्यधिक प्रभावित करती है। लेखक ने बड़े कौशल से उसे और उसके साथियों को रखकर भी नाटक का इतना महत्वपूर्ण अंग बना दिया है। यद्यपि लेखक मानव-चरित्र के शाश्वत प्रश्नों की ओर ही अधिक सचेत है, तथापि उसने आधुनिक वैयक्तिकता का स्वरूप उद्घाटित किया है और इस प्रकार आधुनिक पाठक को अपनी बात सुनाने का अनुकूल अधिकारी बना लिया है। यह कार्य भी बड़े कौशलपूर्ण ढंग से किया गया है। लेखक की सबसे बड़ी सफलता यही है।

बलराज कल्पना को सन्तुष्ट करने का बहुत प्रयत्न करता है, पर वह सन्तुष्ट नहीं होती। उसने विवाह को असन्तुष्ट वृत्तियों को सन्तुष्ट करने का साधन मान लिया है। उसके जीवन में और कोई लक्ष्य नहीं है। वह कहती है कि 'शारीरिक भोग से परे कोई आत्मिक आनन्द नामक वस्तु संसार में है, मैं नहीं जानती।' और यही सारे असन्तोष का मूल है। वह जीवन के ऐहिक सुख-भोगों को सब कुछ मान लेती है; वे जब दूर रहते हैं, मनोहर लगते हैं; जब पास आते हैं तब पिपासा को और जगाकर लोप हो जाते हैं। कल्पना वैयक्तिक स्वाधीनता की पक्षपाती है, वह स्त्री-स्वाधीनता को भी चाहती है, पर इन दोनों प्रकार की स्वधीनताओं का कोई आत्म-निर्धारित स्वरूप उसे नहीं मालूम। आधुनिक स्त्री की यह भी एक बड़ी समस्या है। वह यह तो जान गई है कि उसे पराधीन रहकर नहीं रहना है, पर स्वाधीन रहकर कैसे रहा जाय, यह अभी तक वह स्थिर नहीं कर सकी। कल्पना इस विषय में औसत आधुनिक स्त्री की मनोवृत्ति को ठीक-ठीक उपस्थित करती है—"तुम पार्क में घूमने जा सकते हो; मित्रों में मनोविनोद कर सकते हो; नाटक, सरकस और सिनेमा देख सकते हो; नित्य कपड़े बदलते रहने का तुम्हें पूरा अधिकार है; किन्तु स्त्री तो जड़ पदार्थ है न? खुली वायु में घूमना टहलना, सखियों का संसार बनाना, उनसे मिलना और उनके साथ कहीं आना जाना, घूमना और अपने लिए आवश्यक वस्त्राभूषणों की याचना करना स्त्री के लिए न कभी आवश्यक है न आनन्दकारक। तुम यही न कहना चाहते हो?" वस्तुत: यह पुरुष की नक़ल है, इसमें आत्मोद्भावित किसी आदर्श का चिह्न नहीं है।

इसी स्थान पर लेखक आधुनिक स्त्री की समस्या को छूकर हट गया है। यहीं हम आधुनिक शिक्षित स्त्री की वास्तविक समस्या के नज़दीक आते हैं। व्यावसायिक सभ्यता के वातावरण में जो मध्यवित्त परिवार पनप उठे हैं वहीं यह समस्या है। इस परिवार का पति बहुत व्यस्त है और पत्नी एकदम कर्महीन। उसे रंधनशाला से छुट्टी मिल गई है, बच्चों से फ़ुरसत है, व्रत-उपवास के बखेड़े में नहीं पड़ना है, भजन-भाव से कोई रिश्ता नहीं है—वह क्या करे? बहुत दूर जाकर लेखक एक बार कल्पना से कहलवाता है—"किन्तु मैंने अनुभव किया, उनके बिना इन वस्तुओं की प्राप्ति का कोई महत्व नहीं।" प्रसारित प्रश्न का यह एक संकुचित उत्तर है।

कल्पना के बग़ल में चम्पी है। भीख मांगती है, अपने अन्धे और कोढ़ी साथियों के साथ सड़क के एक किनारे पड़ रहती है। पति ने उसे निकाल दिया था—फिर भी वह सुखी है, सन्तुष्ट है, क्योंकि उसके जीवन में एक लक्ष्य है, एक व्रत है, एक साधना है। आधुनिक शिक्षा ने उसे वैयक्तिक स्वाधीनता का पक्षपाती नहीं बनाया, स्त्री-स्वातंत्र्य का नाम भी उसे नहीं मालूम, रुपये-पैसे की भरपूर आमदनी नहीं होती, सुख-विलास की कोई कल्पना भी उसके निकट नहीं है—फिर भी वह सन्तुष्ट है, क्योंकि न तो उसका जीवन कर्महीन और एकाकी है और न लक्ष्यहीन और उच्छृंखल।

तो क्या चम्पी ही लेखक का जवाब है? जिस आग्रह के साथ कल्पना, कामना और विलास के साथ-ही-साथ चम्पी को लेखक घसीटे जाता है उससे यही सन्देह होता है कि चम्पी उसका आदर्श है। अगर ऐसा है तो लेखक आधुनिक पाठक को ठीक नहीं समझता, वह आधुनिक समस्या को भी ठीक नहीं समझता। आधुनिक पाठक विद्रोह के साथ कहेगा—"अज्ञान-निर्धारित सन्तोष से ज्ञान-चालित असन्तोष हज़ार गुना श्रेष्ठ है।"

चम्पी सात्विक प्रकृति की ज़रूर है, पर उसकी सात्विकता तमः-प्राकृतिक है; वह अज्ञान से आवृत है। वह आदर्श नहीं हो सकती। एक ग़लत-सही वस्तु पर एक ग़लत-सही ढंग से विश्वास कर लेने में सन्तोष ज़रूर है; पर वह सन्तोष पशु-सुलभ है, अतएव काम्य नहीं है। यह कहना कि मनुष्य बुद्धिमान जन्तु है उतना ठीक नहीं, जितना कि यह कहना कि वह बुद्धिवृत्तिक जन्तु है। संसार की प्रत्येक वस्तु में बुद्धि को सन्तुष्ट कर सकने लायक़ सत्य जब तक उसे नहीं मिलता, तब तक वह किसी सुख को सुख नहीं मान सकता, किसी सन्तोष को सन्तोष नहीं मान सकता। उसने परस्पर-विरोधी घटनाओं में बुद्धि-तोषक सामान्य नियम निकाल लेने के लिए अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की है। उससे किसी अज्ञान-गर्भित आदर्श की ओर ले जाने की चेष्टा चाहे जितने कलापूर्ण ढंग से कही गई हो, प्रतिक्रियात्मक और अग्राह्य है। आधुनिक स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध दुःखजनक ज़रूर है, पर वह ज्ञानचालित है, मनुष्य उसका आग्रह छोड़ नहीं सकता; छोड़कर पशु हो जायगा।

परन्तु वस्तुतः बात यह नहीं है। चम्पी लेखक का जवाब नहीं है। अगर चम्पी मूल घटना के साथ किसी प्रकार सम्बद्ध होती, तो यह सन्देह

किया जा सकता था। पर लेखक ने उसे बिलकुल निर्लिप्त रखा है। वह आदर्शहीनता के काले रंग को गहरा भर कर देने के लिए आती है। लेखक उसकी ओर उंगली नहीं उठाये हुए है कि देखो वह आदर्श है; बल्कि कल्पना की ओर उंगली उठाये है कि लो, देखो, सब होते हुए भी यह कितना बेतुका है। इसका प्रमाण नाटक की अन्तिम पंक्तियों में पाया जाता है, जब बलराज (आदर्श पुरुष) के मुख से यह कहलवाया गया है कि—"मनुष्य की आत्मा के साथ विलास का ऐसा कुछ सम्बन्ध है कि आदर्श का संपर्क होते ही वह अन्तर्धान हो जाता है।"

आदर्शहीनता ही आधुनिक जीवन की समस्या है। वही मनुष्य को विलासिता की ओर खींचे लिए जा रही है। वैवाहिक सम्बन्ध में या व्यक्तिगत सम्बन्ध में इस आदर्शहीनता के कारण ही हम शुरू में ही एक बड़ी भूल कर बैठते हैं कि कोई सम्बन्ध हमारी किसी-न-किसी असन्तुष्ट वृत्ति को सन्तोष देने के लिए है। मनुष्य में जो वृत्तियाँ वर्तमान हैं उनको हम चरम लक्ष्य मान लेते हैं। वस्तुतः ये वृत्तियाँ वह कच्चा माल (raw material) हैं जिनसे किसी श्रेष्ठतर वस्तु का निर्माण होना चाहिए। उनका सदुपयोग हुए बिना वे तीन कौड़ी की भी नहीं हैं। बड़े ही ग़लत तरीकों से, वैयक्तिक स्वाधीनता की आड़ में, इसका समर्थन किया जाता है। नये-नये शब्दों के गढ़ने से समस्या का समाधान नहीं हो जाता। आदर्शहीन मन अपने समाधान के लिए ऐसे अनेक धन्धों को ढूँढता फिरता है, जिन्हें वह आत्माभिव्यक्ति का नाम देकर अपने को और दुनियाँ को धोखा देना चाहता है।

नाटक में गान-बजान सीखने के बहाने कल्पना और कामना में इस अभिव्यक्ति का आभास पाया जाता है। पर इस कला-प्रेम का कोई आदर्श नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है। आत्माभिव्यक्ति आदर्शहीनता का दूसरा नाम नहीं है और न वह इन्द्रिय-परायणता का कोई रूप है।

वाजपेयीजी ने इस रूपक में इन समस्याओं को बड़े कौशल से रखा है। पाठक को वे अपने अनुकूल बना लेने की कला में सिद्धहस्त हैं। इसीलिए वे ऐसी बहुत-सी बातें उसे सुना गए हैं जिन्हें वह साधारणतः सुनना पसन्द न करता। आशा है, इस सुन्दर रचना को हिन्दी-संसार अपनायेगा; यह अपनाये जाने की वस्तु है।

पतवार : एक अध्ययन

ले०—रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

पात्रों की नाना मनःदशाओं की इतनी सच्ची अभिव्यक्ति "अज्ञेय" या जैनेन्द्र के उपन्यासों में कहीं-कहीं मिलती है। वाजपेयीजी मनोविश्लेषण करते हुए शुष्कता नहीं आने देते। उनका विचारक रूप भी सरस और सुन्दर है। प्रतीकमय भाषा द्वारा अपनी दार्शनिकता को अभिव्यक्ति करना उनकी निजी विशेषता है।

"मेरा लक्ष्य उन मनोवैज्ञानिक क्षणों में, उन असाधारण मनोवेगों को पकड़ने का भी होता है, जो जीवन को हित या अहित दशा में बड़े वेग से प्रभावित करते हैं; और उन क्षणों और स्थितियों को पकड़कर मैं उनसे पाठकों का परिचय कराना चाहता हूँ।"

चाहे अन्य उपन्यासों में श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी अपनी उक्त धारणा का उपयोग कर सके हों, या नहीं, अपने नवीनतम उपन्यास "पतवार" में वे मनोविश्लेषक तो हैं ही, गांधीवादी अहिंसक पुनर्रचना के विचारक के रूप में भी उनका उन्नत रूप दिखाई पड़ता है।

"पतवार" एक मनोविश्लेषण-प्रधान सामाजिक उपन्यास है, जिसमें एक निस्वार्थी परोपकार-रत मेडिकल छात्र दिलीप की बाढ़-पीड़ितों की सेवा, उसकी सहायतावृत्ति, एक निष्ठा, चरित्र की उज्ज्वलता और सत्प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। दिलीप मेडिकल कालेज में तीन वर्षों तक शिक्षा पा चुका है! इसी मध्य जनता की बाढ़-पीड़ित कराह और क्रन्दन उसके भावुक हृदय से टकराते हैं। बाढ़-पीड़ितों की सेवा के संकल्प से प्रेरित हो, वह कालेज त्यागकर सेवाकार्य में तन-मन से जुट पड़ता है। मोसमपुर ग्राम में बाढ़-पीड़ितों के लिए एक अस्पताल खोला जाता है। वह दवाइयाँ, इन्जेक्शनों तथा अन्य हर साधन से पीड़ितों का सहारा बन जाता है। दिलीप अपने ऐश्वर्य एवं समृद्धिशाली जीवन को भूलकर बार-बार सोचता है, "मानवता के ऐसे निर्मम उत्पीड़न के क्षणों में भी हमारा समाज अपने व्यावसायिक धन्धों में बराबर लीन रहता है!" दिलीप भावुक है, पर विचारक भी कम नहीं है। उसका मन नाना प्रकार के गंभीर विचारों से, नई-नई योजनाओं और दृष्टिकोणों से भरा रहता है। उसके कुछ विचार बड़े दार्शनिक जैसे हैं।

"......सभी वस्तुएँ जो दीख पड़ती हैं, एक दिन नष्ट हो जायँगी। केवल वे विचार और शब्द अमर रहेंगे, जो मनुष्य का दुख, संताप और क्रन्दन दूर करने में सहायक होंगे।" —पृष्ठ २२

दिलीप के पिता मर चुके हैं, चचा के ही संरक्षण में वह रहता है। माँ के अतिरिक्त वह अब किसी को अपना नहीं समझता। और फिर माँ भी कितनी असहाय और परवश है! दिलीप के मानसिक संस्था का निर्माण कुछ ऐसे ढंग से हुआ है कि वह आँसुओं की मोहमाया को अपने पास नहीं ठहरने देता है। धीरे-धीरे उसे इस बात पर भी दृढ़ विश्वास-सा होगया है कि रोने से संसार के दुख ज़रा भी कम न होंगे। कम तो वे तभी हो सकते हैं, जब उनके मूलाधारों को नष्ट कर दिया जायगा। वह भावुकता त्याग कर ठोस निर्मोही बन कर्त्तव्य में लग जाता है। माँ को चचा के संरक्षण में रख कर वह बाढ़ में पीड़ित मानवता की चीत्कार को सुनता और दूर करता है। वह व्यक्तिगत सुख-भोग के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है। उसके हित परिवार-मात्र तक ही सीमित नहीं हैं; व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को वह समाज के

लिए सर्वथा भयावह मानता है। उपन्यासकार के अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु दिलीप ही है।

एक बार दिलीप बाढ़ पीड़ितों के लिए सार्वजनिक चन्दे के पाँच हज़ार रुपये अटैची केस में लेकर अपने लक्ष्य स्थान को जा रहा था कि एक निर्जन स्टेशन पर हत्यारों के हाथ पड़ कर बच जाता है किन्तु दुर्भाग्य से उसका अटैची केस बदल जाता है। आत्म-ग्लानि से पीड़ित होकर वह अपने एक मित्र केशव के यहाँ टिकता है; उधर जिन सज्जन से अटैची बदल गया था, वे दिलीप की डायरी से पता पढ़ कर रुपया गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देते हैं। दिलीप के विषय में फैली हुई भ्रांतियाँ दूर होती हैं और उसके सेवा-रत चरित्र की उज्ज्वलता में उपन्यास का अन्त हो जाता है। दिलीप का विवाह लक्षणा से हो जाता है। उपन्यासकार ने कथावस्तु की शुष्कता दूर करने के लिए दिलीप और लक्षणा के पवित्र भारतीय परम्परा अनुकूल प्रेम की पुण्य-सलिला को प्रवाहित रखा है।

दूसरा महत्वपूर्ण चरित्र लाला गिरधारी लाल का है, जो स्वार्थी, कुटिल, होकर ईश्वर से भयभीत हो सन्मार्ग पर आते हैं और मरणशय्या पर पहुँच कर दिलीप का प्रेम भी प्राप्त कर लेते हैं। उपन्यास के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उनके ज्ञान के नेत्र खुल जाते हैं। उनके पाप कर्म धुल जाते हैं। उनकी आत्मा चिर शान्ति के पथ की पथिक बनती है।

छोटे चरित्रों में बफाती एक दुष्ट चरित्र होकर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। यह सच है कि वह परिस्थिति-वश खून कर देता है पर उसका सबसे बड़ा गुण था—दुखियों के प्रति दया और सहानुभूति। वह चोरी और डाकेज़नी कुसंग के कारण करता है। कलीचरन नौकर होते हुए भी अपनी बुद्धि एवं स्वामिभक्ति के लिए बरबस हमारी सहानुभूति प्राप्त करता है। अभिधा के स्वामी मुनीश्वर तथा व्यंजना के पति केशव दोनों की छाती पर आदर्श गृहस्थी हमारे सामने नए समाज एवं जीवन के नमूने उपस्थित करती हैं। सुशिक्षित केशव का कृषि फार्म तो अनेक पढ़े लिखे ग्रेजुयेटों के लिए प्रेरणा का केन्द्र बन सकता है।

इस उपन्यास में स्त्री पुरुषों के चरित्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का सौंदर्य है। प्राय: हर प्रकार का चरित्र हमें प्राप्त हो जाता है। इन चरित्रों

को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। १—आदर्शवादी परोपकार वृत्ति के सम्मुन्नत आत्मा वाले पात्र जैसे दिलीप, प्रतिभा, रक्षा-दल में कार्य करने वाली दीदी, प्रिंसपल पी० एन०, केशव, मुरारी इत्यादि। २—सांसारिक व्यक्ति जैसे लाला गिरधारी, दादा, सुरेश, त्रिभुवन बाबू। ३—परिस्थितिवश मानवता की कोटि से नीचे गिरे हुए पात्र जैसे बफाती और हत्याकाण्ड में लिप्त अन्य व्यक्ति। 'सर्वत्र वाजपेयी जी ने गंभीरता से पात्रों के हृदय में होने वाले अन्तर्संघर्षों को अभिव्यंजित किया है। दिलीप की आकांक्षाओं और कल्पनाओं के चित्रण में उन्हें सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। चिंता, शंका, सन्देह, आत्मग्लानि, भय, इत्यादि मानसिक दशाओं की अभिव्यंजना अत्यधिक सफल रही है। दिलीप और लक्षणा के प्रेम का चित्रण भारतीय परम्परा के अनुकूल रहा है। सस्ते रोमांस की तनिक भी झलक कहीं नहीं है।

पात्रों की नाना मनः दशाओं की इतनी सच्ची अभिव्यक्ति "अज्ञेय" या "जैनेन्द्र" के उपन्यासों में कहीं-कहीं मिलती है। वाजपेयीजी मनोविश्लेषण करते हुए शुष्कता नहीं आने देते। उनका विचारक रूप भी सरस और सुन्दर है। प्रतीकमय भाषा द्वारा अपनी दार्शनिकता को अभिव्यक्त करना उनकी निजी विशेषता है—

"तुम देवता हो, मगर पत्थर के; निर्मोही और जड़! तुम मुझसे मिलने नहीं आ सकते थे, तो क्या मुझे एक पत्र भी नहीं लिख सकते थे!"

—पृष्ठ २५४

"ताज के साथ बड़ा भारी ऐतिहासिक गौरव है, मानता हूं। लेकिन उस गौरव का मूलाधार है वह राजकीय सम्पत्ति, जो प्रजा की होती है... ताज मुगल सम्राट के पत्नी-प्रेम का प्रतीक तो बाद को है, राजकीय सम्पत्ति के स्वच्छन्द उपभोग का प्रतीक वह पहले है...।" —पृष्ठ २४०

व्यंग्य और विनोद का बड़ा सफल सम्मिश्रण वाजपेयीजी ने किया है। दो एक उदाहरण देखिए—

"...सुधीर शक्ल देखते ही शोर मचा देगा— "आओ फिलासफ़ी के वट-वृक्ष! आओ सनकी नम्बर एक-बटे-दो! आओ एकांतवासी योगी।" मन की दुनियाँ में ये बेतार के तार भी खूब मज़ा पैदा करते हैं।"

"संयोग की बात कि श्रीमती पी० एन० के पेट में मांगलिक पीड़ा उठ रही थी।"

दिलीप को देखते ही वह बोला—"आओ मुनि याज्ञवल्क्य, कहो कैसे दिन कट रहे हैं?"

... ...

"पतवार" केवल पात्रों का अध्ययन, या आदर्शवाद का एक उदाहरण मात्र ही नहीं, इसमें वाजपेयीजी ने सत्य और अहिंसा के जीवन का रूप भी दिखाया है। इस दृष्टि से यह गांधीवादी विचार-धारा का विश्लेषण एवं उपयुक्त उदाहरण भी उपस्थित करता है। स्वयं दिलीप की विचार-धारा, उसका जीवन, आदर्श, दृष्टिकोण गांधीवाद से अनुप्राणित है। जब बफाती आर्थिक वैषम्य की चक्की में पिस कर क्रन्ति की बात सोचता है, जो दिलीप का उत्तर होता है:—

"जब तक हमारा समाज नहीं बदलता, जनता में सचाई और ईमानदारी नहीं आती, उनमें मानवी सहानुभूति की सोई हुई भावना जाग्रत नहीं होती, तब तक कुछ नहीं हो सकता।"

बाढ़ पीड़ितों की रक्षा करने वाला दल, दिलीप, प्रतिभा, दीदी इत्यादि समस्त कार्यकर्त्ता गाँधीवादी सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप से स्पष्ट करते हैं। उनकी सेवा, सहायता, एवं सहयोग का दान, सत्य एवं अहिंसा का परिचय प्रदान करता है। वाजपेयीजी ने उसे बड़ा आकर्षक बना कर प्रस्तुत किया है।

वाजपेयीजी एक गूढ़ मनोवैज्ञानिक विचारक एवं उच्च कोटि के चिन्तक भी हैं। "पतवार" में दीन दुखियों के कारुणिक चित्र, बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों के बोलते चित्र तो हैं ही, मानव ,जीवन समाज तथा नाना घटनाओं पर गंभीर विचारपूर्ण टिप्पणियाँ भी हैं। अनेक स्थानों पर एक सूत्र वाक्यों एवं वक्तव्यों का उपयोग हुआ है, जो सार्वभौमिक तथा मानव जीवन के निगूढ़तम रहस्यों को प्रकट करते हैं। " प्रसाद " के नाटकों में जैसे सूक्ष्म वाक्य मिलते हैं, " पतवार " में बहुतायत से हैं। इनकी पृष्ठभूमि में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग बड़ी सावधानी से किया गया है। लम्बे वर्णनों में सजीवता है और ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों के कारण वे काफ़ी वज़नदार बन गए हैं। कुछ वाक्य देखिए—

मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति केवल दया और ममतामयी वह संस्कृति है, जो भूखे को भोजन, नंगे को वस्त्र, असहाय और असमर्थों को त्राण और पोषण देती है।"

"मर्यादा का पालन वही लोग करते हैं, जिन्हें कभी जीवन का विष अलग-अलग, एक-एक घूँट पीने का अवसर नहीं मिलता। दूसरों के बनाए और चलाए हुए मार्ग पर चुपचाप चलते जाना ही जिन्होंने सीखा है, जब वे पैदा हुए तब दरवाज़े पर शहनाइयाँ नहीं बजीं; जवान हुए तो सौ पचास मील दूर रहने वाले लोगों ने भी जिनकी शक्ल का परिचय प्राप्त नहीं किया और जब वे मर गए तो उनकी शव-यात्रा के पीछे-पीछे दस पाँच आदमी से अधिक नहीं गए। उनका जन्म और मरण उन पशुओं के समान बीता, जो आज की सभ्यता में नित्य वधशालाओं में आ-आ कर कूच कर जाते हैं।"

सदा सर्वदा मर्यादा की दुहाई देकर जो लोग आत्मस्वर को मन-ही-मन मसोस कर चले जाते हैं, वे युग-निर्माता नहीं हो सकते।"

वाजपेयीजी छोटे-छोटे शब्द-चित्र खींचने में बड़े पटु हैं। मुहल्लों में रहने वाले मकानों, विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के ऐसे अनूठे शब्द चित्र (Sketches) "पतवार" में हैं कि पढ़कर मन प्रसन्न हो जाता है। प्रत्येक चित्र छोटा होते हुए भी अपने आप में पूर्ण है। तुलसीदास, लोकनाथ वनिया, ग़नी कबाड़ी, परसादी नाई, अवारा बफ़ाती इत्यादि के शब्द-चित्र छोटे होकर भी पूर्ण सजीव हैं। सबमें अपना-अपना पृथक् व्यक्तित्व है।

वाजपेयीजी ने प्रकृति को मानवीय हास-विलास, उत्साह, घृणा, प्रेम से विमुक्त निरपेक्ष रूप में चित्रित किया है। प्रकृति मनुष्य के सुख-दुःख से कोई सरोकार नहीं रखती। उन्होंने प्रकृति का मायावी निर्मम रूप चित्रित किया है। दिलीप का मानसिक व्यापार देखिए:—

"यकायक फिर एक ज्वार सा आया।" यह पत्ता क्यों खटका? तो प्रकृति को क्या जीवन की अपेक्षा मेरी मृत्यु में अधिक स्वाद मिलेगा?... मेरी गरदन पर छुरी चलेगी...तब प्रकृति यहाँ नृत्य करेगी! कहेगी—हा! हा! मैं न्याय-अन्याय, हिंसा-अहिंसा कुछ नहीं देखती, आप मेरा क्या कर लेंगे? प्रकृति कहेगी कि मनुष्य की माया-ममता भी मैं कुछ नहीं देखती... देश और समाज के हानि-लाभ की मैं कतई परवाह नहीं करती...मैं तो विश्व के क्रन्दन में सभ्यता का स्तर मात्र देखती हूं; व्यवस्था की नाड़ी में उसकी

धड़कन के स्वर-मात्र सुनती हूं...इतिहास के दो-चार दस पिछले पृष्ठ उलटती हूं। जब मानवात्मा आँसू पीकर जीती है, तब मेरा संगीत पनपता है और नागरिकता वन्य बनने लगती है, तब सभ्यता के साथ मैं सावन का हिंडोला भूलती हूं।"

"पतवार" में सेक्स की समस्या का स्पर्श-मात्र है। युवती लक्षणा के मनोभावों तथा नारी के मन में उठने वाले मनोभावों का अच्छा चित्रण हुआ है। केशव का अपनी पत्नी व्यंजना के प्रति सन्देह, दिलीप का व्यंजना के प्रति सहज आकर्षण, व्यंजना-केशव की खट-पट पर बाद में परिस्थिति का सँभलना वाजपेयीजी की कला के उदाहरण हैं। इसी प्रकार अमिधा के स्वामी का गवर्नेस मुरलिका को ले आना, उसका धीरे-धीरे वाचाल और मादक होना, बाद में नौकरी से पृथक् किया जाना सुन्दरता से भारतीय परम्परा की पवित्रता व्यक्त करता है। जीवन में सेक्स के उदात्तीकरण में लेखक का विश्वास है।

वाजपेयीजी का "पतवार" अपने ढंग का अनूठा उपन्यास है, जिसमें मानववाद का स्पष्टीकरण हुआ है। इसे पढ़कर मनुष्य के हृदय में परोपकार, सेवा, सत्य, अहिंसा, प्रेम और त्याग की भावनाएँ दृढ़ होती हैं और संकीर्णता से मुक्ति प्राप्त होती है। इसमें लेखक का विचारक और मनः विश्लेषक का रूप मुख्यतः दर्शनीय है।

पतवार : एक समीक्षण

ले०—डा० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

'पतवार' उपन्यास हमें एक रोचक कथानक ही नहीं देता और न केवल मनोवैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी में योग ही प्रदान करता है, वरन् चिन्तन-द्वारा स्पष्ट किये गये तथ्यों के भीतर इसमें एक निश्चित दृष्टिकोण का विकास किया गया है।

'पतवार' पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी का पिछले वर्ष प्रकाशित एक उपन्यास है और इसकी महत्ता है—इसके भीतर प्रस्तुत व्यक्ति और समाज की समस्याओं की यथार्थता। उपन्यास वाजपेयीजी के गंभीर चिन्तन, मनोमंथन और व्यापक अनुभव का परिणाम है और इसके अन्तर्गत लेखक ने अपने जीवन-दर्शन को मार्मिक, विशद और गंभीर रूप में प्रकट किया है। जैसा कि शीर्षक के साथ संलग्न व्याख्या से प्रकट होता है यह उपन्यास गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत मनोविश्लेषण-प्रधान सामाजिक उपन्यास है। उपन्यास के भीतर लेखक के मनोमंथन का नवनीत प्रकट हुआ है, यह न केवल उपन्यास में आयी विविध प्रसंगान्तर विचारधाराओं से ही स्पष्ट होता है, वरन् अपने प्रारम्भिक कथन में उसने स्वयं ही अभिव्यक्त कर दिया है। लेखक का

विश्वास है कि "कर्म का पथ अनिश्चित है, उसकी सिद्धि भी अनिश्चित है, ...निश्चित है मनुष्य का अपना विश्वास; उसकी अपनी लगन।" मेरा विचार है कि लेखक के विश्वास के निश्चित पक्ष से सहमत होने वाले अधिक न होंगे; परन्तु कर्मयोग पर विश्वास रखनेवाले गांधीवादी ही नहीं अन्य विचारधाराओं के लोग भी इसे स्वीकार कर लेंगे। 'पतवार' की घटनाओं द्वारा अंशत: इसकी सद्धि हो जाती है, अंशत: नहीं। उपन्यास में आये बफ़ाती के चरित में यह सत्य नहीं हो पाता। पता नहीं कहाँ तक लेखक का इससे यह विश्वास ग्रहण किया जा सकता है कि विश्वास और लगन भी गांधीवादी दृष्टिकोण में ही निश्चित होते हैं। फिर भी लेखक का ऐसा कोई आग्रह नहीं। मानव-समाज से अधिक शक्तिशाली हाथ जड़ प्रकृति का है जो पूर्णतया अप्रत्याशित रूप से ही हमारे नियति-चक्र का संचालन करती और घटनाओं को घटित करती है। अत: लेखक यहाँ चेतन मानव जड़ प्रकृति की विजय को स्वीकार करता है। पर उसने ईश्वरवाद का सहारा लेकर यह स्पष्ट नहीं किया कि इस जड़ प्रकृति का संचालन एक परम चेतन व्यक्तित्व कर रहा है जिससे कि चेतन के अहंभाव की कुछ तुष्टि हो सकती। लेखक का यह यथार्थ-वादी दृष्टिकोण सराहनीय है।

घटनाओं और चरित्रों के बहुत से परिणाम आदर्शात्मक रूप में होने पर भी, उपन्यास यथार्थवादी भूमि पर निर्मित हुआ है इसमें सन्देह नहीं। फिर भी समन्वय में यथार्थ और आदर्श की मात्रा को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास प्रेमचन्द की प्रौढ़ किन्तु सत्परिणाम-पर-विश्वास वाली परम्परा की एक उज्ज्वल कड़ी है जिसमें हमें उन्हीं की विचारधारा और चित्रण-पद्धति के दर्शन होते हैं। उपन्यास में प्रधान—दो कथानक हैं—एक उदात्त नवयुवक दिलीप का और दूसरा आदर्शवादी दादा ज्योतिस्वरूप का। प्रथम लोक-सेवा की ज्वाला से प्रेरित है और द्वितीय सामाजिक मर्यादा और सिद्धान्तों से आलोकित। नवयुवक दिलीप स्व० मुंसिफ़ मुरारीलाल का पुत्र है जिसकी मेडिकल कालेज की पढ़ाई अन्तिम साल में जाकर उसके चाचा गिरधारीलाल की स्वार्थनीति के कारण रुक गई है। दिलीप बाढ़-पीड़ितों की सहायतार्थ कार्य कर रहा है। वह कैम्प में रखे हुए बाढ़-पीड़ितों की दवाओं तथा सहायतार्थ धन लेने के लिए शहर आता है। जब वह लौटकर जा रहा है तब छल से एक मनुष्य उसे मार्ग में स्टेशन पर उतर जाने की सलाह देता

है। उतरने पर वह सुनसान स्टेशन पर अपने को पाता है। अपने नौकर और स्टेशन के एक कर्मचारी की सलाह से वह वेटिंग रूम छोड़ कर चला जाता है और इसी बीच में सिनेमा देखकर देर में आकर रूम में लेटे हुए स्टेशन मास्टर के लड़के का ख़ून होता है। पुलिस डाकुओं को पकड़ लेती है। दिलीप वहाँ से आने पर यह काण्ड देखता है। वह लारी से 'कैम्प' के लिए रवाना होता है और रास्ते में उसका अटैची केस जिसमें पाँच हज़ार रुपया बाढ़-पीड़ितों की सहायतार्थ रखा हुआ था, बदल जाता है। यह जानकर उसका 'कैम्प' जाने का साहस नहीं होता और वह मित्र के यहाँ चला जाता है। फिर इधर उधर भटकता बनारस पहुँचता है। वहाँ अपने एक मित्र से रुपया लेकर भेज देता है। उसकी बदनामी उड़ती है कि उसने बाढ़-पीड़ितों का रुपया खा लिया है। वह घर नहीं आता।

इधर उसके चाचा गिरधारीलाल इस दुर्घटना को पढ़कर एकदम बदल जाते हैं। वे दिलीप को आवारा समझते थे और उसे पैसा देना या पढ़ाना व्यर्थ कहते थे। पर ईश्वर का रक्षक हाथ उसके उपर रखा देखकर तथा अपनी संपत्ति का एक मात्र संरक्षक उसे समझकर, उनके भाव का एकदम परिवर्तन हो जाता है। वे बीमार हो जाते हैं और जब उनकी बीमारी का तार दिलीप को बनारस में मिलता है, तब वह तुरन्त आता है और आने पर एकदम दूसरा ही दृश्य पाता है।

इस परिवर्तन में दिलीप के आचरण के साथ-साथ दादा—ज्योतिस्वरूप का भी हाथ था। दादा का जीवन कम रहस्यपूर्ण नहीं। उन्होंने दूसरा विवाह किया था; पर अपनी पत्नी प्रतिभा को केवल इस बात पर त्याग दिया था कि उसने सिगरेट यह जानने के लिए एक बार पी कि देखें इसका स्वाद कैसा होता है! इस बात ने दादा के मन में सन्देह पैदा कर दिया और उन्होंने उसे त्याग दिया। प्रतिभा ने डाक्टरी की ओर अपना जीवन पवित्र सेवा-मार्ग में ढाल लिया। दादा ने एक-दो बार परीक्षा भी छिपकर ली; पर उनका सन्देह व्यर्थ हुआ। फिर भी वे उससे मिलने का साहस न करते थे। जब दिलीप का रुपया खोगया, तब बाढ़-पीड़ित कैम्प में रोगियों की देख-भाल के लिए प्रतिभा भी गई। वही कैम्प की इन्चार्ज थी। उस समय दिलीप का रुपया भरने जब दादा गये तब दोनों में फिर मेल हुआ। दादा की तीन पोत्रियाँ थीं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना और पुत्र का नाम था विशेषण

जिसे विस्सू कहते थे। बिस्सू की स्त्री थी शेफाली। लेखक की दृष्टि में ये नाम केवल परिवार की कलात्मक वृत्ति की सूचना देने के लिये है, प्रतीकात्मक नहीं। दादा की पौत्री लक्षणा ही दिलीप की भावी पत्नी है। इस प्रकार दोनों कथानकों का सगम इस सम्बन्ध द्वारा और इसके लिए होजाता है। और मरने से पहले लाला गिरधारीलाल अपनी पुत्रबधू के लिए सात आठ हज़ार का ज़ेवर बनवा जाते हैं।

कथानक का मुख्य उद्देश्य बाढ़-पीड़ितों की सहायता की सद्भावना और कार्य को स्पष्ट करना और निस्वार्थ सेवा करनेवाले दिलीप और प्रतिभा के चरित्र को स्पष्ट कर यह दिखाना है कि अधिकांश लोग सामाजिक कार्यों में पड़े हुए, सच्चरित्र व्यक्तियों के लिए भी, जो ऊँच-नीच बातें करने लगते हैं वे प्राय: भ्रमपूर्ण और अवास्तविक होती हैं। लोगों ने प्रतिभा के उज्ज्वल चरित्रों को भी कालिमापूर्ण दृष्टि से देखा और दिलीप के त्यागपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति भी धनापहरण का आरोप लगाया। पर वह सब असत्य था। प्राय: बातें साफ़ नहीं हो पाती, तब तक हम अपनी कलुषपूर्ण कल्पना के आधार पर ऐसे लांछन लगाया करते हैं और उन लांछनों के आधारों का भी अनुमान कर लेते हैं।

दूसरा उद्देश्य 'पतवार' उपन्यास में यह स्पष्ट हुआ है कि सद्भावना और सच्चरित्र से हृदय-परिवर्तन हो सकता है और बुरे से बुरा व्यक्ति भी सत्संगति से भला बन सकता है। लाला गिरधारीलाल का चरित्र यही स्पष्ट करता है। इसके साथ ही उपन्यास में अनेक चरित्रों में आदर्श मैत्रीभाव भी प्रस्फुटित हुआ है और सच्ची लगन का सुपरिणाम भी। इन दोनों उद्देश्यों के चित्रण के मूल में लेखक की गांधीवाद पर अटूट श्रद्धा की धारणा विद्यमान है। जैसा कि आरम्भ में उसने कहा भी है कि—"मेरी यह धारणा अब धीरे-धीरे दृढ़ होगई है कि एक स्थायी विश्वशांति और मनुष्यमात्र का कल्याण, सत्य और अहिंसा द्वारा ही सम्भव है।" और इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस उपन्यास में पारिवारिक मनमुटाव और दुर्भावना को तथा सामाजिक उलझन को इस दृष्टिकोण से दूर कर दिखाया है।

उपन्यास सामाजिक समस्याओं के आवर्तों से पूर्ण है। दादा अपने निजी वैवाहिक उलझन तथा पौत्री के विवाह की समस्या में उलझे हैं। गिरधारीलाल अपनी पुत्रियों के विवाह तथा आर्थिक उलझनों से ग्रस्त हैं।

दिलीप और बफ़ाती के सामने पीड़ितों और दलितों को सहायता देने की समस्या है। ये सभी समस्याएँ अपनी-अपनी गँभीरता लिये हुए हैं। प्रौढ़ अपनी सीमित समस्याओं में उलझे हैं और युवा व्यापक समस्याओं में। बफ़ाती और दिलीप की समस्याएँ भिन्न-भिन्न नहीं हैं, पर दोनों का मार्ग भिन्न-भिन्न है। गांधीवादी दिलीप इसी से बच जाता है; सफल होता है और बफ़ाती को फाँसी होती है। इस प्रकार का विश्लेषण चाहे जीवन का यथार्थ न हो, पर इसमें संदेह नहीं कि समाज की आस्था, निष्ठा, विश्वास और आचरण पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है और एक सद्भावना का वातावरण बन जाता है। अत: इस दृष्टिकोण का सामाजिक महत्व है।

उपन्यासकार ने अपने वर्णनों और चित्रणों को यथार्थवादी पुट देने के लिए पूरा प्रयत्न किया है और इसमें उसे अभिनंदनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। प्रारम्भ के एकाध दृश्यों को छोड़कर बाक़ी सभी दृश्य ऐसे हैं जो जीवन की वास्तविकता को ही सजीव रूप में हमारे सामने रख देते हैं और ऐसे अनेक वर्णन हैं जिन्हें कुछ लोग व्यर्थ के विवरण कह सकते हैं, पर वे उपन्यास के दृश्यों और घटनाओं को वास्तविकता प्रदान करते हैं। जैसे कुछ नीचे लिखे उदाहरण हैं—

"कालीचरण पान रख कर चला गया। गौरैया आयी और दरवाज़े के बाहरी खूँटे पर फुदक कर उड़ गई।"

"कमरे का पंखा चल रहा था। उसके साथ पंखे के ऊपर लगा हुआ पाइप की छड़ का टुकड़ा भी बराबर हिलता जाता था।"

"दरवाज़े पर एक नेवला आकर इधर-उधर देखता हुआ कमरे भर का निरीक्षण कर रहा है और केशव ने रेडियो सेट खोल दिया।"

ये विवरण हमारे रोज़ के देखे सुने हैं और हमें केवल काल्पनिक घटनाओं के बादल से उतार कर जीवन की ठोस यथार्थ भूमि प्रदान करते हैं और समस्त घटनाओं को विश्वसनीय बनाते हैं।

इन संकेतों के अतिरिक्त इसमें आये छोटे-छोटे प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण मन:स्थित का विश्लेषण और रोचक वार्तालाप भी न केवल उपन्यास के कथानक को आगे बढ़ाते हैं, वरन् यथार्थ जीवन के सजीव चित्र खींचते हैं और हमें लगता है कि हाँ इस प्रकार का जीवन हमने भी देखा है। वर्णन

परिस्थिति के अनुरूप कहीं हल्के और कहीं गंभीर आतंकपूर्ण और भयावह दृश्य अंकित करता है, जो होने वाली घटना की गंभीरता का द्योतक होते हैं। जैसे स्टेशन पर जब खून होता है उसके पहले का भयावह दृश्य देखिये—

एक घोर काली अंधेरी रात, उसका जड़ सन्नाटा और झिल्ली की झनकार। कुत्तों के भूँकने का स्वर, सिगनलों की लाल रोशनी, आदमी के नाम पर कहीं कोई नहीं। '... ... ...

"नाल जड़े हुए जूतों की खटपट सम्मिलित रूप से कम होती गई और अन्त में बिलकुल विलुप्त हो गई। फिर एक स्थिर मूकता से वह पूरी तरह घिर गया। रजनी, गगन, तारे, गाँव, बस्ती, सड़क, गली, वृक्ष-झाड़ियाँ, स्टेशन, रेलवे लाइन सब मूक और उनके बीच उस सुनसान रात में करवटें लेता हुआ अकेला दिलीप।" ऐसे यथार्थ वातावरण में व्यक्ति-विशेष के चरित्र के साथ रूढ़ियाँ और अन्ध विश्वासों का भी चित्रण करके न केवल यथार्थता को पुष्ट किया गया है, वरन्, चरित्र को सजीव बना दिया गया है।

मनोविश्लेषण के दृश्य और भी रोचक हैं। अनेक स्थलों पर ज्योतिस्वरूप, गिरधारीलाल, दिलीप की मानसिक स्थिति का सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। कहीं आते-जाते, सवारी पर जब हम अकेले होते हैं तो विचारधारा अबाधगति से चलने लगती है। लारी पर जाते हुए दिलीप की विचारधारा को बड़ी ही चतुराई से लेखक ने अंकित किया है। वह जीवन का प्रच्छन्न यथार्थ है। मानसिक क्रिया-कलाप का वर्णन आधुनिक युग के कथा-साहित्य की विशेषता है और इस दृष्टि से भी 'पतवार' उच्चकोटि का उपन्यास है। इस आन्तरिक विश्लेषण द्वारा उपन्यास का एक बहुत बड़ा उद्देश्य भी सिद्ध हुआ है। जीवन में भले-बुरे— दो प्रकार के चरित्र प्रत्यक्ष होते हैं। ऊपर से भले लगने वाले भी भीतर बुरे हो सकते हैं और ऊपर से बुरे लगने वाले लोग भी भीतर भले निकल सकते हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा इस प्रकार दूसरा प्रच्छन्न पक्ष भी उद्घाटित किया गया है। वफ़ाती, चोर, डाकू था प्रत्यक्ष। पर, उसके भीतर पीड़ितों और दुखियों के प्रति दयाभाव की धारा बहती उपन्यास में आये अनेक मनोविश्लेषणों तथा वार्तालाप द्वारा यह तथ्य प्रकट किया गया है। मानसिक धारा को स्पष्ट करके अनेक स्थलों पर उपन्यास के कथानक की छूटी हुई श्रृंखला भी जोड़ी गई है। इस प्रकार मनोविश्लेषण बड़ा ही रोचक और उपयोगी रूप में है।

दिलीप, दादा और त्रिभुवन नाथ का चरित्र सिद्धान्तों और आदर्शों को लेकर चलता है और अनेक स्थलों पर गांधी जी के वाक्यों को स्मरण कर उन्हें दुहराते हुए जीवन का संबल ही नहीं ग्रहण किया गया, वरन् डगमगाते डगों को सहारा देकर नवीन मार्ग पर अग्रसर किया गया है।

'पतवार' उपन्यास हमें एक रोचक कथानक ही नहीं देता और न केवल मनोवैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी में योग ही प्रदान करता है, वरन् चिन्तन-द्वारा स्पष्ट किये गये तथ्यों के भीतर इसमें एक निश्चित दृष्टिकोण का विकास किया गया है। उनके इस उपन्यास का हम हृदय से स्वागत करते हैं।

उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी और उनका उपन्यास "दो बहनें"

ले०—कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा

इस प्रकार 'दो बहनें' बहुत लोकप्रिय हुआ है और वाजपेयीजी की उपन्यासकला की सफलता का प्रमाण है। हमारे हिन्दी साहित्य में 'दो बहनें' जैसे रोचक किन्तु गम्भीर, सरल किन्तु ललित उपन्यास बहुत कम हैं।

प्रेमचन्दजी के समकालीन उपन्यास लेखकों में से जिनका नाम सुप्रसिद्ध हुआ है, उनमें पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी उल्लेखनीय हैं। वाजपेयीजी सौभाग्यवश आज हमारे बीच में हैं और अब भी नई पीढ़ी के नए उपन्यास-कारों के साथ क़दम मिलाकर चल रहे हैं।

पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अब से लगभग ४८ वर्ष पूर्व ज़िला कानपुर के ग्राम मंगलपुर में एक कृषक परिवार में जन्म लिया था। विवाह भी ग्यारह वर्ष की नन्हीं उम्र में ही हो गया और इस तरह गृहस्थी का भार भी उनके बाल-कन्धों पर ही आ पड़ा। किशोर वाजपेयी अपने गाँव की पाठशाला

में ही अध्यापक हो गए किन्तु यौवन के साथ-साथ जिस प्रतिभा का उदय इस किशोर अध्यापक की चेतना में हो रहा था, उसने मंगलपुर की सीमा में अवरुद्ध रहना अस्वीकार कर दिया। कानपुर आकर मिडिल पास अध्यापक होमरूल-लीग की लायब्रेरी तथा रीडिंग-रूम में लायब्रेरियन हो गया और वहाँ उसे न केवल हिन्दी बल्कि विदेशी साहित्य को अध्ययन करने का भी सुअवसर मिला, जिससे उसकी साहित्यिक चेतना को विकास के लिए एक सम्बल मिला और युवक वाजपेयी ने प्रेम और विरह के अटपटे गीत गाने शुरू कर दिए। किन्तु होमरूल आन्दोलन की समाप्ति के साथ वाजपेयीजी की नौकरी भी छूट गई और उनके कल्पना के महल ढहने लगे। पत्नी के आभूषण बेचकर स्वदेशी माल की एक दूकान खोली, जिसमें चोरी हो गई और खाने के लाले पड़ गए। तब किसी औषधालय में कम्पाउण्डरी की और साथ ही एक प्रेस में प्रूफरीडरी। प्रूफरीडर से आगे बढ़कर वाजपेयीजी पहले 'संसार' मासिक पत्र के सहायक सम्पादक हुए और फिर मुख्य सम्पादक। तदनन्तर लखनऊ के विख्यात मासिक पत्र 'माधुरी' के सहायक सम्पादक हो गए। वहाँ से अलग हुए तो इलाहाबाद जा बसे और सहायक मन्त्री के रूप में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सेवा करने लगे; किन्तु साथ ही कुछ जोड़-तोड़ कर पुस्तकें प्रकाशित करते और उन्हें एजेण्टों द्वारा गली-गली बिचवाते भी। फिर यह भी छोड़ा और केवल क़लम की मज़दूरी करने लगे और उसी की बदौलत आज का यह दिन भी हमारे सामने है।

तो हमारे उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी दुनिया के उन भुक्तभोगी, संतप्त एव संत्रस्त महान लेखकों की परम्परा में हैं जो गुदड़ी में पैदा हुए और जिन्होंने ग़रीबी की सभी कठिनाइयाँ झेलीं; जिनकी कल्पना ने शीशमहलों की परियों से अभिसार न करके धरती की मिट्टी से निर्मित मानव-मूर्तियों को जीवन दिया, वाणी दी, बल दिया। दूसरे शब्दों में हम कहेंगे कि वाजपेयीजी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। परन्तु प्रेमचन्द के जीवनकाल में ही वाजपेयीजी पर बँगला के अमर उपन्यासकार शरद्चन्द्र का प्रभाव पड़ने लगा था। भावनाशील किन्तु विद्रोही पात्रों की सृष्टि और उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—यही वाजपेयीजी की शरद्चन्द्रीय विशेषता है। वाजपेयी जी कवि भी हैं और नाटककार भी; इसलिए उनकी कथा शैली में भाव-प्रवणता, सूक्ष्मता और नाटकीय तत्व अतिरिक्त सौंदर्य उत्पन्न करते हैं। यों तो वाजपेयीजी

अपनी शैली के धनी हैं किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से हम उन्हें प्रेमचन्द और प्रसाद के बीच की एक संतुलन कड़ी कह सकते हैं।

पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी के जीवन-दर्शन अर्थात् जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण की चर्चा अब मैं आपसे करूँगा। वाजपेयीजी के अपने ही शब्दों में, "मैं सत्य के सौंदर्य का पुजारी हूँ—मधुर का ही नहीं, कटु सत्य का भी। सत्य का ही दर्शन, चिन्तन और मन्थन मैं साहित्य में करना और देखना चाहता हूँ। संस्कारवश प्रकृति से मैं आस्तिक तो हूँ, किन्तु ईश्वर की उपासना पर मेरी आस्था नहीं। मैं तो आचार-धर्म का क़ायल हूँ।"

और मानव के आचार-धर्म को ही मानने वाले वाजपेयीजी के लिए मानवता ही सर्वोपरि है; साधन भी और साध्य भी। यही मानवीयता वाजपेयीजी के अपने जीवन और साहित्य का हीरक आभूषण है और यही है जो देश-काल से परे साहित्य को शश्वत बनाता है, मानव को अमरता प्रदान करता है।

संक्षेप में, यही जीवन-दर्शन है जिसे आधार बनाकर वाजपेयीजी ने अपने श्रेष्ठ उपन्यास "दो बहनें" की रचना की है।

इस उपन्यास का क़थानक रूढ़िगत प्रेम का त्रिकोण नहीं, चतुष्कोण है, जिसके चार पात्र हैं आशा, लता, ज्ञान प्रकाश और दिवाकर। इसका क्षेत्र है कानपुर के एक मध्यवर्गीय परिवार का जीवन। हिन्दी के अन्य कथाकारों से भिन्न किन्तु टॉमस हार्डी की भाँति वाजपेयीजी के अपने समस्त कथासाहित्य का क्षेत्र एक ही रहा है और वह है कानपुर। तो, कानपुर के इस परिवार के कर्णधार हैं धनवान रायसाहब। ज्ञानप्रकाश इन्हीं रायसाहब का लड़का है। ज्ञानू की माँ सौतेली हैं और सौतेलेपन के सभी दुर्गुण ज्ञानू और उसकी माँ के सम्बन्ध को कटु बनाए रहते हैं। एक दिन बातों ही बातों में रायसाहब और ज्ञानप्रकाश में समाज-सुधार पर बहस होने लगी। सिद्धान्तों की बहस में व्यक्तित्व पर आक्षेप प्रकट होने लगे और रायसाहब गरज कर बोले, "मेरी पैदा की हुई सम्पत्ति पर गुलछर्रे उड़ा रहे हो। अगर एक दिन भी खाना न मिले, तो आटे-दाल का सब भाव मालूम पड़ जाए!" इसका परिणाम हुआ कि स्वाभिमानी ज्ञानू ने चुपचाप घर छोड़ दिया और शहर में ही एक कॉटन मिल में नौकरी करके अलग रहने लगा। ज्ञानू की सौतेली बहन है मन्दाकिनी जो उससे सगे भाई जैसा ही स्नेह करती है। मन्दाकिनी को जो मास्टरनी घर पर पढ़ाने आती है, उसका नाम आशा है और वह रायसाहब की एक

सजातीय विधवा जानकी की बड़ी लड़की है। जानकी की छोटी लड़की लता है, जिसका स्वभाव शान्त और बुद्धिवती आशा से भिन्न चपल और भावुक है।

जब ज्ञानू घर से अलग होगया, तो उसे लेकर रायसाहब और रायपत्नी में और रायपत्नी और मन्दाकिनी में आपस में झगड़ा होता है। ज्ञानू रायसाहब का इकलौता बेटा है और उसका बिछोह उन्हें असह्य है। वह यहाँ तक सोचते हैं—"मैंने उसे समझने में भूल की है।" और संकल्प करते हैं— "वश-भर मैं उसकी भावनाओं के संघर्ष में कभी नहीं पड़ूँगा।" उधर रायपत्नी मन्दाकिनी को अपने आतंक में रखकर उसे भी ज्ञानू की सौतेली बहन बना देना चाहती है, किन्तु असफल रहती है। मन्दा ज्ञानू से मिलने जाना चाहती है, तो वह उसको पीट डालती है। ज्ञानू के घर से जाने के बाद रायपत्नी का छोटा भाई दिवाकर होस्टल छोड़कर वहाँ आकर रहने लगता है। मन्दा अपने भाई के अधिकारों को इस प्रकार अपहरण होते नहीं देख सकी। दिवाकर उस पर अपना बड़प्पन जमाना चाहता है, किन्तु मन्दाकिनी को वह फूटी आँख नहीं सुहाता। बातों-बातों में ज्ञानप्रकाश को लेकर एक दिन आशा रायपत्नी से शास्त्रार्थ कर बैठती है और उनके व्यवहार के अनौचित्य को सिद्ध कर देती है। साथ ही अपने ही पति और फिर कोख की जन्मी बेटी के भी रुख़ बदल लेने से रायपत्नी मजबूर होकर ज्ञानप्रकाश को वापस घर बुलाती है। आशा की छोटी बहन लता मन्दा की हमजोली है। मन्दा ज्ञानू के साथ-साथ लता को भी कुछ दिनों के लिए अपने घर ले आती है, जहाँ दिवाकर से उसका परिचय कराती है। दिवाकर उच्छृङ्खल है, कुछ अस्तव्यस्त और ग़ैर ज़िम्मेदार भी। लता पर वह अपनी दृष्टि का जाल फेंकता है। ज्ञानू उस पर अपनी किताबों की चोरी आरोप करता है और दिवाकर को लगता है कि अब उसकी दाल रायसाहब के घर में नहीं गलेगी। फिर भी लता की ओर उसका दिल बेलगाम घोड़े की तरह रेस कर रहा था। उसने अपने परिचय के दूसरे दिन ही लता को छेड़ दिया। लता ने तिलमिला कर डाँट बताई, "देखिए, मिस्टर दिवाकर, ज़रा ज़बान सम्हाल कर बोलिए। ...मैं आपकी नाक बिलकुल साफ़ कर दूँगी!" चालाक दिवाकर माफ़ी माँग लेता है किन्तु अपनी धुन में लगा रहता है कि एक न एक दिन तो चिड़िया फँसेगी ही।

ज्ञानू घर तो लौट आया, किंतु उसने खाली बैठने से मिल की नौकरी जारी रखना ही अच्छा समझा। आशा और उसका प्रेम दिन-प्रति दिन चन्द्रमा की भाँति बढ़ता रहा। ज्ञानू जब से घर आकर रहने लगा, जानकी के यहाँ उसका जाना कम होने लगा। जानकी के मन में आशा के विवाह की चिंता घर किये हुए थी। आशा अपने घर की ग़रीबी के कारण सजातीय होते हुए भी ज्ञानू से विवाह का स्वप्न नहीं देख सकती। और इस विषमता की चिंता उसके मन से फैलकर देह में रोग बनने लगी। डाक्टर को शक हुआ कि तपेदिक न हो जाय।

डाक्टर गंगोली के सन्देह को सुनकर जानकी रोने लगी और ज्ञानू पसीने-पसीने होगया, किंतु उसने पुरुषोचित साहस से काम लिया और आशा की माँ को ढाढस बँधाया। पर आशा थी कि रोग को अपनी हँसमुख मुद्रा द्वारा ही छिपा लेने का अभिनय करती। ज्ञानप्रकाश ने जब पहली बार ज्वर देखने के लिए सहजभाव से आशा की कलाई पकड़ी, तो माँ सामने खड़ी थी। उनके चले जाने पर आशा बोली—"जानते हो इसका क्या अर्थ होता है? जीवन में क्या ऐसा सम्भव हो सकेगा कि तुमको मैं अपना देख सकूँ?" और ज्ञानू ने उत्तर दिया—"कुछ भी असम्भव नहीं है आशा! यमराज भी स्वयं आयँगे, तो मैं उनसे लड़ पड़ूँगा और कहूँगा—हम लोग एक हैं, अकेली आशा को तुम ले नहीं जा सकोगे।" फिर ज्ञानप्रकाश ने आशा को बतलाया कि रायसाहब उसके विवाह की बात ज़ोर से उठा रहे हैं। ज्ञानू का मन बहुत खराब हो चला। उसने एक रेस्तराँ में जाकर अपने जीवन में पहली बार दो पेग व्हिस्की के पिये और फिर लौटकर आशा के यहाँ खाना खाकर दस बजे रात को मन्दाकिनी को लेकर घर लौटा।

दिवाकर के किसी दोस्त ने ज्ञानप्रकाश को रेस्तराँ में शराब पीते देख लिया था और तत्काल यह संवाद उसके पास पहुँचा दिया था। इस संवाद को खूब नमक-मिर्च लगाकर दिवाकर ने अपनी बहन को सुनाया और साथ में लपेट लिया मन्दाकिनी को भी। फिर क्या था, ज्ञानू और मन्दा के घर में क़दम रखते ही मन्दा पर तड़ातड़ मार पड़ी और ज्ञानू पर गाली गलौज की बौछार। ज्ञानप्रकाश ने कहा कि शर्बत पिया था और मन्दा साथ नहीं गई थी और इस प्रकार बिगड़ी बात बना ली। आशा किंचित स्वस्थ होने लगी, लेकिन मन्दाकिनी बीमार पड़ गई और लता से एक दिन स्कूल में अकेले

मिलकर दिवाकर ने मीठी-मीठी बातें करके उसके मन से अपने प्रति नाराज़ी निकालकर एक मंज़िल तय समझी। नाटक का मंच अब आशा के घर से उठकर रायसाहब के घर पहुँच गया। एक दिन अवसर पाकर दिवाकर ने अकेले में लता को एक संगीत-सम्मेलन में आने का निमन्त्रण दिया और उसका हाथ दबा दिया। किंतु इस बार इतने पर भी लता ने कोई आपत्ति प्रकट नहीं की। पर, सच यह था कि ज्ञानू लता के मन-मन्दिर में भी देवता बन बैठा था। दिवाकर को वह लम्पट ही समझती है। उसका दिल वास्तव में ज्ञानू और दिवाकर के बीच में लटका हुआ है। दूसरे दिन लता संगीत-सम्मेलन में नहीं गई और आशा को भेज दिया।

ज्ञानू मन्दा के लिए दवा लेने डाक्टर के यहाँ जा रहा था कि राह में उसने दिवाकर की बग़ल में आशा को बैठ कर जाते देखा और भ्रम के जाल में फँस गया। उल्टे पैरों मामले की जाँच करने जानकी के घर गया, तो लता को अकेली पाया, जो उससे मिलने की उतावली में और कुछ जान बूझ-कर भी ज़ीने से गिर पड़ी, जिससे उसके सर में सख़्त चोट आई। ज्ञानू लता के लिए डाक्टर लेने गया। उधर दिवाकर आशा को संगीत-सम्मेलन में नहीं, एक होटल में लेगया और वहाँ उसने आशा के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया और उससे कहा कि ज्ञानू तो लता को प्रेम करता है, तुम्हें नहीं और मुझे लता प्रेम करती है, किंतु मैं तुम्हारा ही पुजारी हूँ! आशा को दिवाकर के इस बनावटी प्रेम की असलियत मालूम थी, किन्तु ज्ञानू के सम्बन्ध में जो काँटा उसने चुभोया, उसका दर्द वह अनुभव करने लगी। आशा ने अपना व्यवहार बिलकुल संयत रखा और दिवाकर के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की, और लता तथा ज्ञानू के सम्बन्ध की सचाई जाननी चाही—कि दिवाकर आशा की देह स्पर्श करके कहे कि वह सच है! दिवाकर क्षण भर में उसके इस शान्त बर्ताव से बदल गया। उसने अपने कलुष को स्वीकार किया। आशा और दिवाकर जब घर पहुँचे, तो ज्ञानू लता का उपचार कर रहा था।

दूसरी ओर ज्ञान के घर पर मानसिक और दैहिक बीमारी से क्षुब्ध, हताश मन्दाकिनी ने ज़हर पीकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया, किन्तु अवसर रहते रायसाहब ने वह दुर्घटना नहीं होने दी। जब ज्ञानू घर लौटकर आया, तो रायसाहब ने उससे मन्दा के आत्महत्या के प्रयत्न का रहस्य जानना चाहा। ज्ञानू ने आशा के घर जाने, उसकी बीमारी और शराब पीने

वाली बात और अन्त में माँ द्वारा मन्दा के पीटे जाने की बात तक सब सच-सच बतला दी। रायसाहब अत्यन्त दुखी हो गए और सोचने लगे कि क्यों न ज्ञानू का विवाह आशा के ही साथ कर दिया जाय।

दूसरे दिन मन्दा की इच्छा पर आशा ज्ञानू के यहाँ ही रात को रहने लगी, किन्तु यह सामीप्य ज्ञानू और आशा के बीच में निकट की दूरी ही साबित हुआ। ज्ञानू के मन में भ्रम पल रहा था और आशा उसकी अन्य-मनस्कता से आशंकित रहती। ज्ञानप्रकाश ने अन्त में भयंकर मानसिक द्वन्द्व के पश्चात् आशा की परीक्षा लेने की ठानी और उसे झूठा ज़हर पिलाने ले गया जो आशा ने खुशी से पीकर ज्ञानू के भ्रम का पर्दा हटा दिया और अपने प्रेम की सचाई साबित कर दी। इधर दिवाकर ने भी ज्ञानू से अपने सारे कुकर्मों का कच्चा-चिट्ठा सुनाकर पश्चात्ताप प्रकट किया।

किन्तु ज़हर के अभिनय के बाद लता ने आशा और ज्ञानू को जिस प्रेम-मुद्रा में देखा था, उससे उसकी जलन ज्वालामुखी बन गई, जिससे ज्ञानप्रकाश और आशा दोनों परिचित थे और उसको शान्त करने का उपाय सोचने लगे।

उसी दिन शाम को जब ज्ञान आशा से विदा लेकर सिनेमा जा रहा था, तो आग्रह करके लता उसके साथ हो ली। ज्ञानू उसे सिनेमा न ले जाकर गंगा पार ले गया, जहाँ उसने लता के सौंदर्य की प्रशंसा की, उसकी लालसा की भर्त्सना की और उसे चुनौती दी कि अगर उसमें शक्ति है तो वह आशा के प्यार को छीन ले। लता ने कहा, "मैं जानती थी कि एक दिन तुम मुझे ज़रूर प्यार करोगे।" किन्तु फिर उसे प्रतीत हुआ—यह तो अवहेलना है मेरी! तिरस्कार है। मैं छली गई हूँ।" और लता के नारी अभिमान ने उलटकर इन्द्रजाल रचा, ज्ञानू की अर्चना-वन्दना की। ज्ञानू कठोर हुआ और दुखित भी। भावनावेश की चरमसीमा पर जानकर लता ने अपने को समर्पित कर दिया। ज्ञानू ने उसे स्वीकार नहीं किया और लता क्षमा प्रार्थी हो गई। ज्ञानू ने कहा कि क्षमा तुम आशा से मांगो। गंगा पार से वे दोनों फिर एक होटल में चाय पीने जाते हैं। ज्ञानू के हाथ की नीलम की अँगूठी लता के आग्रह से उसी की अनामिका में शोभायमान हो जाती है। वातावरण और लता का जगमगाता सौंदर्य उद्दीपन बनते हैं। चाय व्हिस्की में बदल जाती है और फिर प्रेमाभिनय पूरा होता है।

रात गये ज्ञानू घर लौटता है और बिना आशा से मिले सो रहता है। आशा उसका वैसे ही दर्शन करके लौट जाती है। उसे आज फिर ज्वर हो आया है। चलते समय रायसाहब और रायपत्नी ने उसे पुत्रवधू के रूप में अंगीकार करके आशीर्वाद दिये और विवाह के लिए मुहूर्त की प्रतीक्षा की। आशा घर लौटी तो दिवाकर के साथ, जो शैतान से देवता बन चुका था। लता की नीलम की अंगूठी पर उसकी दृष्टि पड़ी और वह फिर ऐसी शय्या पर पड़ी कि फिर न उठी—न उठी।

इस प्रकार 'दो बहनें' उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ है और वाजपेयीजी की उपन्यासकला की सफलता का प्रमाण है। हमारे हिन्दी साहित्य में 'दो बहनें' जैसे रोचक किंतु गम्भीर, सरल किंतु ललित उपन्यास बहुत कम हैं।

'मिठाईवाला' : एक अमर कहानी

ले०—प्रो० वासुदेव, एम० ए०

वास्तव में, यदि एक ओर उन्होंने मध्यवर्गीय समाज के ह्रासोन्मुख जीवन के सजीव चित्र खींचे हैं, तो दूसरी ओर निराश प्रेम की अमित वेदना का गद्य-गीत गाया है। यदि हम उन्हें रोमान्स और वेदना का प्रतिनिधिकहानी कार और वर्तमान ह्रासोन्मुख जीवन का भावुक कथाकार कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। अपनी कहानियों में उन्होंने प्रेम और वेदना को व्यापक दृष्टि से देखा है। जीवन के प्रति उनका अपना विचार-दर्शन है। किसी भी बड़े कहानी-लेखक का यह लक्षण होता है कि वह अपनी कहानियों के द्वारा अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति का मार्ग देता है। उनकी कहानियाँ भी निश्चित विचार-दर्शन की ठोस नींव पर खड़ी हैं।

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के जाने-पहचाने कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ हिन्दी कहानी के उस स्कूल के अन्तर्गत आती हैं जिन्हें

आज के आलोचक 'मनोवैज्ञानिक कहानियाँ' की संज्ञा देते हैं। वाजपेयीजी सन् '२२ से हिन्दी में कहानियाँ लिखते चले आ रहे हैं जिनमें हम रोमान्स और वेदना मुख्य रूप से पाते हैं। वास्तव में, यदि एक ओर उन्होंने मध्य-वर्गीय समाज के ह्रासोन्मुख जीवन के सजीव चित्र खींचे हैं तो दूसरी ओर निराशप्रेम की अमित वेदना का गद्य गीत गाया है। यदि हम उन्हें रोमान्स और वेदना का प्रतिनिधि कहानीकार और वर्तमान ह्रासोन्मुख जीवन का भावुक कथाकार कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। अपनी कहानियों में उन्होंने प्रेम और वेदना को व्यापक दृष्टि से देखा है। जीवन के प्रति उनका अपना विचार-दर्शन है। किसी भी बड़े कहानी-लेखक का यह लक्षण होता है कि वह कहानियों के द्वारा अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति का मार्ग देता है। उनकी कहानियाँ भी निश्चित विचार-दर्शन की ठोस नींव पर खड़ी हैं।

कुछ आलोचक वाजपेयीजी की कहानियों में 'अतिशय भावुकता' पाकर खीझ उठते हैं। पर सच तो यह है कि उनकी भावुकता निरर्थक और निराधार नहीं है। जीवन को सुन्दर और जीने लायक बनाने के लिये तथा दूसरों को जीने देने के लिये आत्म-सन्तोष, आत्म-निग्रह, धीरता तथा आत्म-विस्मृति की आवश्यकता होती ही है। ये मानव-मन की दुर्बलताएँ नहीं, वरन् परिस्थिति के अनुसार कभी-कभी हमारी ये 'सशक्त दुर्बलताएँ' समाज में शांति बनाये रखने में सहायक हुई हैं। वाजपेयीजी के चरित्र यदि जीवन के थपेड़ों के सामने घुटने टेक देते हैं तो इसलिये नहीं कि वे दुर्बल हैं, बल्कि इसलिये कि वैसी स्थिति में सभी को ऐसा करना पड़ता है और जो झुकते हैं वही उठते भी हैं।

इसी पृष्ठभूमि पर मैं यहाँ वाजपेयीजी की कहानी 'मिठाईवाला' का मूल्यांकन करना चाहता हूँ। यह कहानी सन् तीस की रचना है जो उनकी प्रारम्भिक कहानियों में से एक है; लेकिन इसकी उत्कृष्टता और अपूर्व सफलता देखकर दंग रह जाना पड़ता है। हो सकता है कि किन्हीं-किन्हीं को यह कहानी उतनी अच्छी न लगती हो जितनी 'निंदिया लागी'। लेकिन हिन्दी कहानियों के अधिकांश संग्रह-कर्त्ताओं ने 'मिठाईवाला' को अपेक्षाकृत अधिक पसंद किया है। वास्तव में इस कहानी की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अमरता प्रदान करती हैं। स्वयं वाजपेयीजी को यह कहानी विशेष रूप से प्रिय है। कहानी जब देश-काल-स्थान के स्पर्श से दूर हटकर मानव-मन की

भावनाओं के सत्य-वातायन को खोलने लगती है तो उसका महत्व और मूल्य अधिक बढ़ जाता है। 'मिठाईवाला' कहानी के साथ ऐसी ही बात है। यह कहानी मानव-मन की सात्विक पर त्यागमय भावना की एक जीती-जागती तस्वीर है। यह कहना ग़लत है कि त्याग की भावना मन की दुर्बलता है।

विभाजित और वर्गगत समाज में ही त्याग और आत्म-संतोष की स्थिति पैदा होती है, पर 'मिठाईवाला' कहानी यह सिद्ध करती है कि किसी भी युग में, किसी भी सामाजिक व्यवस्था में मन की कोमल वृत्तियों को सदा के लिए छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता। ये वृत्तियाँ हृदय के उदात्त गुणों का उन्नयन करती हैं और मानव-जीवन को व्यवस्थित और शान्त बनाये रखने में सहायक होती हैं। गलियों में घूम-घूम कर फेरी लगानेवाला मिठाईवाला एक ऐसा ही व्यक्ति है जिसे वैभव का वरदान प्राप्त था—वह अपने नगर का प्रतिष्ठित आदमी था; मकान, व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर—सभी कुछ थे। स्त्री थी, छोटे-छोटे बच्चे भी थे। उसका सोने का संसार बसा था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था और भीतर सांसारिक सुख का सौरभ। स्त्री सुन्दर थी, बच्चे भी सोने के सजीव खिलौने थे। लेकिन समय की गति और विधाता की लीला को कौन जानता है! किस समय किस तरह की मुसीबत बादल बनकर गरज-बरस पड़ेगी, यह जानना मनुष्य के वश की बात नहीं। ज्योतिष-शास्त्र का व्यापक ज्ञान रखकर, अन्तरिक्ष की रहस्यमय बातों को जानकर भी मनुष्य लड़ाइयाँ लड़ता रहा है, भूकम्प होते रहे हैं और मौत आती रही है।

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि दृश्य-जगत् के पर्दे के पीछे वह कौन-सी शक्ति छिपी है जो व्यक्ति के उमड़ते हुए अरमानों को इतनी निर्दयता-पूर्वक कुचल डालती है? क्या साम्यवादी संसार में किसी के लहलहाते अरमान जीवन के आकस्मिक झंझावात में पड़कर सूखे पत्तों की तरह उड़कर छिन्न-भिन्न और चूर-चूर नहीं होते? होते हैं और अवश्य होते हैं। फिर हम कौन-सी आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था करें कि हमारे दरवाज़े मौत न फटक सके और अचानक भूकम्प से हज़ारों-लाखों की बरबादी न हो सके? लेकिन प्रकृति पर विजय पानेवाला मानव आज भी उसी तरह पंगु, निरुपाय और निस्सहाय है जिस तरह पहले था। अदृश्य के क्रिया-कलापों पर किसका वश चला है? 'मिठाईवाला' कहानी जीवन के इसी रहस्य पर प्रकाश डालती है। स्त्री के मरने पर अगर मिठाईवाला चाहता, तो (वैभव के मद में आकर जैसा

कि आजकल सभ्य संसार में प्राय: होता रहता है) एक क्या, दो-चार शादियाँ कर एक-से-एक सुन्दर स्त्री का स्वामी और अनेक खूबसूरत बेटों का बाप हो सकता था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया—सोचा तक नहीं। क्यों? इसलिये कि उसने वैभव को नहीं, हृदय की कोमल पँखुड़ियों के मध्य पड़े पराग को देख लिया था। मृत पत्नी और बच्चों के लिये उसके दिल में नैतिक कर्त्तव्य की भावना शेष रह गई थी। बहुतों की बीबियाँ मरती हैं, बच्चे होते हैं और काल का ग्रास बन जाते हैं। लेकिन कितने ऐसे हैं जो मृत प्रियजनों की स्मृति में अपने जीवन के शेष दिन घुल-घुल कर और दीपक की तरह गल-गल कर काट देने का साहस करते हैं? यह आत्म-संयम की कठोर परीक्षा है। इस परीक्षा में मिठाईवाला बेदाग़ निकल आया और यही इस कहानी का सौंदर्य है। माना कि वह अपने मन को भुलावा देने के लिए कभी मिठाई, कभी मुरली और कभी खिलौने बेचता है लेकिन ऐसा कर क्या वह अपने बीबी-बच्चे की स्मृति को ताज़ा बनाये नहीं रखता? उसे पुनर्जन्म में पूरा-पूरा विश्वास है। वह रोहिणी से कहता है—'वे सब (बच्चे) अंत में होंगे तो यहीं कहीं। आखिर कहीं-न-कहीं तो जन्मे ही होंगे। उसी तरह रहता तो घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख-सन्तोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है जैसे वे इन्हीं में उछल-उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसे की कमी थोड़े ही है।'

यहाँ मिठाईवाले की कोरी भावुकता नहीं, उसका विवेक बोल रहा है। विवेक-पूर्ण भावुकता निराश मन को सहारा देती है और फिर वह दूसरों को सहारा देने के लिये उत्सुक होती है। अर्थशास्त्र के विद्वानों ने हमारे भौतिक जीवन में आर्थिक असंतुलन के बड़े-बड़े सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर दु:खों के अस्तित्व के अनेक कारण बतलाये हैं; लेकिन मिठाईवाले जैसे दुखी मनुष्य को उसकी खोई पत्नी और मरे बच्चे, अर्थशास्त्र के किस सिद्धान्त के आधार पर वापस लौटाये जा सकते हैं? इस कठोर और नग्न प्रश्न का उत्तर संसार का कोई शास्त्र नहीं दे सकता। इसका उत्तर विवेकपूर्ण भावुकता देगी जिसमें आत्म-मंथन, आत्म-संयम और आत्म-नियंत्रता की विभूति होती है। मन की कोमल वृत्तियाँ जीवन में सद्-सद् विवेक को जगाकर स्वयं ध्यान-सा हो जाती हैं। मिठाईवाला घुल-घुल कर मरना नहीं चाहता, चाहता है आत्म-संतोष, धीरता और आत्म-संयम का

जीवन बिताना। 'वह कहता है कि बच्चों के बीच मिठाई बेच कर उसे बड़ा संतोष मिलता है और मन को धीरज बँधता है और कभी-कभी असीम सुख भी मिलता है। मरे हुये बच्चों को मानव-समाज के दूसरे जीवित बच्चों को ढूँढ़ना और सभी को प्यार भरी नज़रों से देखना, मन की अतिशय भावुकता नहीं, विवेक का आश्चर्य-जनक प्रयोग और व्यक्तित्व का विस्तार है।

प्रो० नन्ददुलारे वाजपेयी ने उत्कृष्ट कहानी की कसौटी इस तरह निश्चित की है—'कहानी के लिये सबसे आवश्यक वस्तु है घटना-संतुलित कथानक का ऐसा प्रसार, जो अपना सीमा में एक प्रभावशाली और असाधारण जीवन-मर्म को पूरा-पूरा व्यक्त कर दे, कहानीकार वाजपेयीजी की यह कहानी आलोचक वाजपेयी की इस कसौटी पर अच्छी तरह खप जाती है। 'मिठाई-वाला' कहानी का कथानक बहुत साधारण है लेकिन साधारण कथानक से असाधारण जीवन-मर्म की व्यंजना कराने में कहानीकार को पूरी-पूरी सफलता मिली है। साधारण से असाधारण की व्यंजना और मन के मर्म को झक-झोर देने की क्षमता इस कहानी की अपूर्व विभूति है—यही इसका सौंदर्य है। कहानी का प्रभाव सीधा मन पर होता है। कहानी-लेखक ने कहीं भी अनावश्यक प्रसंगों को जोड़कर कहानी के उद्देश्य को स्खलित होने नहीं दिया है। इसका आधार व्यापक है, और अनुभव विशाल। इसमें मानव-हृदय को स्पर्श करने की अद्भुत शक्ति है। 'प्रभाव की एकता' का निर्वाह बड़े ही कौशल से हुआ है। कहानीकार ने बड़ी ही ईमानदारी, संयम और कौशल से कहानी के कथानक को एक ही केन्द्र-बिंदु प्रदान किया है, यह है मध्यवर्गीय परिवार का एक मुहल्ला। सारी घटनाएँ उसी महल्ले में घटती हैं। अतः यहाँ स्थान की एकता का संयमपूर्ण निर्वाह हुआ है। यद्यपि सारे कथानक को पूरा होने में चौदह महीने लगते हैं तथापि कहानी-लेखक ने अपने केन्द्रीय उद्देश्य को अपने ध्यान में रखा है। उसने हमारे मन की सम-वेदना और सहानुभूति को जगाकर ही दम लिया है। समय की एकता (Unity of Time) अच्छी कहानी के लिये कोई आवश्यक शर्त नहीं है। अतः इस कहानी में यदि इसका अभाव खटके तो इससे कोई विशेष हानि नहीं होती। प्रेमचन्द के कथनानुसार सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। इस कसौटी पर भी यह कहानी खरी उतरती है। हम उपर्युक्त पंक्तियों में इस कहानी के मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन कर चुके हैं। प्रो० प्रभाकर माचवे के अनुसार कथा में मनोरंजन भी होना चाहिये। 'मिठाईवाला' कहानी में वाजपेयीजी ने न केवल गंभीर

भावों की अभिव्यक्ति की है वरन् बालकोचित क्रियाओं का भी बड़ा ही मनोरंजक वर्णन किया है। निम्नांकित पंक्तियों के लिखने में कहानीकार ने कितने संयम से काम लिया है और अनावश्यक बातों को छांट दिया है। बच्चों के समूह में खड़ा होकर मुरली वाला कहता जा रहा है—'यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही लेलो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक तो बस यह है।......हाँ भैये; तुमको वही देंगे। यह लो......तुमको वैसी न चाहिये, ऐसी चाहिये ? —यह नारंगी रंग की एक ?—अच्छा, अम्मा से पैसे ले आओ। मैं अभी बैठा हूँ।......तुम ले आये पैसे ? अच्छा यह लो तुम्हारे लिये मैंने पहले ही से निकाली रखी थी।......मुझको पैसे नहीं मिले ? तुमने अम्मा से ठीक तरह से माँगे न होंगे ? धोती पकड़के, पैरों में लिपट के अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं, बाबू......हाँ फिर जाओ अबकी बार मिल जायेंगे। दुअन्नी है ? तो क्या हुआ, ये छै पैसे वापस लो। ठीक तो होगया न हिसाब ? मिल गये न पैसे ? तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं हैं ? अच्छा तुम भी यह लो।'—ये पंक्तियाँ मिठाईवाले के उदार, उन्नत और विनोदी स्वभाव पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। साथ ही लेखक ने बच्चों के स्वाभाविक क्रिया-कलापों का बड़ा ही सुखद वर्णन किया है। प्रो० माचवे के अनुसार कहानी का 'मनोरंजन साधनमात्र है लक्ष्य कुछ और है।' यह कथन इस कहानी के मर्म की ओर लक्ष्य कर रहा है जिसकी व्याख्या हम ऊपर कर आये हैं...वह है मिठाईवाले के विवेकपूर्ण भावुक जीवन को अभिव्यंजित करना। श्री जैनेन्द्रकुमार ने एक स्थान पर कहानी के उन साधारण पाठकों की माँग—कहानी दिलचस्प हो, जिसमें उनका मन लगे—का संशोधन करते हुये अच्छी कहानी की पहचान इस प्रकार बतलाई है—'मन लगना तो बड़ी पहचान है ही, पर मन लगा रहे 'तोता मैना' में मन लगता है पर लगा नहीं रहता।' 'मिठाईवाला' कहानी एक ऐसी ही कहानी है जो पाठक के मन पर अपना सारभूत प्रभाव (Total impression) छोड़ती है। मिठाईवाले का उदार व्यक्तित्व हमारे मन पर अमित छाप छोड़ता है। जिस कहानी का जो चरित्र पाठक के हृदय-पट पर जितनी स्पष्टता के साथ चित्र अंकित कर प्रभाव डालता है वह कहानी उत्कृष्ट और अमर होती है। हम उस व्यक्ति को कैसे भूल सकते हैं जो गलियों में मीठे स्वरों के साथ कहता हुआ घूमता है—बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला, मुरली वाला, मिठाईवाला। जब-जब मिठाई वाला याद आयेगा तब-तब बाजपेयीजी भी याद आयेंगे।

वाजपेयीजी के प्रारम्भिक उपन्यास

ले०— श्रीउदयशंकर भट्ट

हिन्दी में जब से प्रेमचन्द, भगवतीप्रसाद जी, जैनेन्द्र-कुमार, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास पढ़े हैं तब से ऐसा मालूम होता है कि हम इस दिशा में चेत सिंह के एयारी-बटुवे की चमक से निकलकर वास्तविक चेत सिंह के पास आ गये और मनुष्य के दायें-बायें जो बुद्धि का चमत्कार उसकी अपेक्षा हम हृदय की प्यास को अच्छी तरह पहचान भी सके। भगवती-प्रसाद जी ने अच्छे उपन्यास लेखकों की तरह अपना कोटा पूरा करने का प्रयत्न किया। वे उपन्यास लेखकों की श्रेणी में पहले नहीं तो दूसरे तीसरे जरूर हैं।

होश संभालते ही मनुष्य के साहित्य का सबसे प्रिय अंग जो उसे अपनी ओर खींचता है वह उपन्यास है। कविता, नाटक, संगीत उसके समक्ष से बाहर की बातें हैं। उपन्यास चाहे वह जासूसी हो य रोमाण्टिक, यथार्थ हो या आदर्शवादी मनुष्य के जीवन के उत्थान-पतन से सम्बन्ध रखने के

कारण सर्व-साधारण का अपना विषय हो जाता है इतना सर्व-प्रिय विभाग होते हुए भी वह जितना सरल है उतना ही कठिन भी है। जीवन जिस तरह सर्व-साधारण के हृदय की पहचान का होते हुए भी उसके बहुत परे है, उपन्यास साहित्य का भी यही हाल है। साहित्य का अंग संसार भर के साहित्यों में बहुत बड़ा है। इतना होने पर भी श्रेष्ठ उपन्यासों की संख्या कविता, कहानी नाटक से अधिक नहीं, जो हमारे साहित्य का गौरव बन सके। हिन्दी में ऐसे उपन्यासों की संख्या बहुत कम है, जो साहित्यिक कसौटी, हृदय की अनुभूति, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से ठीक हो। मैंने आज तक एक भी कहानी नहीं लिखी, एक उपन्यास का ढाँचा तैयार नहीं किया, फिर भी मुझे सबसे अधिक रुचिकर उपन्यास और कहानियाँ ही रही हैं। कभी-कभी सोचता हूँ, क्या ही अच्छा होता, मैं भी एक उपन्यास लिख पाता।* यह अभाव अपने अन्दर पाकर भी छोटे बड़े गुजराती, बंगाली, अंग्रेज़ी के प्राप्य-दुष्प्राप्य सभी उपन्यास मैंने पढ़ डाले हैं और पढ़ते रहने की इच्छा भी बनी रहती है। हाँ इधर हिन्दी में जब से प्रेमचन्द्र, भगवतीप्रसादजी, जैनेन्द्रकुमार, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास पढ़े हैं तब से ऐसा मालूम होता है, हम इस दिशा में चेतसिंह के एयारी-बटुए की चमक से निकलकर वास्तविक चेतसिंह के पास आगये और मनुष्य के दाएँ-बाएँ जो बुद्धि का चमत्कार है, उसकी अपेक्षा हम हृदय की प्यास को अच्छी तरह पहचान भी सके हैं। भगवतीप्रसादजी ने अच्छे उपन्यास-लेखकों की तरह अपना कोटा पूरा करने का प्रयत्न किया है। वे उपन्यास लेखकों की नवीन श्रेणी में पहले नहीं तो दूसरे-तीसरे ज़रूर हैं। न जाने कब से वे कहानियाँ लिखते चले आरहे हैं। परन्तु उपन्यास लिखना १६२६ से आरम्भ किया। उनके उपन्यासों का क्रम इस प्रकार है—

(१) प्रेम-पथ सन (१६२६)
(२) मीठीचुटकी सन् (१६२८) (इसे तीन लेखकों ने मिलकर लिखा)
(३) अनाथ पत्नी सन् (१६२६)
(४) त्यागमयी सन् (१६३०)

---

*हर्ष की बात है कि लेखक की यह अभिलाषा पूरी हो रही है। उनके नव-प्रकाशित 'वह जो मैंने देखा' तथा 'नये मोड़' नामक दोनों उपन्यास आधुनिक कथा-साहित्य को गति दे रहे हैं।—सम्पादक।

(५) लालिमा सन् (१६३५)
(६) प्रेम निर्वाह सन् (१६३६)
(७) पतिता की साधना सन् (१६३७)
(८) पिपासा सन् (१६३७)

'प्रेमपथ' की भूमिका प्रेमचन्द ने लिखते हुये कहा है—भगवतीप्रसादजी ने हिन्दी-संसार को यह बहुत ही अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप चकित हो जायँगे।" साथ ही एक बात के सम्बन्ध में उन्होंने अपना गहरा मतभेद भी प्रकट किया है। वे लिखते हैं—"स्त्री-पुरुष में प्रेम हो जाना स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अन्त विवाह हो, केवल वासना हो, वह कलुषित है। उसकी निन्दा होती है और होनी चाहिये। अन्यथा विवाह की मर्यादा भंग हो जायगी। तारा और रमेश का प्रेम कलुषित है, लेकिन आश्चर्य है कि वह इतने दिनों तक उसे निर्मल और निष्कलंक समझती रही। अगर विधवा साली का अपने जवान बहनोई के साथ एकान्त में रात-रात भर बातें करना, चुम्बन और आलिंगन करने से भी न हिचकना, पवित्र प्रेम है तो फिर संसार में अपवित्र प्रेम कहीं है ही नहीं।" असल में इस उपन्यास में नारी का एक प्रवाहित जीवन धारा का रूप है जो अवाधित गति से चली है। क्योंकि वह जीवन के उभार में ही विधवा हो गई थी। एक ओर वह रूढ़िवाद से अत्यन्त प्रताड़ित थी दूसरी ओर सांस्कृतिक आदर्शवाद की चक्की में पिसकर उसका नारीत्व हुङ्कार उठा था। जहाँ तक नारी के विद्रोह की भावना का प्रश्न है, यह उपन्यास ठीक है। परन्तु इसमें अन्य कई दोष आगये हैं। रमेश (जो तारा का बहनोई है और उपन्यास का नायक है) सुसराल में, जहाँ उसके घरबार का मालिक साला है, उसकी बहू है, स्वयं तारा की माता है, रमेश की पत्नी है, तारा के साथ रात-रात भर बातें करता और सब काम-काज छोड़कर जो वहाँ जम-सा गया है—उन सब लोगों को यह किस प्रकार सहन हो सकता है? रमेश का साला प्रतापनारायण तो मानो इस उपन्यास में मूक है, गूँगा है। वह यह सब कुछ देखता है फिर भी मानों उसकी ज़बान किसी ने बंद कर दी है। उसकी माता भी यह सब अनर्थ होते देखती है और कुछ भी नहीं कहती। विधवा तारा के ससुराल आने पर रमेश का उस दशा में बार-बार जाना, जब कि दोनों की काफ़ी बदनामी हो रही है, किसी प्रकार भी सम्भव दिखाई नहीं देता।

'मीठी चुटकी' में शिक्षिता नारी की स्वाधीनता की एक और विशेषता है। इसमें यह सिद्ध करने की चेष्टा है कि सार्वजनिक क्षेत्र में अकेली नारी का जीवन कितना भयावह है और निन्दा, व्यंग्य से उसकी अवस्था कितनी असह्य हो जाती है। 'अनाथ पत्नी में' सामाजिक कुप्रथाओं के हथौड़ों के प्रहार सहती हुई एक नारी की महत्वाकांक्षा, स्वाभिमानजन्य विद्रोही मनोवृत्ति तथा उसके उत्तर में अहर्निश हहराती हुई जन-सेवापरायणता एवं प्रेम-गंगा का चित्र दिया गया है। यह उपन्यास "प्रेम-पथ" और "मीठी चुटकी" का ही दिशा चरितरूप है।

'त्याग मयी' में प्रेमिका अपने प्रेमी के लिये प्राणोत्सर्ग करती है। वह ऐसी विधवा नारी है, समाज ने जिसे ठुकरा दिया है। अंत में अपने प्रेम करने में उसे सफलता मिलने की आशा होते ही वह देखती है कि वह प्रेम की अधिकारिणी नहीं है। वह अपनी सहेली के राजनैतिक षडयंत्र में स्वयं भाग लेकर अपने को अपराधी सिद्ध करती है तथा प्रेमी और सहेली के लिये प्राणोत्सर्ग कर देती है। यह उपन्यास प्रारम्भ से अन्त तक एक ग्रिप लिये हुए है। घटनाएँ स्वभाविक और हृदय को मसल डालने वाली हैं। वाजपेयीजी ने उनका चरित्र हृदय खोलकर लिखा है। ऐसा मालूम होता है। असल में इस उपन्यास में हमें वाजपेयीजी की अंकुरित कला का यथार्थ चमत्कार देखने को मिला है। 'लालिमा' 'प्रेम-निर्वाह' दोनों उपन्यास नारी हृदय की मनोवैज्ञानिक स्टडी है। लालिमा का अर्धांश लेखक तथा बाक़ी भाग प्रफुल्ल ओझा 'मुक्त' का है। "प्रेम निर्वाह" में एक प्रेमी की कर्त्तव्य निष्ठा सदाशयता तथा सच्चे अनुराग की झांकी पेश की गई है। इस उपन्यास में ऐसा देख पड़ता है, मानों सृष्टि का सारा खेल केवल एक सूत्र में बँधा हुआ है। केवल एक ही भावना, व्रत, संकल्प, चेष्टा और साधना जीवन की—और वह है केवल प्रेम।

असल में वाजपेयीजी की कृतियों के दो भाग हैं। एक भाग में प्रेम निर्वाह तक सारे उपन्यास आगये हैं। इनमें आरम्भ से अंत तक प्रेम की गाथा है। वाह्य अननुभूत और देखे हुए प्रेम की गाथा। इनमें वाणी, भावना, जीवन होते हुए भी मूर्तियों का आधिपत्य है, कल्पना का प्राचुर्य है। 'प्रेम-पथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'लालिमा', तथा 'प्रेमनिर्वाह' केवल उपन्यासकार होने की इच्छा से लिखे

गये उपन्यास हैं। त्यागमयी में उनकी प्रतिभा के बीज हैं। जो 'पतिता की साधना' और 'दो बहनों' की ओर आयेंगे।

पिपासा का नायक एक कवि है कमलनयन—समाजवादी, ग़रीब, बेकार और ग्रेजुएट। नरेन्द्र उनका मित्र है जज। शकुन्तला उसकी पत्नी है। वह कमलनयन को चाहती है। एक ओर तो वह पति के प्रति विश्वसनीय है, दूसरी ओर कमलनयन की ओर आकृष्ट। बस, यही संघर्ष है इस उपन्यास का। इसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होते हुए भी कई जगह त्रुटियाँ हैं। पात्र मानों जागरूक होते हुए भी विवश अरूप हैं। कमलनयन न्याय और सत्य का पक्षपाती है; फिर भी प्रेम के उद्वेग में आकर मित्र की पत्नी का आलिङ्गन कर लेता है। कैसा न्यायप्रिय है वह! मालूम होता है, आदि से अंत तक एक ढकोसला चला रहा है न्याय का, सत्य का, समाजवाद का और उसके भीतर एक ही विडम्बना है प्रेम की। पर यही उपन्यास अंत में बहुत सुन्दर हो गया है। वाजपेयीजी की कलम में सबसे बड़ी विशेषता है भावना की। वे पात्रों को इतना भावुक और सेंसटिव बना देते हैं कि मानों उनके पात्र सम्पूर्ण चेतना से जीवन के आघात-प्रत्याघातों को सहते और उनकी चेतना किसी भी प्रवाह में बड़ी जल्दी बह जाती है।

पर लेखक की कला का निखार असल में 'पतिता की साधना' और 'दो बहनों' इन दो उपन्यासों में होता है। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि उनके अन्य उपन्यास कूड़ा-करकट हैं; परन्तु इतना निःसन्देह कहना होगा कि वे उपन्यासकार की दृष्टि में उन्हें स्थायित्व नहीं दे सकते।

'पतिता की साधन' आदर्श और यथार्थवाद का सम्मिश्रण है। उसमें जीवन की वास्तविक प्रगति की ओर एक सूक्ष्म संकेत है। इस उपन्यास में वाजपेयीजी ने प्रेम के पचड़े से हटकर वास्तविक प्रेम और जीवन का पाठकों को प्रदर्शन कराया है और समाज के ज्वलन्त प्रश्नों का समाधान करने की चेष्टा की है। पतिता नन्दा तो मानों हमारी सम्पूर्ण सहानुभूति का साकार रूप है। उसका कष्टों में बराबर पिघलकर भी हिमालय की तरह दृढ़ रहना जहाँ आदर्शवाद की चरमसीमा है वहाँ यथार्थ भी उसकी जीवनधाराओं में सिनेमा के चित्रपट की तरह एक-एक करके आता है। हमारे एक-एक सूक्ष्म कार्य में कितना भयंकर और कूट बिस्फोट छिपा है, यह नन्दा के चरित्र से ज्ञात होता है। इसमें दया करुणा के साथ हास्य, विस्मय और अद्भुत

रस की भी खूब चमक है। दोष इसमें भी है; परन्तु 'एकोहिदेशो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दो: किरणोष्विवांक:' वाला हिसाब होने के कारण वह नगण्य है।

'दो बहनें' इस अन्तिम (यहाँ वाजपेयीजी की कला चमत्कार की दृष्टि से पराकाष्ठा तक पहुँच गई है इस दृष्टि में मैंने जान बूझकर 'अन्तिम' शब्द लिखा है।) उपन्यास में वाजपेयीजी ने हमारे सामने जो रूप रखा है वह संक्षेप में इस प्रकार है:—

ज्ञानप्रकाश एक वेदान्ती रायसाहब का लड़का है। सामाज सुधार के विषय को लेकर एक रोज़ बातों ही बातों में वह अपने पिता से झगड़ा करके घर छोड़ देता है तथा किसी मिल में नौकरी कर लेता है। जानकी एक विधवा है, जिसकी दो लड़कियाँ हैं—आशा और लता। आशा रायसाहब की दूसरी पत्नी से पैदा हुई मंदाकिनी को पढ़ाती है। दिवाकर रायसाहब का साला है, जो उन्हीं के यहाँ रहकर शिक्षा पा रहा है। आशा और लता दोनों ज्ञानू से प्रेम करती हैं। आशा शान्त और गम्भीर प्रकृति की लड़की है। लता चुलबुली और जल्दबाज़ है। एक प्रशान्त महासागर तो दूसरी आँधी। दिवाकर दोनों को अपना लेना चाहता है। अनेक आघात-प्रत्याघात मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ पात्र चलते हैं। ज्ञानप्रकाश संयमित होते हुए भी दिवाकर जैसा हो जाता और दिवाकर शान्त। लता ज्ञानज्ञकाश को आत्म-समर्पण कर देती है। और ज्ञानू उसे स्वीकार कर लेता है। किन्तु फिर सोचता है कि उसने आशा की अवहेलना की है। वह उसके प्रति विश्वासघात कर रहा है। आशा के प्रति रायसाहब भी सन्तुष्ट होकर उसके साथ विवाह करने की अनुमति देते हैं; परन्तु लता की कुचेष्टा से आशा का हृदय पहले ही विदीर्ण हो जाता है। वह पहले बीमार तो रहती ही है। इस आघात से उसकी बीमारी बहुत भयानक हो उठती है और वह नारी एकाएक समाप्त हो जाती है। इस उपन्यास में पात्र, घटनाएँ सब स्वाभाविक गति से विकसित होते हैं। एक तरह से यह उपन्यास चरित्र-प्रधान है, भावनामय।

ज्ञानू बोला—चलती हो आशा सिनेमा देखने। भावातुर आशा बोली—आशा स्वप्न देखती है, सिनेमा नहीं।"

"नारी एक आँधी भी है, एक सरिता भी है। उसमें वेग और प्लावन भी कभी आता है।"

"पंखों के लिए यह विराम है; किन्तु उड़ने के प्रवाह के लिये गति ! लेकिन अगर पंख ऊपर नीचे होकर उड़ते न चलें तो वह गति भी आगे चल कर विराम बन जाय।"

"अपूर्णता का भी अपना एक महत्व है; पूर्णता उसे खा डालती है।"

इन उपन्यासों में लेखक की जिन धारणाओं तक हम पहुँचते हैं, वे यह हैं कि जीवन एक शृँखला नहीं है। जीवन में आरम्भ से अन्त तक एकरूपता भी नहीं है। प्रत्येक जीवन का एक आदर्श नहीं है। सरिता की तरह जीवन प्रवहरणशील है। सरिता जिस तरह समुद्र में जाकर अपना अस्तित्व खो देती है उसी प्रकार जीवन भी मृत्यु को पार करके अपने को पूर्ण करता है। मृत्यु नाश नहीं है, दु:ख नहीं है, क्रंदन भी नहीं है। वह अनिवार्य है। ज्ञानप्रकाश ने प्रेम के बंधन को माना; किन्तु लता के रूप की मादकता और उसके आत्म-समर्पण से जब एक विचार उसे धक्का देता है तब वह देखता प्रेम असीम है। बुरे-से-बुरे, दुष्ट, धूर्त प्राणी में भी कुछ-न-कुछ सुन्दरता, सरलता रहती है।

मैं मानता हूँ 'दो बहनों' उपन्यास में लेखक पूर्ण रूप से सफल हुआ है। उनका यह उपन्यास हिन्दी ही नहीं, भारत के सभी श्रेष्ठ उपन्यासों की टक्कर का है।

3201

पिपासा

लें०—श्रीइन्दुकान्त शुक्ल

वाजपेयीजी के उपन्यासों में वास्तविक जीवन की झंकार और झकोरे मिलते हैं। व्यवहृत उपकरणों का प्रत्यक्ष ज्ञान होने से ही कला में प्राण-प्रतिष्ठा होती है। उनका यह ज्ञान गुण बनकर उनकी रचनाओं में उतरा है। उनमें सत्यशीलता है, सर्जन-चमत्कार है और अपने स्थिर दृष्टिकोण के प्रति अविकल आस्था हैं। इसीलिए वे जीवन की व्याख्या अपने ढङ्ग से करने में सफल हुए हैं। उनके उपन्यास जीवन की निर्जीव छाया नहीं, उसका प्राणवान् प्रत्यक्षीकरण प्रस्तुत करते हैं।

यशस्वी साहित्यिक, कृतीवर पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी के कथा-कौशल और शैली-शिल्प की विशिष्टता निर्विवाद रूप से स्थापित और सम्मानित हुई है। सन् '२६ के लगभग उन्होंने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। तब से अब तक युग और जग ने बड़े परिवर्तन देखे, साहित्यिक मान्यताओं में अनेक नवीन उद्भावनाएँ आईं और वाजपेयीजी की कला ने भी विकास और

उत्कर्ष की अनेक सीढ़ियाँ पार कीं। हिन्दी की सेवा में वे गत ३० वर्षों से समर्पण-भाव से संलग्न रहे हैं। श्रमजीवी साहित्यकार के नाते उनका जीवन संघर्ष-संकुल रहा है; क्योंकि उन्होंने साहित्य को छोड़ अन्य किसी साधन को आजीविका बनाना बराबर अस्वीकार किया। इसके लिए वे उचित गर्व कर सकते हैं। स्वभाव से सरल और निरहंकार, उन्होंने अपने आत्म-सम्मान पर कभी आँच नहीं आने दी है। कथा-साहित्य के इस सुदृढ़ स्तम्भ का हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग किसी तरह कम नहीं है। अभिनन्दन-आकलन के इस शुभ अवसर पर उनके अनुदान का अंकन-अन्वीक्षण उचित ही है। इस सिलसिले में, संवत् १९८४ में प्रकाशित उनके "पिपासा" नामक उपन्यास पर एक दृष्टि डालना उनके विकास-क्रम की दृष्टि से रोचक और उपादेय होगा।

मुझे स्मरण आता है वाजपेयीजी की एक बहुत सुन्दर कविता है "पन घट पर"। वर्षों पहले पढ़ी थी पर मैं उसे आजतक नहीं भूल सका। भाषा-प्रवाह, भाव-सौंदर्य, प्रतीक-योजना, समय, अनुभूति और सुष्ठु कल्पना की जो निरूपम विभूति इस कविता में देखने को मिलती है उससे आप भली भाँति समझ सकेंगे कि यह कलाकार अंतर में कितनी पिपासा लिए हुए जगत् के द्वार पर, जीवन के पनघट पर आया है। 'प्रेम-पथ' पर से चलकर उन्होंने 'प्रेम-निर्वाह' तक अनेक मूर्तियों पर अपने कल्पना-कुंज के कुसुम चढ़ाए हैं। यहाँ तक कुछ स्थूलता रहनी अनिवार्य थी; परन्तु यह स्वाभाविक धर्म है कि हम उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर की ओर बढ़ते चलते हैं। तदनुरूप उनकी अन्य कृतियाँ निखरती गईं। उन्होंने स्वयं कहा है—"जिस समय मैंने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था उस समय मेरी स्थिति एक रस-लोलुप व्यक्ति की सी थी। नित्य के चलते-फिरते जीवन में मैं केवल क्रीड़ा-कौतुक देखता था। भावना का सौंदर्य और रूप का आकर्षण मात्र मेरे अध्ययन का विषय था। ('साहित्य संदेश' उपन्यास-अङ्क अक्टू० नव० '४०)। 'त्यागमयी' से उनकी प्रतिभा का प्रभात होता है और इस अरुणोदय में हमें दो स्वर्ण-सुमन मिले—"पतिता की भावना" एवं 'दो बहनें'। 'दो बहनें' संभवत: उनकी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रख्यात कृति है।

शरत् और टैगोर से उन्होंने प्रेरणा अवश्य पाई परन्तु उनकी शैली और टेकनीक पूर्णत: निजी हैं क्योंकि वे 'अंतर की आँखे खोलकर' जगत् को

देखते हैं। और यदि कोई अपनी आँखों से भी अन्तर की आँखों से, कुछ देखें तो वह उसे अपने ही ढंग से वर्णित करने के लिए विवश रहेगा। यह मौलिकता की गारण्टी है। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपनी अनुभूति को उन्होंने अपने साधनों से अभिराम बनाया और उसे आख्यान के अभिनव प्रकार परिधानों—कहानी, उपन्यास – में अवतीर्ण किया। शरत की एकरसता उबा देती है। वाजपेयीजी उससे मुक्त हैं। इसी से उनकी कृतियाँ रोचक रहीं।

उनका यह विश्वास अत्यधिक बुद्धिपरक एवं युक्तियुक्त है कि "कल्पना को जब तक कलाकार सत्य का रूप नहीं देता, तब तक वह निर्जीव रहती है। उसमें प्राण डालने के लिये कलाकार को अपनी कृति में तन्मय हो जाना पड़ता है।" फलतः वाजपेयीजी के उपन्यासों में वास्तविक जीवन की झंकार और झंकोरे मिलते हैं। व्यवहृत उपकरणों का प्रत्यक्ष ज्ञान होने से ही कला में प्राण-प्रतिष्ठा होती है। उनका यह ज्ञान गुण बनकर उनकी रचनाओं में उतरा है। उनमें सत्यशीलता है, सर्जन-चमत्कार है और अपने स्थिर दृष्टिकोण के प्रति अविकल आस्था है। इसीलिए वे जीवन की व्याख्या अपने ढंग से करने में सफल हुए हैं। उनके उपन्यास जीवन की निर्जीव छाया नहीं, उसका प्राणवान् प्रत्यक्षीकरण प्रस्तुत करते हैं।

उनके पात्रों के विषय में कुछ विचार कर लेना चाहिए। स्टीवेंसन का मत है कि : "The greatest triumph of the novelist is the power to create so perfect an illusion.........that the reader shall for the moment identify himself with the characters of the story and seem to experience the adventures in his own person." इस तादात्म्य-प्रस्थापना में वाजपेयीजी सफल हुए हैं। उनके पात्र types जातिविशेष के प्रतिनिधि, वैयक्तिक विशेषताओं से हीन व्यक्ति नहीं हैं। वे व्यक्ति (individuals) हैं, अपनी संकुचित सीमाओं से घिरे, फिर भी शुभसम्भावनाओं से सम्पन्न। उन्हें अलग-अलग पहचाना जा सकता है। उदाहरणार्थ नरेन्द्र; कमलनयन सुरेन्द्र आदि सभी में अन्तर है। परन्तु उन्हें 'कला के लिए कला' का सिद्धांत मान्य नहीं रहा। फलतः वे प्रकृतिवाद के प्रति आकर्षित नहीं हुए। सम्भव है कि कुछ लोगों को उनकी प्रारम्भिक कृतियों से ऐसा भ्रम उत्पन्न हो। पर

है यह भ्रम ही। क्योंकि गहरे जाने पर उनकी कृतियों में मंगलमूलक कामना के संकेत अवश्य मिलेंगे।

वाजपेयीजी जीवन को एक शृङ्खला नहीं, अनिवार्यता मानते हैं। मृत्यु अंत नहीं, अनन्त जीवन-प्रवाह का एक घाट है। प्रेम काल और काया की कारा में नहीं जीता-मरता, असीम है—सम्भवत: इसी से मुक्त है। नीचातिनीच हृदय में भी सुन्दरता और कोमलता के कक्ष होते हैं। इसी भावना के अनुरूप कि जीवन एक प्यास है, प्राप्ति या सन्तोष नहीं। इसीका निदर्शन 'पिपासा' में हुआ है। इसका नायक-ग्रेजुएट कमलनयन कवि, निर्धन, बेकार, और समाजवादी है। उसका मित्र नरेन्द्र जज है। जज की पत्नी है शकुन्तला। वह कमलनयन के प्रति अनुरक्त है। वह पति की विश्वासपात्र है और एक पर-पुरुष पर आकर्षित भी। यह स्थिति उपन्यास में संघर्ष की संयोजना करती है।—मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अनेक सुन्दर चित्र उपन्यास में यत्र-तत्र अंकित हैं। कुछ त्रुटियाँ हैं पर नगण्य सी। पात्र सजग हैं फिर भी नियति-नियन्त्रित हैं। उनकी विवशता देखने में स्वाभाविक तो अवश्य लगती है परन्तु निस्सहायता की यह कोटि वांछनीय नहीं; क्योंकि इससे आशा का प्रोत्साहन नहीं, निराशा का प्रपीड़न मिलता है। न्याय और सत्य के व्याख्याता कमलनयन का राग-आवेग में मित्र की स्त्री का परिरम्भण करना असम्भाव्य तो नहीं, परन्तु अनर्थकारी अवश्य है—सामाजिक राजनीति के विचार से। और अन्त में अनर्थ (tragedy) ही हुआ भी—शकुन्तला की मृत्यु और नरेन्द्र का मस्तिष्क-विक्षेप।

परन्तु इस पर यह निर्णय देना कि समाजवाद, न्याय, सत्य एक ढोंग है और सर्वत्र एक ही विडंबना व्याप्त है—प्रेम की, चाहे वह वासनात्मक हो चाहे उपासनात्मक—अन्याय है। केवल समाजवाद, न्याय और सत्य पर विश्वास मनुष्य की भूख नहीं मिटा देते। इनका वकील बनकर भी वह मनुष्य तो रहता ही है—अपने जातिगत स्वभाव की क्षुद्रताओं, क्षमताओं से युक्त। आज के जीवन की यही सम्मभावनाएँ हैं और लेखक ने यही दिखाया है। "ऐसा ही हुआ करे"—यह प्रचारित करना उसका उद्देश्य नहीं। क्योंकि इस पथ की असफलता और दुखप्रद परिणति दिखाने के लिए ही लेखक ने संतप्त शकुन्तला की मृत्यु, निरपराध नरेंद्र का मानसिक विक्षेप एवं भावान्दोलित कमलनयन का शून्य, पराजित सा अवसान दिखाया है।

नैतिकता की बात सामने है अतः कुछ इसके सम्बन्ध में भी। पहली बात यह है कि हम मनुष्य पहले हैं राजनीतिक नेता, साहित्यिक, वकील, जज क्लर्क बाद में। मनु-सन्तान की भूख रोटी, कपड़े, घर तक ही सीमित नहीं हैं। मात्र साहित्यिक, राजनीतिक, व्यावसायिक हलचलें उसे सुखी सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं। उसे कुछ और भी अपेक्षित है—वह है, प्रेम का हास, सहानुभूति के आँसू। इस विवशता का बड़ा द्रावक वर्णन बच्चन ने किया है—

जग बदलेगा किन्तु न जीवन
क्या न करेंगे उर में क्रंदन
जन्म मरण के प्रश्न चिरंतन
हल कर लेंगे जब रोटी का मसला जगती के नेतागण। जग...
प्रणय स्वप्न की चंचलता पर
जो रोएँगे सिर धुन-धुन कर
नेताओं के तर्क वचन क्या उनको दे देंगे आश्वासन। जग...

फिर, गाल्सवर्दी की विवाहित नायका आइरीन, ("मैन आव प्रापर्टी" में) परपुरुष पर अनुरक्त होकर भी हमें चरित्रहीन नहीं लगती। उसका मानस-मंथन हमारी सहानुभूति का उद्रेक करता है। इसी तरह शकुन्तला यदि हमारे प्रोत्साहन-समर्थन की नहीं तो सहानुभूति की पात्री अवश्य है। यही लेखक की विजय है। यद्यपि आइरीन और शकुन्तला की गहराइयों में पर्याप्त अन्तर है।

इस सम्बन्ध में लेनिन के विचार द्रष्टव्य हैं—'We do not believe in eternal morality. To us morality derived from a power outside a human society does not exist —is merely a deception.' किसी पात्र के नैतिक स्खलन पर लीपा-पोती कर दुस्साध्य प्रयास करना मेरा अभीष्ट नहीं; हर प्रसंगोपांत होने से विचार विमर्श के लिए इन मान्यताओं को उद्धृत करना संगत मालूम पड़ा।

सम्भव है विवाहित स्त्री का पर-पुरूष से स्नेह सम्बन्ध हमारी रूढ़ धारणाओं के अनभ्यास-प्राप्त, अनुदार दृष्टिकोण पर चोट करता हो। पर कुछ तो हमें बदलना तथा उदार होना पड़ेगा और कुछ इन उच्छृंखल प्रवेगों (advances) को कम होना पड़ेगा। स्वस्थ संतुलन की आज अधिक आवश्यकता है। संकुचित मनोवृत्ति का दुराग्रह न तो कल्याणकारी है और

न नवीन रसलोलुपता का अबाध अतिचार। कमलनयन का किसी कुमारी से मर्यादित प्रणय, जो अनिवार्यतः विवाह में प्रतिफलित हो, शायद आलोचकों को अधिक सह्य-स्वीकार्य होता।

अंत में यह उपन्यास बहुत सुन्दर मोड़ लेता है। लेखक की कलम का कमाल यह है कि वह पात्रों को अतिशय भावप्रवण और संवेदनशील (sentimental and sensitive) रूप में चित्रित कर देती है। ये तत्व 'पिपासा' के पात्रों के अशोभन दीखने वाले आचार-विचारों को वीभत्स कुरूपता की कोटि में जाने से बचा लेते हैं, साथ ही हमारी सहानुभूति भी उनके लिए अर्जित कर लेते हैं। यदि वे कभी पतनोन्मुख (?) होते हैं तो इसका दायित्व किसी हद तक उनकी भावुकता पर है जिसके अतिरेक पर उनके विवेक का बस नहीं चल पाता। पर वाजपेयीजी अनुपात का सम्यक ध्यान रखते हैं। ऐसा नहीं है कि शकुन्तला और कमलनयन ने अनुताप न महसूस किया हो या अपने सम्बन्ध का निर्लज्ज प्रदर्शन किया हो। मिथ्या वाहवाही (Bravado) की ग़लत भावना के वे शिकार नहीं कि हर नाजायज़ को भी हमेशा, हर तरह जायज़ कहते समझते चले जाँय। अन्य बातों में भी इसी तरह अनुपात मर्यादा निभाई गई है। एक ओर प्रेमल पति और निश्छल मित्र नरेन्द्र हैं, दूसरी ओर प्रतिभाकुमार, अभाव-आकुल, अवरोध-अभिशप्त कमलनयन। एक से शकुन्तला धर्मसूत्र में बंधी है, दूसरी ओर परिस्थितियों ने उसे कवि की ओर अग्रसर कर दिया है।। यह अग्र-गामिता अनुरक्ति बन कर एक नैतिक समस्या खड़ी कर देती है जिसका हल पाने के प्रयास में वह सामाजिक अनुशासन और मानसिक विलोड़न के द्वन्द्व में निःशेष हो जाती है। वैसे भी, अपने ही में यह समस्या गंभीर है। पर्दारहित घर में मित्र-प्रवेश, नायक पर किए गए मित्र के अनुग्रह का दुष्परिणाम—ये प्रश्न चिन्त्य अवश्य हैं।

साथ ही शकुन्तला का यह वक्तव्य भी विचारणीय है—"मालूम नहीं किस क्षण तुम किसी व्यक्ति की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाते हो और चाहते हो कि यह मुझको मिल जाय, मेरा हो जाय, तो इसमें पाप क्या है।......नारी की स्वतन्त्रता के साथ तुम्हारा यह कैसा न्याय। क्या संसार में कोई ऐसा भी पुरुष हो सकता है जिसने किसी एक स्त्री को छोड़कर दूसरी स्त्री की ओर कभी आँख उठाकर न देखा हो। तब तुमको (पति को) मैं अपवाद कैसे मान

लूँ ? तुम अपने मित्र बना सकते हो, उनसे घुल घुल कर बातें भी कर सकते हो किन्तु मैं यदि किसी कवि को अपना मित्र मानती हूँ, आदर करती हूँ या मान लो कि मैं उस पर भक्ति भी रखती हूँ तो मैं कुलटा हूँ—पतिता हूँ ! छि: छि: !! * * * उनके (पति के) उत्सर्ग की थाह नहीं है......मेरा वियोग वे कैसे सहन कर सकेंगे। लेकिन मैं क्या कर सकती हूँ और कोई क्या कर सकता है। जीवन का अणु-अणु तो प्यास से भरा है। हायरी प्यास क्या तू कभी शान्त होगी ?" और यहीं हमें Croce का कथन याद आता है—"The moment of art proceeds the moment of logic." और नीतिपरक हो कर भी क्या कोई कृति महान् हो सकती है ? इलियट का उत्तर है—'Good literature is not always a great literature.' शायद इसी से पुराने भुक्तभोगी सयाने कह गए हैं कि "इश्क नाज़ुक मिजाज़ है बेहद, अकल का बोझ उठा नहीं सकता।"

उपन्यास की दु:खान्त समाप्ति पर दो शब्द। गेटे ने कहा है—"The hero of a novel should be a sufferer or at least not highly active." इसीलिए संसार के सभी प्रसिद्ध उपन्यासों के नायक चिंतनपरक, भावप्रवण, कोमल, तरल अवसाद से व्याप्त दिखाए गए हैं। वाजपेयीजी का मत है कि: "कुछ आलोचक हीरो अथवा हीरोइन के जीवनान्त को ट्रैजिडी के रूप में देखते हैं। पर यह शेक्सपीरियन दृष्टिकोण है। इसमें यह स्वीकार कर लिया गया है कि मरण एक बहुत बड़ी असफलता है। इसमें मृत्यु को बहुत भयावह देखा गया है। किन्तु मैं तो मृत्यु में भय नाम की कोई चीज़ नहीं देखता। जन्म अथवा सन्तानोत्पत्ति को जैसे मैं जीवन का एक विकास मानता हूँ वैसे ही मनुष्य के देहान्त को भी।"—इस पर कहना है कि १. वाजपेयीजी के उपन्यास भी गेटे की इस व्याख्या के अनुरूप हैं। २. मृत्यु को अनिवार्यत: सभी ने असफलता या भयानकता नहीं माना है। ३. संसार के प्राय: अधिकांश नायकों का अंत दु:खपूर्ण रहा। यह शेक्सपियर का नहीं सबका मत है। गांधी, राम, कृष्ण, ईसा ही को ले लें। ४. विचारकों के लिए मरण बौद्धिक स्तर पर भयावह भले ही न हो पर उसका लोक पर प्रभाव एवं उसके प्रति सर्वसामान्य की भीति तो वह भीत (दीवाल) है कि जिसके पार मनुष्य जा ही न सकेगा। उन्होंने भले ही मृत शकुन्तला को अमर जीवन के मर्म पर लगा दिया हो, इसका प्रभाव पाठक

पर दूसरा ही पड़ता है, विजयगर्व का नहीं। और यह किसी हद तक ठीक भी है। ऊपर कहे गये मंतव्यों के अनुरूप ही यह मृत्यु मंगलमय सीख छोड़ जाती है।

हाँ, जीवन में उनकी बलवती आस्था स्तुत्य है। उनकी नवीनतम कृति 'पतवार' में बड़ी स्वस्थ शान्ति स्फुरित हुई है। वह कृति गांधीवादी समाधान प्रस्तुत करती है। मतभेद तो अवश्य रहेगा पर 'पतवार' एक आस्थापरक लेखक की प्रौढ़ रचना है, यह निस्सदेह कहा जा सकता है। विचित्र संयोग है कि उनके प्राय: हर प्रमुख उपन्यास में एक बात का निर्वाह हुआ है। उनके नायक किसी अन्य स्त्री पर मुग्ध-लुब्ध होते है। पर मात्रा और भावना में पर्याप्त परिष्कार होता आया है। यह अमर प्यास है, शायद कभी न पिंड छोड़ेगी।

परन्तु अब बाजपेयीजी ने जैसे अपनी प्रारम्भिक रसलिप्सु वृत्ति की व्यर्थता समझ ली है। अब उनकी प्यास रूपदर्शन से न हो, जनोत्थान से शांत होगी। अत: उनका नवीन संकल्प है: "अपने पाठक को मैं ऐसा लौहस्तम्भ बना दूँ कि लगातार असफल होने पर भी जीवन से हार मानना उसे स्वीकार न हो। साथ ही मेरा उद्देश्य उन मनोवैज्ञानिक क्षणों में उन असाधारण मनोवेगों को पकड़ने का भी होता है जो जीवन को हित या अहित की दिशा में बड़े वेग से प्रभावित करते हैं।" अस्तु।

कथाकार वाजपेयीजी

ले०—श्रीराजेन्द्र सिंह गौड़, एम० ए०

वाजपेयीजी की मौलिक रचनायें हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनकी गणना प्रेमचन्द और प्रसाद के समकालीनों में की जाती है। प्रेमचन्द अपने कथा-साहित्य में अधिकांश वहिर्मुखी हैं, प्रसाद अन्तर्मुखी और वाजपेयीजी न तो पूर्णतया वहिर्मुखी हैं और न अन्तर्मुखी। इन दोनों के समन्वय से जो एक तीसरे प्रकार की विचारधारा बनती है उसी का प्रतिनिधित्व वाजपेयीजी ने अपनी रचनाओं में किया है।

यह हिन्दी का परम सौभाग्य है कि उसके साहित्यकार जनता के सम्पर्क में आ रहे हैं और साहित्य-प्रेमी-जनता द्वारा उनके कृतित्व का मूल्यांकन हो रहा है। पिछले वर्षों में यह कार्य कुछ उपेक्षित-सा था। कुछ तो हिन्दी की अपनी सीमित शक्ति, कुछ साहित्यकारों की तटस्थता, उदासीनता एवं संकोच और कुछ राजनीतिक पराधीनता के कारण हिन्दी के उन्नयन, संवर्द्धन एवं विकास में जो बाधाएँ मिल रही थीं; जनतन्त्रीय भावना के प्रसार ने उनका

उन्मूलन कर दिया और एक ऐसे स्वतन्त्र वातावरण का निर्माण हो गया जिसमें हिन्दी-साहित्यकार को पनपने और साहित्यकार को जनता में घुलने-मिलने का अभूतपूर्व अवसर मिल गया। आज हममें जो उत्साह और उमंग है उसके मूल में यही प्रेरणा कार्य कर रही है और इसी प्रेरणा के बल पर हम जहाँ अपने साहित्यकारों की आरती उतारते हैं वहाँ उनके सम्बन्ध में कुछ कीर्तन करने का भी अनुष्ठान करते हैं। हिन्दी के लोक-प्रिय कथाकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी का उनकी चौवनवीं वर्ष गाँठ के अवसर पर कानपुर में जो अभिनन्दन समारोह हो रहा है वह प्रत्येक दृष्टि से अपेक्षित एवं उचित है और इसके लिए वहाँ के साहित्यिक बन्धु बधाई के पात्र हैं।

वाजयेयीजी मेरे परम मित्र हैं। आज से १४-१५ वर्ष पूर्व जब मैं पहले पहल उनके सम्पर्क में आया तब मुझे ऐसा लगा कि वह मेरे लिए नए नहीं, चिरपरिचित हैं! उनमें बन्धुत्व की भावना बड़ी प्रबल है। बात-बात में मुस्कराहट उनके भरे हुए मुखमण्डल पर खेला करती है। प्रेम और हास्य के सम्बन्ध में ही उनके अब तक के जीवन का विकास हुआ है। जीवन की आर्थिक विषमताओं में पड़ने पर भी उनकी मुस्कराहट उनसे नहीं छूटी है। मैंने उन्हें कभी उदास नहीं देखा। चिन्ताएँ रहने पर भी उन्होंने कभी अपने मित्रों के बीच अपनी चिन्ताओं का प्रदर्शन नहीं किया। जीवन की असामान्य परिस्थितियों के साथ उन्होंने बराबर लोहा लिया है और इस प्रकार वह अपने जीवन के स्वयं निर्माता रहे हैं। आत्मशक्ति, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास—इन्हीं तीन गुणों के आधार पर उनके व्यक्तित्व का विकास हुआ है। गंभीरता के साथ-साथ उनमें बाल-चापल्य भी है। बालकों में वह बालक, युवकों में वह युवक और वृद्धों में वह वृद्धों जैसी बातें करते हैं। अवसर और वातावरण के उपयुक्त वह अपने जीवन को ढालने में पटु हैं। अपनी मित्र-मण्डली में वह खुलकर बातें करते हैं। ऐसे अवसर पर 'गोपनीय' का कुछ भी महत्व उनकी दृष्टि में नहीं रहता। लेखनी ही उनकी जीविका का मुख्य साधन है। जब से उन्होंने लेखनी उठायी है तब से अब तक वह बराबर लिखते रहे हैं। उनका यही व्रत है, यही संकल्प है और इसी व्रत और संकल्प ने उन्हें ऊँचा उठाया है।

वाजपेयीजी के साहित्यिक जीवन का आरम्भ लगभग सन् १९२० से होता है। हमारे राष्ट्रीय इतिहास में इस वर्ष का विशेष महत्व है। इसी वर्ष

जब भारतीय जन-जीवन में राष्ट्रीय विचारधारा की आँधी उठी थी तब वाजपेयीजी ने 'होमरूल लीग' में प्रवेश किया और हिन्दी-जगत् से उनका परिचय हुआ। उस समय उरई के 'उत्साह' और कानपुर के 'प्रताप' की अच्छी ख्याति थी। वाजपेयीजी की प्रारम्भिक कविताएँ इन्हीं पत्रों में प्रकाशित होती थीं। कानपुर से एक मासिक-पत्र भी निकलता था। इसका नाम था 'संसार'। इस पत्र के लिए एक अच्छे प्रूफरीडर की आवश्यकता थी। वाजपेयीजी बेकार तो थे ही, प्रयत्न करके यह कार्य उन्होंने अपना लिया। भूखा जैसे भोजन पर टूटता है, वैसे ही उन्होंने इस कार्य में अपना तन-मन लगा दिया। धीरे-धीरे यह कार्य उनकी जीविका का ही साधन नहीं, उनकी मानसिक तृप्ति का भी साधन बन गया। वह निश्चित रूप से कुछ लिखने लगे और उन्नति करके उस पत्र के सहायक सम्पादक और फिर प्रधान सम्पादक हो गये। सम्पादक होने पर उनकी प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ। लेखों को शुद्ध करने, उन्हें सजाने-सँवारने और स्वतन्त्र रूप से लेख लिखने में उन्हें दिन-रात जो अभ्यास करना पड़ा उससे उनकी लेखन शक्ति चमक उठी। उन्होंने कई मौलिक निबन्ध लिखे जिनका तत्कालीन हिन्दी-प्रेमियों में बड़ा आदर हुआ। सन् १६२२ में जबलपुर में 'श्री शारदा' नाम की एक पत्रिका निकलती थी। इस पत्रिका में उनकी पहली कहानी 'यमुना' प्रकाशित हुई। इसी 'यमुना' ने उन्हें हिन्दी-जगत् का कथाकार बना दिया।

वाजपेयीजी की मौलिक रचनाएँ हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनकी गणना प्रेमचन्द और प्रसाद के समकालीनों में की जाती है। प्रेमचन्द अपने कथा-साहित्य में अधिकांश बहिर्मुखी हैं, प्रसाद अन्तर्मुखी और वाजपेयीजी न तो पूर्णतया बहिर्मुखी हैं और न अन्तर्मुखी। इन दोनों के समन्वय से जो एक तीसरे प्रकार की विचारधारा बनती है उसी का प्रतिनिधित्व वाजपेयीजी ने अपनी रचनाओं में किया है। उनके कथा-साहित्य की दो धाराएँ है—उपन्यास और कहानियाँ। साहित्य-प्रदेश में काव्य-द्वार से प्रवेश करने के पश्चात् सम्पादक के रूप में जब उन्हें स्वतन्त्र चिन्तन का अवसर मिला तब उन्होंने मुख्यतः कथा-साहित्य की ही सृष्टि की। उनका सबसे पहला उपन्यास 'प्रेम-पथ' सन् १६२६ ई० में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास से उन्हें विशेष प्रोत्साहन मिला। फिर तो उन्होंने कथा-साहित्य को ऐसा अपनाया कि वही उनके साहित्यिक जीवन का प्रधान लक्ष्य बन गया।

उन्होंने उपन्यास भी लिखे और कहानियाँ भी लिखीं। अब तक उनके १३ उपन्यास और ११ कहानी-संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। उनके इस कथा-साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उसमें वस्तु-संगठन उनका है, शैली और उद्देश्य पर प्रेमचन्द्र और प्रसाद का सम्मिलित प्रभाव है और पात्र बँगला के अमर कलाकार शरद्‌चन्द्र की कला से प्रभावित हैं।

वाजपेयीजी अपने कथा-साहित्य में सामाजिक प्रवृत्तियों के चित्रकार हैं। उन्होंने वास्तविक जगत् से अपने कथानकों की सामग्री एकत्र की है। अपने जीवन में जितना उतार-चढ़ाव, जितना विद्रोह और जितना संघर्ष उन्होंने पाया है उसका सफल चित्रण किया है। वह वास्तविक जीवन के उपासक हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। जिसका कहना है—'मैं सत्य के सौंदर्य का पुजारी हूँ, मधु का ही नहीं, कटु सत्य का भी। सत्य का ही दर्शन, चिन्तन और मन्थन मैं साहित्य में करना और देखना चाहता हूँ। संस्कारवश प्रकृति से मैं आस्तिक हूँ, पर ईश्वर की उपासना पर मेरी आस्था नहीं है। मैं तो आचार धर्म का कायल हूँ। वाजपेयीजी ने अपने इस सिद्धान्त का अपने कथा-साहित्य में भरपूर पालन किया है। वह मानवता के उपासक हैं। उनके कथा-साहित्य में उनकी मानव-प्रियता भौतिक जीवन से छनकर उतरी है। इसी ने उनके साहित्य को शाश्वत रूप प्रदान दिया है।

मानवतावादी होने के साथ-साथ वाजपेयीजी व्यक्तिवादी भी हैं। व्यक्ति ही उनके कथा-साहित्य की इकाई है। व्यक्ति की उन्नति द्वारा ही वह समाज का कल्याण चाहते हैं। इसलिए उन्होंने व्यक्तियों की समस्याएँ अपनायी हैं और उन्हीं को अपनी कहानियों और अपने उपन्यासों का माध्यम बनाया है। राजनीतिक दाँव-पेंच और आर्थिक झंझटों से उनका कथा-साहित्य कोसों दूर है। वह यौवन और प्रेम के चित्रकार हैं। इसलिए जीवन के मार्मिक स्थलों तक उनकी पहुँच हो सकी है। उन्होंने हृदय अधिक टटोला है, मस्तिष्क कम। संघर्षमय जीवन के सत्य पर पर्दा डालकर उन्होंने न तो किसी आदर्श की स्थापना की है और न किसी 'वाद' का पूर्णतया समर्थन। उन्होंने किसी विशेष सैद्धान्तिक भावधारा से अपने कथा-साहित्य का शृङ्गार नहीं किया है। जीवन में जहाँ दुःख है, प्रेम है, कष्ट है, छटपटाहट और तड़पन है वहीं से वह अपनी सामग्री बटोरते हैं। उसे अपनी कला के साँचे में ढालकर कहानी अथवा उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वह कथा-कला के

मर्मज्ञ हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक और निबंधकार श्री रामनाथ सुमन ने 'यथार्थवाद' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए एक बार 'साहित्य-सन्देश' में लिखा था—वाजपेयीजी ने काफ़ी उपन्यास लिखे हैं। पर यथार्थ-वादी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने में उन्होंने कोई हिस्सा नहीं लिया। उनके प्रेम में यौन-समस्याएँ हैं, किन्तु उनपर एक ओर शरच्चन्द्र का रंग है, दूसरी ओर आदर्शवादी मनोवैज्ञानिक गुत्थियों की छाया है। मानसिक दृष्टि से वह प्रेमचन्द-युग की उपज हैं। वस्तुत: वह एक टेकनीशियन ही अधिक हैं। 'अज्ञेय' की भाँति, जिनकी मनोभूमि यथार्थवाद के अधिक अनुकूल होते हुए भी टेकनीक के रहस्यों, प्रदर्शनों में ही उलझ कर रह जाती हैं।

वाजपेयीजी अपने जीवन के चौवन वर्ष समाप्त कर चुके हैं, पर उनमें अब भी वही रंग हैं, वही उत्साह है, वही शोख़ी है और वही चुलबुलाहट है जो यौवन का प्रतीक और प्रेम का शृङ्गार है। वस्तुत: उनकी यही भावना उनका बल बनकर उनके जीवन की संकटापन्न परिस्थितियों में उनका साथ देती रही है और दे रही है। साठ की मंज़िल तय करते हुए वह अब भी युवक हैं। उनमें अब भी लगन और लेखन-शक्ति है। अपनी इस लगन और इस शक्ति की अपना सब कुछ न्योछावर करके रक्षा की है। वह कवि हैं, निबन्धकार हैं, नाटककार हैं, कथाकार हैं। उनके इन समस्त रूपों में उनका कथाकार रूप ही निखरा और पुष्ट हुआ है। भविष्य में वह हमें क्या देंगे, यह वही जानते हैं, पर वह हमें कुछ-न कुछ देंगे अवश्य—इसका हमें विश्वास है। उनके अभिनन्दन-समारोह पर ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि दीर्घ-जीवी हों और अपने साहित्यिक दान से हिन्दी की अभिवृद्धि करने में समर्थ हों।

"चलते-चलते" में चरित्र-चित्रण

ले०—श्रीरामस्वरूप दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

इस उपन्यास में विस्तृत समाज का सूक्ष्म निरीक्षण एवं विस्तृत चित्रण करने तथा सामाजिक उद्धार का मार्ग निर्देशित करने में पूर्णतया सफल हुए हैं। अपने विशाल जीवन में वाजपेयीजी को जो अनेकानेक अनुभूतियाँ प्राप्त होती रही हैं उनकी सहज स्वाभाविक ढङ्ग में हुई अभिव्यक्तिमाँ उभर-उभर कर पाठक के हृदय को प्रभावित कर लेती हैं। समाज के विशाल पट पर चित्रित चित्र में अनुभूति जनित उद्धरण वाक्य असीम आकाश में जगमग करते हुए तारागणों के समान अपने निश्चित स्थान में टँके हुए से लगते हैं। उपर्युक्त अपूर्णताओं और दोषों से मुक्त होने पर भी यह उपन्यास वाजपेयीजी के कथाकार की सफलता का ही प्रतीक नहीं, वरन् पिछले दस वर्षों में हिन्दी-उपन्यास की प्रगति का स्पष्ट परिचायक है।

सच्चा साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है और उसके साहित्य में हमें समाज की नैतिकता, उत्थान-पतन, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों,

ज्वलन्त समस्याओं, व्यक्तिगत विचारों, मान्यताओं तथा आदर्शों के स्पष्ट दर्शन होते हैं। जो साहित्यकार अपने समय की गति-विधि को आँख खोलकर नहीं देखता, दैनिक परिस्थितियों से परिचित नहीं होता तथा उन्हें यथावत् चित्रित करके जन साधारण का ध्यान आकर्षित करने की क्षमता नहीं रखता उसे युग-साहित्यकार कदापि नहीं कहा जा सकता। युग-साहित्यकार के उपर्युक्त गुणों से जो हीन है वह या तो अपने समय से पिछड़ा हुआ होगा और बीती बातों का ही राग अलापता रहेगा, अथवा ऐसा काल्पनिक चित्र उपस्थित करेगा जो यथार्थ से दूर होने के कारण समाज के लिए निरर्थक होगा।

'चलते-चलते' पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी का नया उपन्यास है। आत्म-कथा के रूप में लिखा हुआ सवा पाँच सौ पृष्ठ का यह उपन्यास आज के समाज का यथार्थ चित्रण करने के उद्देश्य से रचित प्रतीत होता है।

सामयिक चित्र प्रस्तुत करना साधारणतया जितना सरल समझा जाता है वास्तव में उतना ही कठिन होता है। कठिन इसलिए कि अनेक अनावश्यक ब्यौरों में से केवल कथा-शृङ्खला में सहायक तथा पात्रों से सम्बन्धित थोड़े से आवश्यक वर्णनों का सीमित सहारा लेकर उपन्यासकार को आगे बढ़ना होता है और यथास्थान सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों का चित्रण निष्पक्ष तथा निडर होकर करना होता है। किसी भी कार्य की दुरूहता कर्त्ता की अनुकूल कार्यशैली तथा पटुता से बहुत कुछ सरल हो जाती है। उपन्यास-कार जब अपने आप को केवल द्रष्टा के रूप में रखता है तब उसका व्यक्तित्व उसके अनेक पात्रों में विभक्त हो जाता है और उसकी व्यक्तिगत विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता बहुत कुछ सीमित रह जाती है। आत्मकथा की शैली चुनने तथा चलते-चलते विषय के रूप में जीवन-यात्रा का व्यापक क्षेत्र लेने के कारण वाजपेयीजी को खुलकर खेलने के पर्याप्त अवसर मिले हैं; आज की विचार-धाराओं तथा परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण करके आत्माभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता का लाभ इन्हें प्राप्त हुआ है।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र राजेन्द्र है। आत्मकथा के रूप में पृष्ठ ३५६ पर उसका कथन है—"हमारे समक्ष एक ऐसा अनन्त पथ है जिस पर हम निरन्तर चल रहे हैं। जैसे इस यात्रा का अन्त नहीं है, वैसे ही इस पथ का भी अन्त नहीं है। कभी-कभी कुछ ऐसा होता है कि हम जहाँ से चले थे, घूम फिरकर वहीं आ पहुँचते हैं। कभी-कभी जब हम सचमुच बहुत चल चुकते हैं,

तभी ऐसा अवसर, संयोग और दुर्योग सामने उपस्थित हो जाता है कि हम सम्भ्रम में पड़कर एक ऐसी रहस्यपूर्ण इन्द्रजाल में जा पड़ते हैं कि हमारी सम्पूर्ण यात्रा विफल, सम्पूर्ण उद्योग, परिश्रम और सामयिक सफलताएँ विफल हो जाती हैं और एक पराभूत प्राण लेकर, हम निखिल विश्व के इस अविकल कोलाहल में, अपने आप में सीमित एक अकेले व्यक्तिमात्र रह जाते हैं। मानों रास्ते से दूर खड़े हुए हम निरन्तर यही खड़े-खड़े देखते रह जाते हैं कि वे भी दिन थे, जब हम इस पथ पर चल रहे थे।" इन पंक्तियों में इस उपन्यास को विषय का बहुत कुछ आभास मिल जाता है। कहना चाहिए कि इस उपन्यास के कथाकार का विचारसूत्र यही हैं।

राजेन्द्र एक सुशिक्षित, सम्पत्तिशाली, आदर्शपरायण एवं मातृ-भक्त युवक है। "मैं उसे मनुष्य नहीं श्वान मानता हूँ जो माँ का एक आँसू भी देख-कर चुप रहता है। मैं प्राय: सोचा करता हूँ कि अगर माँ की आँखों में आँसू है, तो उसका पुत्र जीवित क्यों है? (पृष्ठ २३०)—यह भाव तथा माँ से इस तरह आशीर्वाद माँगना—चाहे मेरा प्राण चला जाय, पर तेरे आदर्श-रक्षा की मेरी कर्तव्यनिष्ठा को कभी आँच न आये" (पृष्ठ २०६)—राजेन्द्र की मातृ-भक्ति एवं आदर्शपरायणता के परिचायक हैं।

युवती विधवाओं की दशा से उसे विशेष सहानुभूति है—"जैसे विधुर पक्ष में एक स्त्री के मर जाने और तुरन्त उसकी जगह दूसरी आ जाने पर उसकी (समाज की) मन्थर गति में अन्तर नहीं आता, वैसे ही विधवा के पक्ष में एक पति के स्थान पर दूसरा आजाने पर उसकी नानी नहीं मर जानी चाहिये (पृ० २०८)।

लाली के विधवा हो जाने के बाद ही सोनेलाल का दूसरा विवाह करना राजेन्द्र को अनुचित प्रतीत होता है। इसीलिए वह अनुभव करता है कि "शरीर की दवा न करना ही कोई बड़ी चीज़ नहीं है, मन भी कोई चीज़ होती है।" पर "विधवा नारी के साथ सहानुभूति का समाज के आगे जो अर्थ होता है, वैसा अर्थ कोई भी न लगाए; इसलिए उसने अपने आप को मूक बना रखा है; क्योंकि वह मर्यादा के हाथ बिक चुका है। सौंदर्य्य के समक्ष वह भावुक हो जाता है। इसीलिए लाली का तापमान लेने का भी वह साहस नहीं कर पाता। वह सोचता है—"शरीर का तापमान देखते-देखते मैं कहीं शरीर के धर्म का तापमान देखने में न उलझ जाऊँ। तन का क्लेश देखते-

निकलना रोक दे। कहने को चाहे एक शब्द भी न कहे, अधर भर खोल दे। (पृष्ठ ३६)

उसे स्वय आश्चर्य होता है कि उनके साथ वह इतना उच्छृंखल क्यों, उसके मन प्राण इतने उतरंग क्यों ? उसकी स्वच्छन्दता को जो इतना बल मिलता है उसका मूल कारण क्या है ? (पृष्ठ ३५)

आगा-पीछा सोचने-विचारने और बाहर से गंभीरता प्रदर्शित करने पर भी उसका हृदय छोटी भाभी के समक्ष पराभूत है और अस्तित्व प्रतिदिन क्षीण-हीन सा होता जा रहा है। पर उसका हृदय केवल प्रेम के ताने-बाने बुनने में ही लगा रहता हो, समाज की स्थितियों और उसकी समस्याओं की ओर उसका कोई ध्यान न हो, ऐसा भी नहीं है। वह सभी कुछ देखता और समझता है, उसकी भावनाओं में उचित प्रतिक्रिया भी दृष्टिगोचर होती है। "पर जब मैं सौन्दर्य के आकर्षण का अनुभव करता हूँ तब यह भूल नहीं जाता कि संसार में कितनी कुरूपता है।" आज की सभ्यता के केन्द्रस्थल होटल-डी-लक्स के ठीक सामने स्वच्छ राजपथ पर एक नरकंकाल को देखकर वह सोचने लगता है "आज के जगत में ऐसे मनुष्य का अस्तित्व क्यों है ? इसका निर्माता कौन है ? जिन परस्थितियों ने मनुष्य को इस परिणाम पर पहुँचाया है, उनका मूल आधार क्या है और उस आधार के प्रति उत्तरदायी कौन है ?" इन विषमता के प्रति जिन्हें ध्यान देना चाहिए उनके प्रति वह व्यंग्य मुखरित हो उठता है। "लेकिन किसे इस ओर देखने का अवकाश है ! कार के भीतर बैठी हुई परम शुभ्र गांधी टोपियाँ इसे देखेंगी कि एरोप्लेन के अन्दर बननेवाले कार्य-क्रमों के बीच विंशत वर्षीया होस्टेसेज़ के नयन-कटोरों पर जा पड़ने वाली आँखें !" (पृष्ठ १६)

वह देखता है कि पद नियुक्ति का वचन दे चुकने पर भी जब सजातीय उम्मेदवार की सिफ़ारिश के कारण सत्य की प्रतिष्ठा भुलायी जाती है तो एम० ए० में फर्स्टक्लास तथा विश्व-विद्यालय भर में द्वितीय आने वाले मनोज को आत्म-हत्या करनी पड़ती है !" जातीय पक्षापात, घूसखोरी और स्वार्थों के बटवारे ! हमारे राजनीतिक देवता नित्य उसी प्रकार के अपराध करते हैं जिनको मिटा देने के लिए कारागार वास तक का दंड भोगने को वे कभी नहीं हिचके थे। सच्ची आलोचना से कुछ भी सीखने के बजाय वे चीख-चीख उठते हैं ! यह देखकर उसे दुख होता है। रिक्शेवालों की श्रेणी के व्यक्तियों से

देखते मन का दुख देखकर कहीं मैं रो न पड़ूँ।" उसमें वे सभी दुर्बलताएँ हैं, सभी मनोविकार हैं जो सौंदर्य्य के प्रति आसक्त होने वाले भावुक हृदय युवक में हो सकते हैं। वह देखता है कि सौंदर्य्य की सजीव प्रतिमा लाली जो सत्रह-अठारह वर्ष की है और जिसका यौवन गदराया हुआ है तथा वर्ण मक्खन-सा है उसकी ओर देखती हुई ठिठक गई है। वह अनुभव करता है "क्या यह सब मेरे लिए निमन्त्रण नहीं है?" परन्तु आदर्शवादी होने के कारण अपनी इस भावना पर उसे दुख होता है। "तत्काल किसी ने आत्मा पर एक ऐसा ज़ोर का धक्का दे दिया कि मैं कल्पना जगत् से गिरकर पुनः धरती पर आ गया। मेरी कुत्सा स्वयं मुझी को जलाने लगी। विश्व का सारा रूप, यौवन की सारी गरिमा, सदा जो तुझी को निमन्त्रण दिया करती है, यह तेरी यौन-अतृप्ति का संतुलन-हीन प्रमाद है। और इस प्रकार का प्रमाद जिस व्यक्ति के साथ संयुक्त है वह मनुष्य नहीं, कपोत है...पुरुष नहीं जन्तु है।" (पृष्ठ ८३)

इसी प्रकार वह हीरा मानिक की ओर भी आकर्षित होता है और वैशाली भी उसकी हृदय-वीणा को झंकृत कर देती है। पर छोटी भाभी ही एक-मात्र ऐसी हैं जिनसे प्रथम मिलन के पश्चात् ही उसकी अनुभूति है। "वे चली जा रही थीं और मैं एक साथ शिष्टता, आत्मीयता और व्यवस्था के प्रति उनकी उचित सतर्कता का अनुभव करके, चकित-विस्मित और मुग्ध दृष्टि से उनकी स्फूर्ति देख रहा था, और देख रहा था उसमें विकसित प्रस्फुटित उनके रूप-लावण्य का तरंगित। वैभव एक अमित आभा जैसे मेरे भीतर-बाहर फैल गयी। सारा वातावरण मेरे लिए अत्यन्त स्निग्ध और मनोरम हो उठा।" (पृष्ठ १७)

छोटी भाभी को लेकर उसका हृदय कवित्व से पूर्ण हो जाता है। "एक बार मेरे मन में आया, वे मेरे पीछे चली आयेंगी, उन्मद-मन्द्र झंझावात-सी, मिलन-व्याकुल यामिनीसी, दिवाकर के पीछे हाँफती हँसती, शैल-शृंग पर अञ्चल पसारती-फहराती सुरभित धूप-सी, महासागर के उज्वल-उच्छल ज्वार-सी। एक बार सोचा, ये मुझे जाने से रोकेंगी, जैसे आषाढ मास की प्रतिप्रदा निदाघ के समक्ष आकर उसका पथ रोक दे; कुछ भी न कहे, तो भी जान पड़े, हाथ फैलाकर कह रही है—"देखती हूँ कैसे आगे बढ़ते हो!" जैसे गुलाब की खिलती हुई कली पास उड़ते गुन-गुन गाते हुए भ्रमर का

निकलना रोक दे। कहने को चाहे एक शब्द भी न कहे, अधर भर खोल दे। (पृष्ठ ३६)

उसे स्वय आश्चर्य होता है कि उनके साथ वह इतना उच्छृंखल क्यों, उसके मन प्राण इतने उतरंग क्यों ? उसकी स्वच्छन्दता को जो इतना बल मिलता है उसका मूल कारण क्या है ? (पृष्ठ ३५)

आगा-पीछा सोचने-विचारने और बाहर से गंभीरता प्रदर्शित करने पर भी उसका हृदय छोटी भाभी के समक्ष पराभूत है और अस्तित्व प्रतिदिन क्षीण-हीन सा होता जा रहा है। पर उसका हृदय केवल प्रेम के ताने-बाने बुनने में ही लगा रहता हो, समाज की स्थितियों और उसकी समस्याओं की ओर उसका कोई ध्यान न हो, ऐसा भी नहीं है। वह सभी कुछ देखता और समझता है, उसकी भावनाओं में उचित प्रतिक्रिया भी दृष्टिगोचर होती है। "पर जब मैं सौन्दर्य के आकर्षण का अनुभव करता हूँ तब यह भूल नहीं जाता कि संसार में कितनी कुरूपता है।" आज की सभ्यता के केन्द्रस्थल होटल-डी-लक्स के ठीक सामने स्वच्छ राजपथ पर एक नरकंकाल को देखकर वह सोचने लगता है "आज के जगत में ऐसे मनुष्य का अस्तित्व क्यों है ? इसका निर्माता कौन है ? जिन परस्थितियों ने मनुष्य को इस परिणाम पर पहुँचाया है, उनका मूल आधार क्या है और उस आधार के प्रति उत्तरदायी कौन है ?" इन विषमता के प्रति जिन्हें ध्यान देना चाहिए उनके प्रति वह व्यंग्य मुखरित हो उठता है। "लेकिन किसे इस ओर देखने का अवकाश है ! कार के भीतर बैठी हुई परम शुभ्र गांधी टोपियाँ इसे देखेंगी कि एरोप्लेन के अन्दर बननेवाले कार्य-क्रमों के बीच विंशत वर्षीया होस्टेसेज़ के नयन-कटोरों पर जा पड़ने वाली आँखें !" (पृष्ठ १६)

वह देखता है कि पद नियुक्ति का वचन दे चुकने पर भी जब सजातीय उम्मेदवार की सिफ़ारिश के कारण सत्य की प्रतिष्ठा भुलायी जाती है तो एम० ए० में फर्स्टक्लास तथा विश्व-विद्यालय भर में द्वितीय आने वाले मनोज को आत्म-हत्या करनी पड़ती है !" जातीय पक्षापात, घूसखोरी और स्वार्थों के बटवारे ! हमारे राजनीतिक देवता नित्य उसी प्रकार के अपराध करते हैं जिनको मिटा देने के लिए कारागार वास तक का दंड भोगने को वे कभी नहीं हिचके थे। सच्ची आलोचना से कुछ भी सीखने के बजाय वे चीख-चीख उठते हैं ! यह देखकर उसे दुख होता है। रिक्शेवालों की श्रेणी के व्यक्तियों से

देखते मन का दुख देखकर कहीं मैं रो न पड़ूँ।" उसमें वे सभी दुर्बलताएँ हैं, सभी मनोविकार हैं जो सौंदर्य्य के प्रति आसक्त होने वाले भावुक हृदय युवक में हो सकते हैं। वह देखता है कि सौंदर्य्य की सजीव प्रतिमा लाली जो सत्रह-अठारह वर्ष की है और जिसका यौवन गदराया हुआ है तथा वर्ण मक्खन-सा है उसकी ओर देखती हुई ठिठक गई है। वह अनुभव करता है "क्या यह सब मेरे लिए निमन्त्रण नहीं है?" परन्तु आदर्शवादी होने के कारण अपनी इस भावना पर उसे दुख होता है। "तत्काल किसी ने आत्मा पर एक ऐसा ज़ोर का धक्का दे दिया कि मैं कल्पना जगत् से गिरकर पुनः धरती पर आ गया। मेरी कुत्सा स्वयं मुझी को जलाने लगी। विश्व का सारा रूप, यौवन की सारी गरिमा, सदा जो तुझी को निमन्त्रण दिया करती है, यह तेरी यौन-अतृप्ति का संतुलन-हीन प्रमाद है। और इस प्रकार का प्रमाद जिस व्यक्ति के साथ संयुक्त है वह मनुष्य नहीं, कपोत है...पुरुष नहीं जन्तु है।" (पृष्ठ ८३)

इसी प्रकार वह हीरा मानिक की ओर भी आकर्षित होता है और वैशाली भी उसकी हृदय-वीणा को झंकृत कर देती है। पर छोटी भाभी ही एक-मात्र ऐसी हैं जिनसे प्रथम मिलन के पश्चात् ही उसकी अनुभूति है। "वे चली जा रही थीं और मैं एक साथ शिष्टता, आत्मीयता और व्यवस्था के प्रति उनकी उचित सतर्कता का अनुभव करके, चकित-विस्मित और मुग्ध दृष्टि से उनकी स्फूर्ति देख रहा था, और देख रहा था उसमें विकसित प्रस्फुटित उनके रूप-लावण्य का तरंगित। वैभव एक अमित आभा जैसे मेरे भीतर-बाहर फैल गयी। सारा वातावरण मेरे लिए अत्यन्त स्निग्ध और मनोरम हो उठा।" (पृष्ठ १७)

छोटी भाभी को लेकर उसका हृदय कवित्व से पूर्ण हो जाता है। "एक बार मेरे मन में आया, वे मेरे पीछे चली आयेंगी, उन्मद-मन्द्र झंझावात-सी, मिलन-व्याकुल यामिनीसी, दिवाकर के पीछे हाँफती हँसती, शैल-शृंग पर अञ्चल पसारती-फहराती सुरभित धूप-सी, महासागर के उज्वल-उच्छल ज्वार-सी। एक बार सोचा, ये मुझे जाने से रोकेंगी, जैसे आषाढ मास की प्रतिप्रदा निदाघ के समक्ष आकर उसका पथ रोक दे; कुछ भी न कहे, तो भी जान पड़े, हाथ फैलाकर कह रही है—"देखती हूँ कैसे आगे बढ़ते हो!" जैसे गुलाब की खिलती हुई कली पास उड़ते गुन-गुन गाते हुए भ्रमर का

निकलना रोक दे। कहने को चाहे एक शब्द भी न कहे, अधर भर खोल दे। (पृष्ठ ३६)

उसे स्वय आश्चर्य होता है कि उनके साथ वह इतना उच्छृंखल क्यों, उसके मन प्राण इतने उतरंग क्यों ? उसकी स्वच्छन्दता को जो इतना बल मिलता है उसका मूल कारण क्या है ? (पृष्ठ ३५)

आगा-पीछा सोचने-विचारने और बाहर से गंभीरता प्रदर्शित करने पर भी उसका हृदय छोटी भाभी के समक्ष पराभूत है और अस्तित्व प्रतिदिन क्षीण-हीन सा होता जा रहा है। पर उसका हृदय केवल प्रेम के ताने-बाने बुनने में ही लगा रहता हो, समाज की स्थितियों और उसकी समस्याओं की ओर उसका कोई ध्यान न हो, ऐसा भी नहीं है। वह सभी कुछ देखता और समझता है, उसकी भावनाओं में उचित प्रतिक्रिया भी दृष्टिगोचर होती है। "पर जब मैं सौन्दर्य के आकर्षण का अनुभव करता हूँ तब यह भूल नहीं जाता कि संसार में कितनी कुरूपता है।" आज की सभ्यता के केन्द्रस्थल होटल-डी-लक्स के ठीक सामने स्वच्छ राजपथ पर एक नरकंकाल को देखकर वह सोचने लगता है "आज के जगत में ऐसे मनुष्य का अस्तित्व क्यों है ? इसका निर्माता कौन है ? जिन परस्थितियों ने मनुष्य को इस परिणाम पर पहुँचाया है, उनका मूल आधार क्या है और उस आधार के प्रति उत्तर-दायी कौन है ?" इन विषमता के प्रति जिन्हें ध्यान देना चाहिए उनके प्रति वह व्यंग्य मुखरित हो उठता है। "लेकिन किसे इस ओर देखने का अवकाश है ! कार के भीतर बैठी हुई परम शुभ्र गांधी टोपियाँ इसे देखेंगी कि एरोप्लेन के अन्दर बननेवाले कार्य-क्रमों के बीच विंशत वर्षीया होस्टेसेज़ के नयन-कटोरों पर जा पड़ने वाली आँखें !" (पृष्ठ १६)

वह देखता है कि पद नियुक्ति का वचन दे चुकने पर भी जब सजातीय उम्मेदवार की सिफ़ारिश के कारण सत्य की प्रतिष्ठा भुलायी जाती है तो एम० ए० में फर्स्टक्लास तथा विश्व-विद्यालय भर में द्वितीय आने वाले मनोज को आत्म-हत्या करनी पड़ती है !" जातीय पक्षापात, घूसखोरी और स्वार्थों के बटवारे ! हमारे राजनीतिक देवता नित्य उसी प्रकार के अपराध करते हैं जिनको मिटा देने के लिए कारागार वास तक का दंड भोगने को वे कभी नहीं हिचके थे। सच्ची आलोचना से कुछ भी सीखने के बजाय वे चीख-चीख उठते हैं ! यह देखकर उसे दुख होता है। रिक्शेवालों की श्रेणी के व्यक्तियों से

उसे सहानुभूति है। उनकी विवशता वह समझता है "घर में चार खानेवाले हों और उनका भार एक आदमी पर हो, उस आदमी को सरकार और समाज ने इसी योग्य बना रखा हो कि वह कहीं कोई इज्ज़त की नौकरी न पा सके और व्यवसाय के लिए उसके पास पूँजी न हो, तो फिर वह जाय कहाँ ? (पृष्ठ १००)

इक्केवाले से उसका कथन "आदमी होकर किसी को दूसरे आदमी से अर्ज़ करनी पड़े, यह उसकी आदमीयत पर सबसे बड़ा धब्बा है।" (पृष्ठ १२४) यह बताता है कि वह मानवता का पोषक है, पूँजी का अन्तर मानव-मानव में अन्तर उत्पन्न करे यह उसे स्वीकार नहीं है। व्यक्ति होकर भी वह समाज है। अपना उत्तरदायित्व वह भली प्रकार समझता है और उसका निर्वाह करता है। वह अनुभव करता है—"आदर्श के साथ ही तो मैं मैं हूँ, आदर्श के बिना मैं—मेरा अस्तित्व—जड़ है, निर्जीव है।" (पृष्ठ ११४)

अपना मत प्रकाशित करने में वह झूठ का आवरण नहीं चाहता। जो कुछ भी उसे कहना है स्पष्ट कह देता है। सौन्दर्य उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता अवश्य है पर मन से आकर्षित होने पर भी बाहर वह अपना संतुलन नहीं खोता। वह जानता है कि अगर हम दूसरों की बहू-बेटियों की नैतिकता का ध्यान न रक्खेंगे, तो एक दिन हम स्वयं अपने मुँह पर कालिख लगवा लेंगे। (पृ० १८६)

वह विशाल हृदय है। किसी का काम कर देने के बाद इधर-उधर कहते फिरना उसे पसंद नहीं है। पतिप्राणा माँ के प्रति उसके पिता का जो व्यवहार रहा है उससे वह अत्यन्त क्षुब्ध है। मैं शिष्टाचार, विनम्रता और सभ्यता के उन नियन्त्रणों पर विश्वास नहीं करता जो जीवन की मानवी दुर्बलताओं पर पर्दा डालकर उसके महाप्राण सत्य का गला ही घोट लेना चाहते हैं। (पृ० २४०)

वह उस श्रद्धा पर विश्वास नहीं करता, जो प्रदर्शन का मुँह लगाकर बिल्ली की तरह चुपके से पास आती और वास्तविकता को चूहे की तरह मुँह में दबाकर भाग खड़ी होती है। (पृ० २३४)

अन्याय और कलुष के साथ उसका कोई सहयोग नहीं है। सम्हल-सम्हलकर क़दम रखना वह कठोर संयम की अमानवी रुक्षता मानता है; पर

सामाजिक ग़लती से बचने के लिए वह कठोर संयमी भी बनता ही है। अपने नैतिक विधान के अनुसार वह उपेन्द्र भैया के समस्त अधिकार देने को तैयार है। वह कर्त्तव्य-परायण है। कर्त्तव्य दुर्घटना की भाँति समय-कुसमय का विचार नहीं करता। (पृ० ४५२)

वह चाहता है कि जमना जैसी विक्षिप्त स्थिति में मिलनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका मन-प्राण व्याकुल हो सके। वह एक सहृदय सौंदर्योपासक पर आदर्श-परायण युवक है। उसमें मानव के श्रेष्ठ गुण हैं तो साथ ही दुर्गुणों का भी अभाव नहीं है। वह न देवता है न राक्षस।

छोटी भाभी बंशी भैया की दूसरी पत्नी है। पहली पत्नी ने यह विवाह स्वयं कराया है, संतान की आशा न होने के कारण। छोटी भाभी जैसी सुन्दर है वैसी ही सहृदय एवं कर्त्तव्यनिष्ठ भी। वह त्याग, सेवा और अनुराग की गुणत्रयी हैं। काम लेना खूब जानती हैं। आते ही नन्द के विवाह का कार्य-भार संभाल लेती है और प्रथम मिलन के समय से ही आज्ञा और संकेत के रूप में राजेन्द्र पर शासन करने लगती हैं। राजेन्द्र के अहं को चोट लगती है, वह छटपटाता है और उनकी चेष्टाओं को अनधिकारपूर्ण समझता है। पर वे उस पर छाती चली जाती हैं। धीरे-धीरे दोनों के हृदय प्रेम की अटूट डोर में बँधते चले जाते हैं। अपने गुण, प्रशंसा और बड़प्पन की चर्चा सुनने से यह दूर भागती हैं। यह जानते हुए भी कि बाँध पर मिले भिखमंगे बच्चे का बाप भीख की कमाई खाता है, बच्चे के प्रति उनका हृदय दयार्द्र हो उठता है। "यह कौनसा तर्क है, जिनसे कभी हम जीवन भर का नाता नहीं निबाह सकते, अवसर आने पर उनसे घड़ी-दो-घड़ी या क्षण भर का नाता भी न निबाहें।" (पृ० ११८)

इस कथन में इनके स्वभाव का अच्छा परिचय मिल जाता है। इसी प्रकार डा० सिनहा के यहाँ मिली मृत सूरज की विक्षिप्त मज़दूरनी माँ का अपने पति से कथन "सूरज शाम को शायद आ ही जाय, तब मैं तुमको वहाँ खोजती फिरूँगी" उनका हृदय दहला देता है। तब उसके इलाज के लिए रुपये देकर ही इन्हें सन्तोष मिलता है। दौरा उन्हें प्राय: आ जाता है, जीवन की आशा उन्होंने छोड़ दी है, उनकी प्रवृत्ति विसर्जन की ओर हो गई है, विलंब करना उचित न समझकर अपनी निज की सम्पत्ति पचास हज़ार का

ड्राफ्ट अपने परम प्रिय राजेन्द्र को आत्म-दान के रूप में दे देती हैं परन्तु संयोग की बात कि बंशी भैया उन्हें राजेन्द्र को सौंप कर मर जाते हैं।

बड़ी भाभी कपटाचरण में अत्यन्त व्यवहार-कुशल हैं। अवसर के अनुसार बातें करना उन्हें खूब आता है। रामलाल से उनका विवाह से पूर्व का ही प्रेम रहा है। बंशी भैया को उनपर संदेह रहा है कि रामलाल के साथ खुलकर खेलने और उनका ध्यान हटाने के लिए ही दूसरा विवाह कराया गया है। यह छोटी भाभी से तभी तक स्नेह का प्रदर्शन करती रहीं जब तक स्वयं गर्भवती न हो गईं। छोटी भाभी पर विश्वास न कर पाने के दो मास पूर्व से ही मासिक बंद हो जाने पर भी तीन दिन तक वह विधिवत अभिनय करती रहीं। उनकी संस्कारशीलता उच्च नहीं है।

बंशी भैया जौहरी हैं, मौजी हैं और अपनी मौज का सामान सर्वत्र जुटा लेते हैं। विधवा लाली पर हाथ साफ करने में वे नहीं चूकते। वे अत्यन्त व्यावहारिक हैं। धनिकों के सभी गुण और दुर्गुण उनमें पर्याप्त मात्रा में हैं। दूसरी पत्नी के प्रति जो अन्याय हुआ है उसे वे भली प्रकार अनुभव करते हैं और उसके प्रति अपने व्यवहार में वे पूर्णतया उदार हैं।

लाली युवा विधवा है, राजेन्द्र उसकी ओर आकृष्ट होता है, उसकी निरावरण यौवन सम्पदा पर दृष्टि पड़ जाने पर उसका बुरा हाल हो जाता है। उससे बातें करने के लिए वह उत्सुक हो जाता है पर आदर्श से पतन का भय बाधक सिद्ध होता है। जिस देह-धर्म का निर्वाह राजेन्द्र के साथ नहीं होता बंशी भैया उसे थोड़ा-सा अवसर पाते ही सम्पन्न कर डालते हैं। वह अनुभव करती है कि राजेन्द्र से वह सभी कुछ कह सकती है जो अन्य किसी से नहीं कह सकती। राजेन्द्र की उदासीनता देखकर वह कटाक्ष भी कर बैठती है "मेरी चोटें देखता कौन है?" पढ़कर अध्यापन कार्य करके जीवन बिता डालने का उसका उपक्रम अधूरा ही रह जाता है। संबलहीन युवा विधवा सचमुच ही समाज के हाथों का खिलौना है!

चाची वार्तालाप में अत्यन्त चतुर हैं पर उनका वास्तविक रूप राजेन्द्र से छिपा नहीं रह पाता। अपनी विधवा पुत्री लाली का इलाज वे नहीं चाहतीं, उसका जीवन नहीं मरण चाहती हैं और दुनियाँ की आँखों में धूल झोंककर पुण्य लाभ करना चाहती हैं। बीमारी के व्यय के लिए लाली के जेठ का भेजा हुआ १००) का बीमा राजेन्द्र से छिपाकर ले लिया। राजेन्द्र की माँ

की सरलता एवं सहृदता का वे अनुचित लाभ उठाती हैं। बड़ियाँ लगाने वाला किशोरी तक उनकी प्रकृति से भली प्रकार परिचित हैं। ठगविद्या से रुपये हड़पने वाली यह नारी छिपकली से किसी भी भाँति कम नहीं है। लाला साँवरे से भी इनका सम्बन्ध अनुचित प्रतीत होता है। तीर्थ-यात्रा का बहाना करके गुप्त रूप से वे राजेन्द्र के पिता पाण्डेयजी के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करती हैं और उसी स्थिति में राजेन्द्र से मिलन होने पर राजेन्द्र से अपने आप को छोटी माँ कहलाने में इनको तनिक भी लज्जा नहीं आती

राजेन्द्र की माँ पुराने आचार-विचारों की हैं। समय से पूर्व ही उनके बाल सफेद हो गए हैं। पुनर्जीवित होने पर पाण्डेयजी घर लौटकर उनके साथ दाम्पत्यजीवन व्यतीत करने की अपेक्षा लाली की माँ के साथ रहना पसन्द करते हैं। पर वे यथार्थ माँ हैं, वे रसोई में उस क्षण की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठी रहती हैं जब बेटे की आँख खुले और भूख का अनुभव करके वह स्वयं दौड़ा चला आये। ये इतनी सहृदय हैं कि लाली का बिना इलाज के मर जाना उन्हें सह्य नहीं हैं, वे स्वयं व्यय करने को प्रस्तुत हो जाती हैं। भाभी और लाली को लेकर समाज कहीं कुछ कहने न लगे, क्योंकि सब लोग मेरी तरह तेरी माँ तो हैं नहीं, जो भरी गंगा में पैठकर यह क़सम उठा जायंगे कि मेरा राजेन्द्र भीष्मपितामह का अवतार है! (पृ० ३३०)

यह शंकाकुल भय होने पर भी उन्होंने राजेन्द्र के विवाह की चर्चा क्यों नहीं चलाई इसका कोई कारण कथाकार ने नहीं दिया।

सूदखोर लाला सांवरे रंगीन तबियत के व्यक्ति हैं। वे सर्वभक्षी, बातें करने में बहुत तेज़, तर्कशील परन्तु व्यावहारिक हैं। जीवन विषयक उनका ज्ञान पर्याप्त है। पृष्ट १४८ पर उनके सत्य की व्याख्या में अनुभूति बोलती है। दहेज़ प्रथा पर उनका व्यंग्य अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। वे स्पष्टवादी हैं। कहते हैं जो लोग सिर्फ बातचीत करके अपने काम शैतान को थोड़ा बहुत जल-पान कराते रहते हैं, वे समाज के उन बहुतेरे नेताओं और नुमाइन्दों से कहीं अधिक पाक हैं जो दोस्तों के घरों में ठहरकर, उनकी बहू-बेटियों की लाज लूटने में कभी नहीं चूकते! (पृ० १६२)

बड़े आदमियों के लिए उनके हृदय में कोई स्थान नहीं है। उनका विचार है कि बड़े आदमी अपने साधनों के द्वारा, रुपयों के द्वारा, क़ानून, शिकायत

ग्रौर तहरीक का मुँह बन्द करके पाक दामन को गन्दा करने में सफल होते हैं। उनकी मानवता "इन्सानियत के हर तकाज़े" को तहज़ीब का बुनियादी पत्थर मानती है। नैतिकता के पक्ष में वे कलिका से कहते हैं—"ग्रापको कम-से-कम इतना तो जान ही लेना चाहिए कि जब कभी ग्राप नैतिक स्तर से एक सीढ़ी उतरेंगी, तब उस पाप की रक्षा करने में ग्रापको कम-से-कम दस बार झुकना पड़ेगा।" (पृ० १८७)

ग्रपने दामाद राय चन्द्रनाथ से वे ग्रसन्तुष्ट हैं ग्रौर पुत्री जमना के पतन से इतने क्षुब्ध हो जाते हैं कि उसकी हत्या करने से ग्रपने ग्राप को बड़ी कठिनता से रोक पाते है। इस उपन्यास में इनका विशेष महत्व है। लगभग सभी पात्रों से किसी-न-किसी रूप से इनका सम्बन्ध है, पर ग्रनेक पात्रों से इनका सम्बन्ध स्पष्ट नहीं हो पाता। पर बड़ी भाभी की ग्राँधी तूफ़ान भरी चिट्ठी पाकर, इस घरेलू मामले में, राजेन्द्र ग्रौर उसकी माँ दोनों ही, लाला जी की राय लेना क्यों ग्रावश्यक समझते हैं यह समझ में नहीं ग्राता।

मुरलीमनोहर राजहंस का नाम रखकर समाज के समक्ष प्रकट होते हैं। फुसलाना, धोखा देना तथा परिस्थिति के ग्रनुसार ग्रपने ग्राप को बना लेना उनके बाएँ हाथ का खेल है। वे पूरे चार-सौ-बीस हैं। कोई काम उनसे बचा नहीं। ग्रर्चना के इन शब्दों पर इन के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। चिकनी-चुपड़ी बातें बना-बना कर फुसलाने ग्रौर मौके पर दस-पाँच रुपये खर्च कर डालने मात्र से ग्रगर दसवें-पन्द्रहवें दिन कोई मछली जाल में ग्रा जाती हो, तो स्त्री के साथ समझौता करना मूर्खता ही न समझी जायगी! (पृ० १८५)

ग्राज की दुनियाँ में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो बहन कहकर भी नारी को पाशविक दृष्टि से ही देखते हैं ग्रौर ग्रपनी वासना की तृप्ति में ग्रागा-पीछा नहीं सोचते। ऐसे लम्पट ग्रौर ग्रवारा ग्राज घर-घर पैदा हो गये हैं। ऐसे ही व्यक्ति समाज को पतन के गर्त की ग्रोर तीव्रता से ले जा रहे हैं। इनकी मृत्यु—इनके ग्रनाचार—(शराब पीकर ट्रेन में जमना पर बलात्कार का प्रयत्न) के ग्रनुकूल हुई है।

ग्रर्चना मुरलीबाबू की पत्नी बन चुकी है; पर उनके चाल-चलन से क्षुब्ध है। वह पापी से सम्बन्ध नहीं चाहती। पातिव्रत-धर्म उसे मान्य है पर केवल उस प्राणी के लिए जो उसके प्रति सच्चा ग्रौर कर्त्तव्यनिष्ठ हो। उन

पर उसे विश्वास नहीं रहा फिर भी उसका नारी हृदय सहानुभूति से पूर्ण है। अवसर आने पर वह जुर्माने का १००) जमा कर देती है और लाला जी के आश्चर्यचकित होने पर कह देती है कि उसकी लड़ाई तो सिद्धांतों की है।

रामलाल अपनी बुआ विमला (बड़ी भाभी) का सगा भतीजा है और साथ ही प्रेमी भी। विमला के विवाहित हो चुकने पर भी, फूफा बंशी भैया की अनुपस्थिति में वह प्राय: मिलता रहता है। वह उस वर्ग का प्रतिनिधि है जो अपने आप को गांधीवादी कहकर भी पिस्तौल बांधकर घूमते हैं, डकैती, जालसाज़ी और घूसखोरी जिनके लिए साधारण बातें हैं और जो पकड़े जाने पर भी साफ़ छूट जाते हैं।

गौरी बाबू सच्चे कांग्रेसी हैं। रामलाल की मक्कारी तथा अराष्ट्रीयता इन्हें तनिक भी पसन्द नहीं। उन्हें वचन, विश्वास और नाते-रिश्ते का लिहाज़ भी उतना प्यारा नहीं, जितना राष्ट्रधर्म। अवसर पाकर उल्लू सीधा करना उन्हें अप्रिय है। वे मानते हैं कि "त्याग और तपस्या के बदले में अधिकार और अधिकारों का मद भंग करने वाली जाति वीर नहीं वणिक होती है, त्याग की बारम्बार दुहाई देने वाले प्राय: वही लोग हैं, जो पद और अधिकार के भूखे हैं और देश भक्ति को भी एक पेशा बनाए बैठे हैं।"

वैशाली का रूप, उसकी वेशभूषा, चपलता, आकर्षित करने का ढंग, हठ, आत्माभिमान आदि में उसकी निजी विशेषताएँ हैं। आजकल की पढ़ी लिखी लड़कियाँ वेश-भूषा की विचित्रता में पुरुषों से दस कदम आगे ही रहती हैं। वैशाली भी पीछे नहीं है। उसके स्वभाव में संकोच नहीं है। वह अपनी बात और अपने कार्य-क्रम का मान चाहती है, चाहती है कि राजेन्द्र उसकी इच्छा, उसके शासन पर चले। राजेन्द्र को वह भली भांति समझ लेना चाहती है, उससे पत्र-व्यवहार भी आरम्भ कर देती है और राजेन्द्र भी वैशाली जैसी बहिनों और लड़कियों को सभ्यता के लिए आवश्यक मानता है। उसकी छवि माधुरी और सांस्कृतिक सुरुचियों ने उसके मन में मोह उत्पन्न किया है।

जमुना के पति राय चन्द्रनाथ सम्पन्न व्यक्ति हैं पर जमुना सिने तारिका बनकर पैसा कमाये इसका भी उन्हें मोह हो गया है। जमुना से वह दबते हैं। राजहंस इनकी पत्नी को बहका लेने पर भी अकड़ने का साहस कर

लेते हैं। इनके ससुर लाला जी इन्हें नपुन्सक समझते हैं। वे प्राण दे सकते हैं पर अपना नासूर नहीं बतला सकते।

पाण्डेय जी अपने दाम्पत्य जीवन से अतृप्त रहे हैं। अपने सुनहले सपनों, अपनी मनोरथ कल्पनाओं के आधार पर, पुनर्जीवित होने पर, अपना नया जीवन आरम्भ करते हैं। इनके जीवन को देखकर हमें अनुभव होता है कि सुनहली दुनियाँ का स्वप्न झूठा है, जीवन की प्रत्येक स्थिति अपूर्ण है, तृप्ति कहीं नहीं है और आदर्शवादी का मन भी विकारपूर्ण तथा खोखला होता है।

त्रिवेणी और सुलेमान की थोड़ी-सी पर उज्जवल झांकी इस उपन्यास में दी गई है। बिगड़ी घड़ी के विषय में सुलेमान का कथन राजेन्द्र को अपने पिता के विषय में सोचने को बाध्य कर देता है और वह विचार अन्त में सत्य ही सिद्ध होता है।

जीवन की गति जिस प्रकार कभी धीमी, कभी मद्धिम तथा कभी तीव्र होती है उसी प्रकार की गति इस 'चलते चलते' उपन्यास की है। अनन्त पथ पर चलते हुए राजेन्द्र के जीवन के थोड़े से वर्षों का विवरण हमें इससे मिलता है। घटनाओं की प्रतिक्रिया कहीं पूर्ण तो कहीं अपूर्ण भी रह गई है। उपन्यास की समाप्ति तो हो गई पर कथानक अधूरा ही रह गया। बंशी भैया के मरण तथा उनकी अंतिम लिखित आकांक्षा के अनुसार देवर और भाभी एक दूसरे के अधिक निकट अवश्य आगये पर उनके सम्मिलन पर समाज की क्या प्रतिक्रिया हुई ? पाण्डेय जी तथा लाली की अम्मा का नया संसार, ज्ञात हो जाने के पश्चात् समाज में कैसा निभा ? राजेन्द्र की माँ पर, सब कुछ जान लेने पर क्या प्रभाव पड़ा ? टाइप-राइटर पर छोटी भाभी की कौन सी योजना तैयार हुई ? इन सभी बातों के उत्तर शेष रह जाते हैं। वैशाली का चित्रण भी अपूर्ण प्रतीत होता है। वाजपेयीजी ने उपन्यास को समाप्त अवश्य कर डाला है, पर चलते-चलते का क्रम अभी चलना ही चाहता है, विराम नहीं है अभी। संभव है कि "श्रीकान्त" तथा "शेखर एक जीवनी" के समान इसका दूसरा भाग लिखने का विचार गुप्त हो।

दो असावधानियाँ भी वाजपेयीजी से हो गई हैं :—

१—पृष्ठ २१२ पर सोनेलाल के विषय में चाची कहती हैं "ससुराल से जब से लौटा है तब से" पर पृष्ठ २१६ पर लिखा गया है "सोनेलाल ससुराल से लौटा नहीं था।"

२—पृष्ठ ३७६ पर "उसकी बारह हज़ार की रक़म मैंने अपने हिसाब में जमा कर ली" पर रामलाल ने जब तीस हज़ार ले लिया तो पृष्ठ ३८० पर कहा जाना—"दस हज़ार के लगभग उसका रुपया हमारे पास जमा था और बीस हज़ार की रकम उसने हमारी मार दी।"

अंग्रेज़ी शब्द और उद्धरण प्रयुक्त करने का वाजपेयीजी का मोह भी बढ़ता प्रतीत होता है। पात्रानुकूल कथोपकथन में तो विदेशी भाषा के शब्दों का ग्रहण उचित हो सकता है पर वह यदि अपने जीवन में सफल नहीं होता तो उसके दैन्य और फ्रस्ट्रेशन के लिए समाज कहाँ तक उत्तरदायी है (पृष्ठ २६२)" जैसे विचार-वाक्यों में नहीं।

वाजपेयीजी की कृतियों के विरुद्ध प्रमुख आरोप यौन-भावनाओं के बाहुल्य का रहता है। निश्चय ही "चलते चलते" उपन्यास भी इससे मुक्त नहीं हैं। नायक राजेन्द्र आदर्श परायण अवश्य है; पर मनोविकारों के कारण वह विचलित भी हो उठता है। लाली का निरावरण यौवन देखकर उसकी बुरी दशा हो जाती है और पैंट में बकलस लगाते समय छोटी भाभी के बदन से आती हुई भीनी-भीनी मीठी-मीठी सुगन्ध के कारण उसका मन नियन्त्रण से बाहर चला जाना चाहता है। वह अनुभव करता है कि औसत आदमी यौन सम्बन्धों में मूलतः प्राथमिक प्रेरक होता है। किन्तु ऐसी भावनाओं के स्पष्टीकरण को दोष कहना ग़लत होगा। मनोविश्लेषण एक विशेषता है जिनके सहारे हम पात्रों के हृदय को, उनके वास्तविक रूप को जान लेते हैं। पात्र कितना भी आदर्शनिष्ठ क्यों न हो, मनोविकारों का उदय उसके अन्तर में भी होता ही है। उनकी स्थिति वास्तविकता की परिचायक है, कथाकार के समाज के प्रति उत्तरदायित्व होने की नहीं। आन्तरिक सत्य को छिपाकर कोरे आदर्शवाद का ढिंढोरा पीटना वाजपेयीजी को रुचिकर नहीं है। यह तो सत्य है ही, साथ ही यह कहना भी सत्य है कि आदर्श के पालन, उसकी विजय और नैतिकता के मान में ही वे समाज का कल्याण देखते हैं। राजेन्द्र के विचारों में कथाकार का हृदय स्पष्ट बोलता है। राजेन्द्र सोचता है—"उनकी छोटी भाभी की एक-एक बात, उनकी एक-एक मुद्रा, मुसकराना,

हंसना, चलना, दौड़ना, छल करके खिलाना और छल प्रकट हो जाने पर खिलखिलाकर हंस पड़ना, सब कुछ एकदम से अच्छा-ही-अच्छा, मधुर-ही-मधुर क्यों लगता है? क्योंकि वे हम से दूर हैं, दुर्लभ हैं। और यदि वे सर्वथा सुलभ, अपनी···सदा के लिए अपनी किसी और की रंच भर भी नहीं रहे तो? तो किसके आगे मैं मत्था ऊँचा करके चल पाऊंगा? समाज की आँखे मुझे खा न जायेंगी! समाज को क्यों दोष दूं? मेरी आँखें स्वयं मुझे न खा जायेंगी! मैं स्वयं अपने आदर्श से कितना गिर जाऊंगा! आदर्श के साथ ही तो मैं हूँ। आदर्श के बिना मैं, मेरा अस्तित्व जड़ है, निर्जीव।" (पृ० ११४)

राजेन्द्र का यह दृढ़ विश्वास है कि "आज हमारे समाज की जैसी स्थिति है, उससे उद्धार का एक ही मार्ग है, नैतिक मानों का निर्वाह।" (पृष्ठ ३१३) तथा अनुभूति है कि संस्कार कहते हैं, समाज के अन्दर अपनी मर्यादा बनाओ और जीवन की प्राणपीड़क परिस्थितियाँ कहती हैं, अन्याय के आगे घुटने मत टेको। प्राण उत्सर्ग कर दो, पर हाथ मत पसारो, दैन्य मत दिखलाओ। आदर्शों के लिए मर मिटनेवाले ही इतिहास बनाते हैं, वही राष्ट्र-निर्माण करते हैं। सिद्धान्तों की अर्चना में जिनके खून हुए हैं, जिनके खून बहे और सूखे हैं, वे ही हमारे वास्तविक राष्ट्र-निर्माता हैं (पृष्ठ २६६)।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राय: मनोविकारों से ग्रस्त हो जाने पर भी राजेन्द्र की उदात्त भावनाएँ ही अपने पूर्ण प्रकाश में चमक उठती हैं। आज के समाज का यथार्थ तथा निर्भीक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। नायक "नैतिक पतन की आग (पृष्ट ४५४)" से अपने आत्मीय स्वजनों को बचाता हुआ मारा मारा फिर रहा है। उसका हृदय मानवता से पूर्ण है, समाज का कल्याण ही उसका इष्ट है। अपनी पिछली कृतियों में वाजपेयीजी जहाँ परिवार की सीमा में ही सीमित से रह गये थे, इस उपन्यास में विस्तृत समाज का सूक्ष्म निरीक्षण एवं विस्तृत चित्रण करने तथा सामाजिक उद्धार का मार्ग निर्देशित करने में पूर्णतया सफल हुए हैं। अपने विशाल जीवन में वाजपेयीजी को जो अनेकानेक अनुभूतियाँ प्राप्त होती रही हैं उनकी सहज स्वाभाविक ढंग में हुई अभिव्यक्तियाँ उभर-उभर कर पाठक के हृदय को

प्रभावित कर लेती हैं। समाज के विशाल पट पर चित्रित चित्र में अनुभूति जनित उद्धरण वाक्य असीम आकाश में जगमग करते हुए तारागणों के समान अपने निश्चित स्थान में टके हुए से लगते हैं। ऊपर यथास्थान उल्लिखित अपूर्णताओं और दोषों से युक्त होने पर भी यह उपन्यास वाजपेयी जी के कथाकार की सफलता का ही प्रतीक नहीं, वरन् पिछले दस वर्षों में हिन्दी का उपन्यास कितनी प्रगति कर चुका है, इसका भी स्पष्ट परिचायक है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी मेरी दृष्टि में

ले०—श्री विष्णुप्रभाकर बी० ए०

जो भी हो भगवतीप्रसाद वाजपेयी की सजीवता नगण्य नहीं है दूसरे क्षेत्रों में भी उनकी सेवायें हैं। सम्मेलन (हिन्दी साहित्य) के वे कई वर्ष मन्त्री रहे। अब तो केवल मसी जीवि होकर साहित्य की आराधना कर रहे हैं। जब कभी 'मिठाई वाला' या 'निंदियाँ लागी' जैसी कहानियों की याद आ जाती है तो वाजपेयीजी का एक चित्र सा खिंच जाता है। क्या अभाव के छाले आज भी उनकी छाती पर अंकित नहीं है। करुणा वेदना और उनसे उमड़ती हुई सहानुभूति यही तो उनके चित्रों का अमर संदेश है।

निरन्तर अभावों और संघर्षों से जूझते हुये, बाधाओं से टक्कर लेते हुये, झंझाओं के झकोरों को छितराते हुये जो आगे बढ़ते हैं, उन साधकों को दुनियां नहीं भूल सकती। उनका काम छोटा हो या बड़ा पर उनका साहस

उनके यश को अक्षुण्ण रखता है। जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे माई के लाल मिलते हैं। भले ही प्रकाश उन पर सदय न हो पर उनकी उपेक्षा वह नहीं कर सकता।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ऐसे ही साधकों में से हैं। स्थूलता की ओर झुकता हुआ उनका शरीर किंचित नाटा कद, एक रहस्यमयी मुस्कान से आलोकित मोटा मुख और उस मुस्कान के स्रोत वे नयन उन्हें कोई कैसे भूले। आत्मीयता इतनी कि कुछ ही क्षण में अभिन्न हो जाय लेकिन कभी-कभी दार्शनिकता घेर ले तो फिर दार्शनिक अपना न किसी का। स्वभाव उनका सरल है पर समझना उनका कठिन है क्योंकि अभावों की चक्की में पिसते-पिसते वे समरसता खो बैठे हैं। कभी-कभी लोग उन्हें गलत समझ जाते हैं पर यह उनका स्वभाव नहीं है एक बाहरी आवरण है। मूलतः वे एक सरल व्यक्ति हैं।

मेरा उनका परिचय शायद सन् १९२० में हुआ था। तब वे अबोहर से लौट रहे थे और मैं दिल्ली में बीमार था। तब वे मुझसे मिलने आए थे। लेकिन वह पार्थिव परिचय मात्र था। वैसे हम दोनो एक दूसरे को काफी पहले से जानते थे। वे उस वर्ष साहित्य परिषद् के सभापति थे। और उन्होंने जिस प्रकार अपने भाषण में मुझ जैसे नवागंतुक को याद किया उसे मैं क्या करके लूं गुरुजनों की कृपा या हमराहियों की ममता! जो भी हो उसने मुझे बल ही दिया।

विशेषकर उनकी हँसी मुझे खूब याद है। बाद में फिर भी हम कई बार मिले। बड़ी व्यग्रता से कई बार उन्होंने मुझे ढूंढ निकाला पर कभी मैं उन्हें ढूंढूँ तो वे ग़ायब। खोजे न मिले। संकोची ऐसे कि बार-बार कहने पर भी उन्होंने रेडियो रुपान्तर के लिए कहानी नहीं भेजी। मानो उनका कहना हुआ—'मैं क्या भेजूँ ? कुछ रुचे तो ढूँढ लो।' और मैं ऐसा कि ढूंढा ही नहीं। मांगता ही रहा और वह काम न हो सका।

वाजपेयीजी आज की दुनियाँ की दृष्टि से अधिक शिक्षित नहीं हैं पर जीवन की पाठशाला में उनका जो अध्ययन है उसने उन्हें एक सफल और मनोवैज्ञानिक कथाकार बना दिया है। हम साहित्यिक को अंक या श्रेणी देने के पक्ष में नहीं हैं। बड़ा या छोटा साहित्यिक सदा साहित्यिक है। हाँ

उसका साहित्यिक होना एक शर्त है। वाजपेयी जी पुराने साहित्यिक हैं। सन् १६१७ में कवि के रूप में वे इस क्षेत्र में आये। पहली कहानी उन्होंने १६२४ में लिखी। यह वह युग था जब हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द आदि चार पाँच जाज्वल्यमान नक्षत्र अभी-अभी प्रकट हुए थे। शीघ्र ही वाजपेयीजी का प्रकाश भी उस क्षेत्र में चमका और वे भी हिन्दी साहित्याकाश के एक नक्षत्र मान लिये गये।

तब से निरन्तर उनकी कलम चल रही है। ३०० से ऊपर कहानियाँ १२ से ऊपर उपन्यास, १ नाटक तथा १५ अन्य पुस्तकें वे लिख चुके हैं। यह एक शुभ लक्षण है।

आप कभी अध्यापक रहे कभी पुस्तकाध्यक्ष और कभी सिने-लेखक। पत्रों का सम्पादन भी किया है और पुस्तकों का भी। कविता की, नाटक लिखा, आलोचना की, कहानियाँ लिखीं और लिखे उपन्यास। यहाँ उनके साहित्य का मूल्यांकन करने का अवकाश नहीं है, पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आप की कला की विशेषता है यथार्थ का चित्रण और मनवैज्ञानिक अध्ययन। बड़ी सरलता से बिना भावों और भाषा की गुत्थियों में उलझे, स्थिति और पात्र, दोनों के अन्तर को खोलने का आपका प्रयत्न रहता है। प्रयत्न के सामने सफलता और असफलता का प्रश्न नगण्य है। उनका प्रयत्न ही उनके साहित्य का मूलाधार है। वैसे तो आजकल प्रेमचन्द भी दूसरी श्रेणी के कलाकार बन कर रह गये हैं पर क्या। श्रेणी की दृष्टि से प्रेमचन्द का मूल्यांकन करना होगा। क्या वाजपेयी जी को किसी सैद्धान्तिक के गज से ही नापना होगा। हमारा मत है 'नहीं'। कुछ और बातें भी हैं जो निर्णय को प्रभावित करती हैं और सदा करती रहेंगी।

जो भी हो भगवतीप्रसाद वाजपेयीजी की सजीवता नगण्य नहीं है दूसरे क्षेत्रों में भी उनकी सेवाएँ हैं। सम्मेलन (हिन्दी साहित्य) के कई वर्ष मंत्री रहे। अब तो केवल मसी जीवि होकर साहित्य की आराधना कर रहे हैं। जब कभी 'मिठाई वाला' या 'निंदिया लागी' जैसी कहानियों की याद आजाती है तो वाजपेयीजी का एक चित्र सा खिंच जाता है। क्या अभाव के छाले आज भी उनकी छाती पर अंकित नहीं हैं। करुण, वेदना और उनसे उमड़ती हुई सहानुभूति यही तो उनके चित्रों का अमर सन्देश है।

वे साहित्यिक हैं साधक हैं और साधक साधना करता है—बस साधना करता है। वाजपेयीजी भी कर रहे हैं। भले ही उनकी वाणी प्रखर न हो मुखर न हो; पर कोई भी राही उस स्वर की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकता।

उनकी चौवनवीं वर्षगाँठ पर हम उनका अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि वे निरन्तर साधना की ऐसी ही ज्योति जगाये रखेंगे।

'पिपासा' में आत्म-गोपन

ले०—डॉ० रामरतन भटनागर एम० ए०, डी० फिल

इसमें संदेह नहीं कि 'पिपासा' में भाषाशैली का एक अत्यन्त सफल प्रयोग हमें मिलता है। भावों की वक्रभंगिमा, उत्थान-पतन, आलोड़न-विलोड़न के साथ उपन्यासकार ने अनेक सिद्धांत-वाक्य भी गूँथ दिये हैं जो सूत्रमें गुँथित हीरकमणियों की भाँति चमक उठते हैं। भावप्रकाशन की इस सूक्ष्म, तरङ्ग-शैली के कारण ही उपन्यासकार इस छोटी सी कथा को भी आदि से अंत तक रोचक बना सका है।

'पिपासा' के लेखक श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी का हिन्दी के उच्च कोटि के कलाकारों में स्थान है और वे कहानी और उपन्यास लिखने में एक ही प्रकार के सिद्धहस्त हैं। उन्होंने साधारण शिक्षक के रूप में जीवन-यापन आरम्भ किया, परन्तु बाद में विशुद्ध साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में उतर आये और काफ़ी लिखा। उनका जीवन बहुत कुछ अस्त-व्यस्त रहा है और पत्र-संपादन एवं प्रकाशन से लेकर चित्रपट-जगत् तक उनकी दौड़ रही है।

फलस्वरूप हम उनके कथा-साहित्य में भावों और प्रसंगों की काफ़ी विस्तृति पाते हैं और उन्हें कलात्मक और बौद्धिक विकास के पथ पर निरन्तर बढ़ता देखते हैं। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं पर सुधार-युग के उपन्यास-लेखकों और प्रेमचन्द की छाप है, मध्य के उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने 'शरत्' से प्रभावित होकर समाज-बहिर्भूता नारियों और आत्मघाती पुरुषों का चित्रण किया है, परन्तु इधर के उनके कथा-साहित्य में हम काफ़ी निजत्व पाते हैं। मनोविश्लेषण-प्रधान चिंतामूलक शैली में साधारण-सी कथा में औपन्यासिकता लाना सरल काम नहीं है; परन्तु इधर के उपन्यासों में हमें इस प्रकार की कला की सफलता के चिन्ह स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

रचनाओं की संख्या की दृष्टि से वाजपेयीजी कम कृती नहीं हैं। उनके उपन्यास हैं—'प्रेमपथ' (१९२६) 'मीठी चुटकी' (१९२७), 'अनाथपत्नी' (१९२८), त्यागमयी' (१९३२), 'प्रेमनिर्वाह' (१९३४), लालिमा (१९३४), 'पतिता की साधना' (१९३६), 'पिपासा' (१९३७), 'दो बहनें' (१९४०), और 'निमन्त्रण' (१९४२)। कहानियों की संख्या ३०० तक पहुँचती है। कहानी-संग्रहों का क्रम इस प्रकार है— 'मधुपर्क' (१९२९), 'दीपमालिका' (१९३१), 'हिलोर' (१९३९), 'पुष्करिणी' (१९३९), 'खाली बोतल' (१९४०), 'मेरे सपने' (१९४१), 'ज्वारभाटा' (१९४०), और 'कला की दृष्टि' (१९४२), 'उपहार' ,(१९४३), 'अंगारे' (१९४४) तथा 'उतार-चढ़ाव' (१९५०), इधर 'गुप्तधन, (१९५०), 'चलते-चलते' (१९५१) और 'पतवार' (१९५२) नाम के कुछ और उपन्यास तथा नये कहानी-संग्रह भी सामने आये हैं। इसमें संदेह नहीं कि साहित्यिक साधना के रूप में यह निधि थोड़ी नहीं है। इन रचनाओं के अनुकरण और प्रयोग की एक लम्बी परम्परा है। परन्तु यह निश्चित है कि 'पतिता की साधना' (१९३६) के बाद वाजपेयीजी मौलिक रचना के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़े हैं। 'पिपासा' और 'दो बहनें' जैसी रचनाएँ साहित्य-क्षेत्र में किसी भी प्रकार उपेक्षित नहीं रह सकतीं।

इसमें संदेह नहीं कि वाजपेयीजी की रचनाएँ मध्यवित्ती और अल्पवित्ती नागरिकों की अवरुद्ध आकांक्षाओं और ह्रासोन्मूलक प्रवृत्तियों का उद्घाटन करके ही रह जाती हैं और उनमें नवजीवन का स्फुरण नहीं हो पाया है।

उनका अधिकांश साहित्य व्यक्तिनिष्ठ है—कुछ विशेष व्यक्तियों के मनो-भावों का आलोड़न-विलोड़न और वह भी प्रेम-संबंधी ईर्ष्या-द्वेष और प्रतिस्पर्धा तक सीमित है। फलत: उनके कर्तृत्व का क्षेत्र संकुचित हो जाता है। इस संकुचित क्षेत्र में भी हार्डी अथवा शरत् की भाँति अतलस्पर्शी गंभीरता और विश्वव्यापी वेदना की प्रतिष्ठा सम्भव थी, परन्तु वाजपेयीजी केवल तल को छूकर रह गए हैं। फिर भी कथा और कला के क्षेत्र में उनमें विविधता और विशिष्टता तो है ही। और इसके लिए उन्हें कम श्रेय नहीं मिलेगा।

'पिपासा' को हम मनोवैज्ञानिक रेखाचित्र कह सकते हैं—सुगठित कथा-वस्तु के अभाव में वह एक रेखाचित्र ही रह जाता है—परन्तु उसमें नई वैज्ञानिक शैली और मनोविश्लेषणात्मक कथाप्रबंध का बहुत सुन्दर गुम्फन मिलता है।

पहले हम कवि कमलनयन को लें। कवि होने के नाते कमल भावुक है। वह कुछ करता-धरता नहीं। अपनी परिस्थिति से वह असन्तुष्ट है। परन्तु अकर्मण्य होने पर भी वह अपने भीतर कुछ 'पिपासा' छिपाये हुए है। वह बहुधा विरक्ति भरे शब्द बोलता है, दर्शन की ऊँची उड़ाने भरना जैसे उसका स्वभाव हो गया हो, परन्तु उसके मुँह से निकले हुए पहले वाक्य में ही हमें इस आत्मगोपन के छल का पता चल जाता है। वह अपने मित्र नरेन्द्र के यहाँ आया है जहाँ अब उसकी गृहस्थी है, पत्नी है, घर में सुव्यवस्था है। वहाँ के आतिथ्य को देखकर वह सोचता है—"यही, इसी प्रकार का, सुखसन्तोषमय जीवन वह चाहता था—यही, बस इतनी ही, उसकी आकांक्षा थी। परन्तु और तो सब हुआ, यही नहीं हो सका।" परन्तु इस प्रवृत्ति को वह दबा डालना चाहता है।—"लेकिन इस जगत में, इस स्थिति में, क्या केवल वही एक है? यह दारिद्रय, यह परवशता आज सारे जगत् के मानव-वर्ग की समस्या बन गई है। तब उसका यह असन्तोष विश्व भर में फैलकर कितना क्षुद्र हो जाता है! नहीं, कमलनयन ज़रा भी दुखी नहीं है। कौन कहता है कि वह अपने जीवन से असन्तुष्ट है?—तो भी अभी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह इस जीवन से सन्तुष्ट है। परन्तु संतोष! वह तो इति-वाचक होता है, समाप्ति का सूत्रधार। उत्थान-प्रेरक मन के लिए शान्ति और संतोष न चाहिये। उसे तो बढ़ना है, बढ़ते ही जाना है।"

आत्मछलना की यह प्रवृत्ति कमलनयन में प्रारम्भ से है और अंत तक रहती है और अंत में वह तरुणी शकुन्तला के प्रेम को अस्वीकार कर पलायन करता है तो वह बहाना करता है कि वह जनसेवा के लिए जा रहा है। वह नरेन्द्र से कहता है—"किंतु इधर कानपुर जाकर मज़दूरों में मैं कुछ काम जो कर आया, ऐसा जान पड़ता है, उसके लिये मुझे जेल जाना पड़ेगा। मुझे अभी मालूम है कि पुलिस मेरे घर को घेरे हुए है। मेरे नाम वारण्ट भी है। मैं इस वक्त इस नगर से चुपचाप खसक देना चाहता हूँ।" वह जानता है, शकुन्तला उससे प्रेम करती है—वह मरणासन्न है, परन्तु अपने भावों के घात-प्रतिघात छिपाने के लिये वह भाग जाने का सहारा लेता है। कितनी बड़ी आत्मप्रवचना है!

परन्तु यह तो परिणति है। बीच में भी हम बराबर उसके भीतर यह छल का खेल पाते हैं। वह कवि-सम्मेलन में जाता है। इतने आदमी उससे आनन्द-ग्रहण की आशा रखते हैं, यह सोचकर वह गौरवान्वित होता है, परन्तु अंत में कविता नहीं पढ़ता। कहता है—मैंने तो कविता लिखना और पढ़ना एकदम स्थगित कर रखा है। मेरी तबियत ठीक नहीं रहती। कविता लिखने या पढ़ने के पश्चात्, मस्तिष्क पर दबाव पड़ने के कारण मुझे मूर्च्छा आ जाती है। मैं तो आप सब लोगों के दर्शनार्थ चला आया हूँ।" नरेन्द्र जब उसे रुपया देना चाहता है तो वह प्रसन्न होता है—सोचता है रुपया मिलेगा, अच्छा तो है। भाभी को दूँगा तो वह कितनी प्रसन्न होगी। भैया भी कम आनन्दित नहीं होंगे। सोचेंगे—कमल की पहली कमाई का रुपया है। परन्तु इसके बाद उसकी कलाकार की प्रवृत्ति जाग पड़ती है और वह इनकार कर देता है—मूर्तिकार, गायक, चित्रकार और कवि दौलत के गुलाम नहीं होते। भीतर-भीतर अपनी पिपासा का अनुभव करने पर भी वह अपने को कवि के गौरव में भुलाये रहता है। जिस दिन सहसा किसी कोमल-वृत्ति के वशीभूत हो उसका स्खलन हो जाता है, उस दिन वह जागता है और इस छल को समझता है।

नरेन्द्र में भी यह आत्मगोपन पूर्ण मात्रा में है। वह कमल के प्रति शकुन्तला के आकर्षण की बात पहले ही समझ जाता है, परन्तु अपने को इस भावना में भुलाये रहता है कि अच्छे पति की भाँति उसे पत्नी के लिये सभी

सुखों का आयोजन करना चाहिये। कमल के प्रति उसके मन में अपार घृणा का जन्म होता है और उसे भी वह अंत तक छिपाये जाता है। केवल अंत में एक महान् अणु-विस्फोट की तरह यह घृणा फूट निकलती है और दिग्दिगंत एक महान् छि: छि: से भर जाता है। तब हम यह समझ जाते हैं कि नरेन्द्र की सारी उच्चाशयता झूठी थी। वह न इतना ऊँचा है कि अपनी पत्नी को छोटी सी भूल के लिये क्षमा कर सके, न मित्र के प्रति उसमें इतना सद्भाव है कि अपने जीवन की कालिमा उसके मुँह पर न पोते। वैसे वह बड़ी-बड़ी बातें करता है—"अब की बार जब कमलनयन आयेगा, तब मैं उसे अपने साथ, इसी बँगले में रखूँगा। बात यह है कि मैं तुमको किसी भी प्रकार खोना नहीं चाहता।" कैसे सात्विक विचार हैं! परन्तु पाठक जानता है कि प्रच्छन्न रूप से वह अपनी पत्नी के प्रति ईर्ष्यालु है और वह सद्भावना की दौड़ में जीता नहीं, हारा ही है। अंत में उसका अन्तर्द्वन्द्व उसे तोड़ देता है। वह एक वेश्या को बुलाकर उसे शकुन्तला बनाकर कमल का घोर अपमान करता है—क्या इसके लिये वह क्षम्य है? यह ठीक है कि हमारे कर्तृत्व हमारे अंतर्मन द्वारा शासित होते हैं और यह वेश्यावाला निरर्थक प्रसंग वास्तव में नरेन्द्र के अंतर्मन का विद्रोह है—वह अपनी भावुकता को निरंतर दबाता रहा है, वह मुन्सिफ़ है, बड़ा उदार पति है, वह उसके प्रेमी के प्रति भी उदार हो सकता है—ऐसी भावनाओं ने उसके अंतर्मन के द्रोह को दबा दिया है, परन्तु वह द्रोह मर नहीं गया। वहीं किसी कोटर में विषैला फण उठाकर रहता है सर्प की तरह। जिस दिन उसने फूत्कार की, उसी दिन उपन्यास के पाठकों ने उसे जाना। न जाने कितने दिनों से नरेन्द्र अपने भीतर यह घृणा छिपाये हुए था।

शकुन्तला की स्थिति कुछ दूसरी है। वह भी अपने भावों को छिपाना चाहती है, परन्तु इतनी चतुर नहीं है। और इसीलिये छिपा नहीं पाती। पहले वह यह भुलावा देती है कि कमलनयन दया का पात्र है, कवि होने के नाते उसकी सुख-सुविधा की योजना उन्हीं का कर्त्तव्य है। और इसीलिए वह कवि-सम्मेलन का आयोजन कराती है, उससे सुरेन्द्र को पढ़वाती है और अंत में जार्जटाउन स्कूल के अध्यापक की जगह उसे दिलाती है। परन्तु यह कोई भावुकता अथवा दया नहीं है, यह बाद के प्रसंगों से जाना जाता है। उसकी नारीत्व की भूख, एक अदम्य पिपासा, जाग पड़ी है और वह अपने हृदय

का चिरसंचित स्नेह कमल को देना चाहती है। उसके विनोद के पीछे यही आत्मदान है। उसने कमल को धीरे-धीरे अपने निकट—बिल्कुल निकट—बुला लिया है। इस बात को वह जानती है, परन्तु अपने से भी छिपाये रखना चाहती है।

परन्तु एक दिन बीमारी का सहारा लेकर नरेन्द्र की अनुपस्थिति में उसने अपना अपनत्व खो ही दिया। वह एक बार फिर दया का दिखावा करके अपने हृदय की पीड़ा को भूलना चाहती है, परन्तु उस दिन, उस एकांत कक्ष में अपने को धोखा देना असम्भव है। कमलनयन के हाथ में नोटों का बण्डल थमाकर वह अपने हृदय के आंदोलन को छिपाना चाहती है. परन्तु जब थोड़ी देर के लिये जड़ीभूत-सा होकर कमलनयन कहता है—"क्या हो गया है तुमको शकुन ?" तो उसकी आँखों से आँसू झरने लगते हैं। कमल की आँखें भी भीगने लगीं। तब शकुन्तला से रहा नहीं जाता। वह कहती है—"मास्टर साहब ! मैं......मैं तो पागल हो गई हूँ; लेकिन तुम क्यों पागल बनते हो ? तुम क्यों रोते हो ?"

अंत में एक झोंका आता है और नारी का संयम बह जाता है। कमलनयन भी उस प्रवाह में बह गया—इतनी दूर बहा कि रोकना असम्भव था। परन्तु इतना होने पर भी, यह जान लेने पर भी कि नरेन्द्र आया है, कमरे के द्वार पर रुका है और लौट गया है। शकुन्तला में इतना साहस नहीं है कि खुल कर सामने आये। जब नरेन्द्र उस बात को पी जाता है, तो वह कुछ निश्चिंत हो जाती है। परन्तु यह उसके मन का छल है। इस तरह वह अपने को भुलाना चाहती है। यही नहीं, वह एक शीतल नि:श्वास छोड़ती हुई मन ही मन भगवान का स्मरण भी कर लेती है—'ओह ! मैं नहीं जानती थी कि तुम सचमुच ऐसे पतितपावन हो।'

परन्तु अन्त में यह छल खुल जाता है। एक दिन कमल का पक्ष लेकर वह नरेन्द्र से लड़ जाती है और नरेन्द्र भी अपने भाव को छिपा नहीं पाता—उसे पता होगा कि उसके हृदय में कमल के प्रति अधिक आदर है या मेरे लिए। अब शकुन्तला ने जाना कि सब चला गया, सब समाप्त होगया। नरेन्द्र ने सब जान लिया है। वह दो नावों पर नहीं चढ़ सकती। धीरे-धीरे उसका अंतर्द्वन्द्व उसे गिरा देता है और एक दिन वह एक पत्र में कमल को सफ़ाई देकर चल देती है।

यह स्पष्ट है कि उपरोक्त तीनों पात्र साधारण पात्र नहीं हैं—वे अपने भावों को छिपाते हैं और अपने पैरों के नीचे फिसलती हुई धरती की ओर ध्यान नहीं देते। उनमें सत्य बात कहने का साहस नहीं है। वह न खुलकर देना जानते हैं, न लेना। वह अपने से भागे-भागे रहते हैं। यह भीरुता, यह पलायनवाद वर्गगत चीज़ है। समाजभय, परम्परा, नैतिकता और पवित्रता के बन्धनों में जकड़ा हुआ मध्यवित्त परिस्थितियों से ऊपर उठ ही नहीं सकता। अन्त में वह या तो भाग जाता है, या टूट जाता है या पागल हो जाता है। उपरोक्त तीनों पात्रों का अन्त इसी प्रकार होता है। कमलनयन जेल जाकर अपनी पीड़ा छिपाता है, शकुन्तला प्राण ही दे देती है और नरेन्द्र पागल होकर घर से निकल जाता है। इन विदग्ध पात्रों का कपट इन्हें ही ले डूबता है।

पात्रों की चारित्रिक रूपरेखाएँ लेखक ने नहीं उभारी हैं—कमलनयन नरेन्द्र का स्थान ले सकता है और नरेन्द्र कमलनयन का। वस्तुतः चरित्र-चित्रण की ओर उपन्यासकार का ध्यान नहीं है—वह मनोविश्लेषण करके बैठ जाता है—एक विषम परिस्थिति में पात्रों को डालकर वह यह देखना चाहता है कि उन पर किस प्रकार प्रतिक्रिया होती है। वह उन्हें चारित्रिक विशेषता में नहीं बांधता। भावों के घात-प्रतिघात की ओर ही उसका ध्यान है। यदि वह तीनों पात्रों को विशिष्टता दे देता तो उनका चारित्रिक विस्फोट कुछ दूसरे प्रकार का होता, किन्तु एक ही प्रकार की मनोवृत्ति में बँधे तीनों दुर्बल पात्र लगभग एक ही प्रकार के संवेदन उपस्थित करते हैं।

परन्तु कमलाकान्त और यमुना भाभी के चित्रण में उपन्यासकार ने कुछ चारित्रिक रूपरेखायें भी उभारी हैं। दोनों मृदुल हैं। कमलाकान्त जानता है कि भाई बेकार बैठा है, परन्तु वह उसे किसी भी प्रकार का उलहना नहीं देता। भाई के प्रति उसमें अगाध वात्सल्य है। भाभी उलहने देती है; परन्तु स्नेह के—"सोचा था, तुम पढ़-लिख जाओगे, तो एक दिन मेरे घर का यह आँगन पायल और झाँझ की झनकार से गूँज उठेगा। एक हँसमुख देवरानी आ जायगी और तुम्हारा इस तरह इतनी रात तक बाहर रहना भी बंद हो जायगा। परन्तु जब तक तुम आमदनी का ज़रिया नहीं कर लेते, तब तक यह सब कैसे हो सकता है!" भाई जानते हैं—कमलनयन कवि है, शायर है, परन्तु इसके लिए उनके पास कोई उलहना नहीं है।

वह कहते हैं—"तो बाबू साहब, यह कहो कि शायर हो रहे हैं! हँ हँ, शायरी भी क्या तोहफ़ा चीज़ है। × × × लेकिन खैर, मुझे तो खुशी ही है। शायरी बड़ी अच्छी चीज़ है। अगर कहीं काम में भी लग जाता, तब तो बात ही और थी।" इसमें संदेह नहीं कि कमलाकान्त की इस छोटी सी गृहस्थी का बड़ा सुन्दर और सजीव चित्र लेखक ने उपस्थित किया है। भाभी की खीझ और स्नेह चुन्नू-मुन्नू के खेल-कूद और भाई कमलाकांत के अपार स्नेह के बीच में कमलनयन अपनी सारी दुर्बलता भूल जाता है। चरित्र की भीतरी-बाहरी रूप-रेखा अंकित करने में उपन्यासकार बड़ा पटु है। स्वय कमलाकांत का यह चित्र देखिये—'कमलाकांत स्थानीय लोअर कोर्ट के एक एडवोकेट के मुहर्रिर हैं। वे रोज़ाना सबेरे पाँच बजे उठकर गंगा-स्नान करने चले जाते हैं। सात-साढ़े सात बजे लौट आते हैं, फिर तुरन्त वकील साहब के यहाँ चले जाते हैं। वकील साहब पड़ोस में ही रहते हैं, इसलिए नौ सवा नौ बजे तक उनके यहाँ ज़रूरी काम तुरन्त निपटा करके बैठ जाते हैं। उनका इस समय का भोजन बहुत जल्दी में होता है। इसीलिए जब वे दस बजे कोर्ट पहुँच कर चार-पाँच बजे घर लौटते हैं, तब इतमीनान से जलपान करके बैठते हैं। घंटे दो घंटे घर पर बैठ कर वकील साहब के यहाँ चले जाते हैं। वहाँ पर नौ बजे तक काम रहता है। जब कभी काम कम रहता या नहीं रहता तब जल्दी लौट आते हैं।

जब से उन्होंने सुधि सँभाली है, तब से जहाँ तक हो सका, उन्होंने दो काम कभी नहीं छोड़े। एक तो रोज़ाना सबेरे का गंगा-स्नान, दूसरा वकील साहब की बैठकबाज़ी। तबियत अलील होने की बात दूसरी है। पर उन दिनों में भी, यदि तबियत ज्यादा खराब नहीं हुई, तो इतना तो कर ही लिया है कि इक्के पर जाकर गंगाजी के दर्शन कर आते रहे हैं। वकील साहब के बस्ते पर बैठते हुए काग़ज़ पर पहले 'श्रीगंगाजी सदा सहाय' लिख लेंगे, उसके बाद कुछ और लिखेंगे। छोटी-छोटी पाकेट-बुकें उन्होंने बना रखी हैं, जिनमें रोज़नामचे की तरह 'श्रीगंगाजी सदा सहाय' लिखा हुआ है। ऐसी पाकेटबुकें अब उनके निजी ट्रंक में सैकड़ों इकट्ठी हो गई हैं।—इत्यादि, इत्यादि। ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उपन्यासकार चरित्र के वाह्य और अंतर को अभिन्न रूप से साथ लेकर चलता है और कुशल कलाकार की तरह कलम के एक हल्के से इशारे से चरित्र की एक नई झलक हमें दे देता है। यदि वह तीनों

प्रधानपात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में भी इतनी ही विस्तृति से लिखता तो कदाचित् वे सिद्धान्तों के प्रतिबिम्ब और छाया-मात्र नहीं रह जाते। परन्तु कदाचित् वह चरित्रनिष्ठ उपन्यास लिख भी नहीं रहा। वह एक विशेष परिस्थिति को लेकर तीन भीरु पात्रों के मानसिक आलोड़न-विलोड़न का चित्र-मात्र उपस्थित करना चाहता है और इसमें वह सफल हुआ है। उसने अपनी सीमाएँ बना ली हैं। इन सीमाओं के भीतर रहकर उसकी कला चमक ही उठी है। नारी की अनबुझ प्यास और नर की चिरअसमर्थता को उन्होंने घृणा-द्वेष के ताने बाने में गूँथ दिया है। वर्णन-शैली की सूक्ष्मता और सतर्कता के कारण उपन्यास में रेखाचित्र का मज़ा आता है। लेखक की विचार-धारा चाहे अस्पष्ट रही है, चाहे उसके सम्बन्ध में कितना ही मतभेद हो, यह स्पष्ट है कि वह कला की रेखाएँ और नई-नई संवेदनाएँ उभारने में पूर्णतया समर्थ है।

उपन्यास की भाषाशैली कथा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। वह कथा-प्रधान नहीं, मनोविश्लेषण-प्रधान है, और कहीं-कहीं यह मनोविश्लेषण इतना सूक्ष्म और दीर्घसूत्री हो गया है कि उसमें खो जाना सरल है, तत्त्व की बात उससे बाहर निकालना कठिन है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि मन की उधेड़-बुन का एक अच्छा चित्र इस शैली से सामने आ जाता है। उदाहरण के लिये, हम कथा की एक केन्द्रीय घटना का विवरण लें। कमरे में शकुन्तला और कमलनयन हैं और दबे पाँव नरेन्द ने आकर कुछ देर खड़े रहकर उनका प्रेमालाप सुन लिया है—"नरेन्द्र उस कमरे के द्वार के निकट ही चिक की ओट में खड़ा हुआ देर तक यह पुनीत प्रसंग सुनता रहा। कुछ ऐसे शब्द उसके कानों में पड़े, जिनकी एक भाषा है। कुछ ऐसे शब्द भी वह सुनता है, प्रसंग से ही जिनके अर्थ का अनुभव होता है। धीरे-धीरे उसका रक्त खौलने लगा। मन में उसने कुछ निश्चय किया और वह दूसरे कमरे में चला गया। एक टेबिल के ड्राअर से उसने रिवाल्वर निकाला और उसे कोट की जेब में रख लिया। उसकी स्थिति उस समय बहुत दयनीय हो उठी थी। वह कुछ सोचता था, पर सोच नहीं पाता था। जो कुछ निश्चय करता, फिर आप ही उसे तुरन्त बदलने भी लगता। एक बार उसके जी में आया—"वह दोनों को समाप्त करदे", पर फिर उसने सोचा—"कमलनयन बेचारा निर्दोष है। कहता था"—"फिर भी मैं आशा करता हूँ, आज की तरह तुम फिर

कभी पागल न बनोगी।" पर फिर 'हूँ' वह निर्दोष है। क्योंकि वह पुरुष है, चाहे जिस फूल को सूँघ कर फेंक सकता है। और शकुन्तला ही पापिष्ठ है; क्योंकि वह स्त्री है। छि:! यह कैसा अनोखा न्याय है।...किन्तु नहीं, अब और नहीं सह सकूँगा। इस खेल को आज ही समाप्त कर डालूँगा, आज ही। वह बारम्बार कमरे भर में इधर से उधर आ-जा रहा था। वह कभी मुट्ठियाँ बाँध लेता, फिर दाँत पीसकर होंठ काटने लगता। उसके भीतर से शब्द फूटते—"ओह! इसकी प्यास अब भी नहीं बुझी! यह नारी है कि नागिन! यह आखिर है क्या?" परन्तु फिर अपने आप वह विपरीत विचार-धारा में बहने लगता। वह सोचता—"किन्तु मैं इन सब बातों के निर्णय करने का वास्तविक अधिकारी कहाँ तक हूँ! मैं हूँ कौन विश्व की गति में हस्तक्षेप करनेवाला।" इत्यादि। और "अंत में वह रो उठा। उसकी आँखों से आँसू छलक आये। रिवाल्वर को कोट की जेब से निकालकर उसने फिर मेज़ के ड्राअर में रख दिया।

उसी क्षण उस कमरे के द्वार पर उसे किसी की आहट समझ पड़ी। द्वार पर आकर उसने पूछा—"क्या है?"

सुरेन्द्र ने कहा—"आपको भाभी बुला रही हैं!"

नरेन्द्र के मन में आया, वह उत्तर में कह दे—"कह दो, वह मर गया। चाहो तो उसकी लाश उठाने चल सकती हो।" पर उत्तर में कुछ बोल न सका।

यह स्पष्ट है कि इन शब्दों में हम नरेन्द्र के हृदय का स्पन्दन ठीक-ठीक सुन पाते हैं। मन की कोई भी तरंग निश्चित नहीं है। एक क्षण में कुछ, दूसरे क्षण में कुछ। उसको पकड़ना सरल नहीं है। परन्तु कलाकार के लिये मन ही तो कथा की वास्तविक रंगभूमि है। इसी से उसे कुशलता-पूर्वक मन की प्रत्येक तरङ्ग को पकड़ना होता है। जो जितनी अच्छी तरह मन के कशाघात को पकड़ेगा, वह उतना ही बड़ा कलाकार है। इसमें संदेह नहीं कि 'पिपासा' में भाषाशैली का एक अत्यन्त सफल प्रयोग हमें मिलता है। भावों की वक्रभंगिमा, उत्थान-पतन, आलोड़न-विलोड़न के साथ उपन्यासकार

ने अनेक सिद्धांत-वाक्य भी गूँथ दिये हैं जो सूत्र में गुंथित हीरकमणियों की भाँति चमक उठते हैं। भावप्रकाशन की इस सूक्ष्म, तरङ्ग-शैली के कारण ही उपन्यासकार इस छोटी सी कथा को भी आदि से अंत तक रोचक बना सका है।

यही बात कथोपकथन के सम्बन्ध में कही जा सकती है। जहाँ तीन ही प्रधान पात्र हों और तीनों आत्मगोपन के भाव से पीड़ित हों, वहाँ कथोपकथन के प्रवाहमय और सर्वाङ्गपूर्ण होने की आशा हम नहीं कर सकते। प्राय: पात्र के मन में कुछ और है और वह कहता कुछ और है। फिर कथोपकथन में ज्ञान-विज्ञान, दर्शनचिंता और सिद्धांतवाद भी कम नहीं है। फलत: वह प्रत्येक प्रकार से विशिष्ट है। परन्तु सभी पात्र ऐसे निश्चित ढंग की बँधी-सधी संवादशैली का प्रयोग करते हैं कि थोड़ा आश्चर्य होगा। इससे कथा में भी कृत्रिमता आ जाती है। फिर भी कहीं-कहीं कथोपकथन का प्रवाह वेगपूर्ण और स्वाभाविक है और उस पर से आत्मगोपन और दार्शनिकता का आवरण उतर गया है।

"नरेन्द्र ने संकेत से इस विषय को यहाँ और आगे स्पष्ट करने के लिये मना करते हुए कहा—"मास्टर साहब, इस समय जान पड़ता है, किसी गंभीर विवेचन में हैं।"

इस पर कमलनयन कहता है—"आप चुटकी लेना खूब जानते हैं।"

नरेन्द्र बोला—"बात यह है कि लखनऊ में एक चुटकी-भंडार पाठ-शाला है। जब मैं वहाँ था, तो उस संस्था से भी मेरा सम्बन्ध था।

बात-बात में रहस्यवाद की कविता और हरिऔध के "चुभते चौपदे" निकल पड़ते हैं और शकुन्तला अर्थ करती है—"चुभते चौपदे। चौपदे माने चार पैरों वाला जानवर। तात्पर्य यह है कि ऐसे जानवर जो चुभते हैं, वे चुभते चौपदे हैं।"

'चुभते चौपदे' के रहस्य को न समझ कर चटर्जी महाशय गंभीर हो जाते हैं और शकुन्तला और कमलनयन हँसते-हँसते लोटपोट।

कथा की सज्जा के लिये और उसकी कृत्रिम गंभीरता को हल्का करने के लिये इस प्रकार के हल्के संवाद अत्यावश्यक हैं। वाजपेयीजी ने कलाकार की दृष्टि से संवादों की योजना की है और वह उनके हाथ में सचमुच कला की चीज़ बन गये हैं।

"चलते-चलते" उपन्यास में गहन अध्ययनशीलता

लें०—श्री ललितमोहन अवस्थी, एम० ए०

'चलते-चलते' उपन्यास में वाजपेयीजी की लेखनी का परिष्कार, रोचकता, मध्यवर्ग के समाज की गहन अध्ययन-शीलता; घटनाओं की यथार्थता, पात्रों की सजीवता और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के प्रभावशाली वास्तविक चित्रण का चकत्कार देखने को मिलता है। नये उपन्यासों में इस उपन्यास का निस्सन्देह उच्च स्थान है।

साहित्यकार समाज का द्रष्टा और स्रष्टा, दोनों होता है। समाज के प्रत्येक अंग पर उसकी दृष्टि रहती है। उसे समाज का गहरा अध्ययन रहता है। गोताखोर की तरह समाज और जीवन के भीतरी तह तक पैठ कर वह दिन-रात उसकी विभिन्न अवस्थाओं और परिस्थितियों का अध्ययन, मनन और मंथन किया करता है। फिर वह अपनी कला-कृतियों के रूप में समाज को नये मोती निकाल कर देता है जिनसे उनका सौंदर्य और धनाढ्यता

बढ़ती है। अतएव साहित्यकार का मुख्य काम समाज के कालुष्य और अघोर को काट-छाँट कर उसके स्वरूप को परिष्कृत बनाना है। वह समाज की नवीन रूप-सज्जा करता है, उसका निर्माण करता है। एक उपन्यासकार के लिये यह बात और भी अधिक सत्य तथा आवश्यक होती है। क्योंकि उपन्यास में हम व्यक्ति के रूप में समष्टि अथवा समूह का दर्शन करते हैं। उसमें जीवन की विशद और व्यापक विवेचना होती है, समाज का विस्तृत और वास्तविक चित्रण होता है। इस दृष्टि से उपन्यास साहित्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है और एक उपन्यासकार पर सबसे अधिक उत्तरदायित्व रहता है।

'चलते-चलते' शीर्षक उपन्यास हिन्दी के यशस्वी उपन्यासकार पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी का एक नवीन सामाजिक उपन्यास है जिसे उन्होंने आत्मकथा के रूप में लिखा है। आत्मकथा के रूप में उपन्यास लिखने की जैसे एक परम्परा बनती जा रही है। साधारण उपन्यासों से इस प्रकार के उपन्यास लिखने में अधिक सतर्कता और कला-कुशलता की आवश्यकता होती है। इसलिए इस प्रकार का उपन्यासलेखक अधिक साहसी तथा बधाई का पात्र होता है। पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के चोटी के उपन्यासकारों में हैं। उनका अपना एक उच्च स्थान है। आधुनिक उपन्यास-लेखकों में वे पर्याप्त लोकप्रिय हैं। उनकी कला-कृतियाँ हिन्दी कथा-साहित्य के साधारण एवं विशिष्ट, दोनों प्रकार के ही पाठकों की रुचि और चाव को सन्तुष्ट करती है—यह उनके उपन्यासों का एक बड़ा गुण है। 'चलते-चलते' उपन्यास में वाजपेयीजी की लेखनी का परिष्कार, रोचकता, मध्यवर्ग के समाज की गहन अध्ययनशीलता, घटनाओं की यथार्थता, पात्रों की सजीवता और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के प्रभावशाली वास्तविक चित्रण का चमत्कार देखने को मिलता है। नए उपन्यासों में इस उपन्यास का निस्सन्देह उच्च स्थान है।

'चलते-चलते' मध्य वर्ग का उपन्यास है। उच्च और साधारण मध्यम-वर्ग के लोगों की जीवन-कथा हम उसमें पाते हैं। उपन्यास का कथानक सुसम्पन्न परिवार से लिया गया है। उपन्यास के कथानक का मुख्य आधार वर्तमान भारतीय समाज में चारों ओर व्याप्त यौन-तृष्णा है। हमारे समाज की आज यह एक महान समस्या है। स्वयं उपन्यासलेखक के शब्दों में आज भारतीय संस्कृति की सारी मान-मर्यादा नारकीय भोग-विलासपूर्ण षड़यंत्रों

का शिकार बन रही है जिसे देख कर लेखक का हृदय द्रवित हो उठा है। तभी उसने उसका वास्तविक और यथार्थ स्वरूप चित्रित करने के लिए लेखनी का प्रयोग किया है। वाजपेयीजी का मत है कि 'अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियों की यहाँ एक ऐसी संस्कृति पनप रही है, विवाह-विच्छेद और स्वछन्द विहार जिसका एकमात्र उद्देश्य है। इस दल में उच्च पदाधिकारियों और बड़े से लेकर कम-से-कम प्रान्तीय ख्याति के नेताओं और मिल मालिकों की लड़कियाँ प्रमुख हैं।'...और इसी समस्या को आधार मानकर इस उपन्यास के कथानक की इमारत खड़ी की गई है। इसलिए जहाँ तक वर्तमान भारतीय समाज के जर्जर-स्वरूप का सम्बन्ध है, उसके वास्तविक चित्रण में यह उपन्यास पर्याप्त सफल सिद्ध हुआ है। उपन्यास पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे समाज की नींव कितनी खोखली हो चली है, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का मान कितना पतित हो गया है और यह घुन लगा वर्तमान समाज कितनी तेज़ी से धराशायी होने की तैयारी कर रहा है। इस उपन्यास ने यह सिद्ध कर दिया है कि पूंजीवाद किस प्रकार समाज की जड़ों को जर्जर बनाता है, समाज में अनैतिकता, भ्रष्टाचार और व्यभिचार फैलाता है और किस प्रकार समाज की स्वस्थ मान्यताओं को नष्ट कर समूची जाति को यौन-तृष्णा का शिकार बनाता है। तभी वाजपेयीजी ने उपन्यास में स्पष्ट शब्दों में कहा है— 'हमारी वर्तमान मान्यताओं का राजप्रासाद कुछ ऐसा बना है कि जिसकी सीढ़ियाँ एकदम सीधी गई हैं। एक बार ऊपर से गिरने भर की देर है और पतन का गह्वर गर्त नीचे है।'...इस उपन्यास में, मध्यवर्ग के जीवन के दैनिक संघर्ष और भौतिक समस्याओं का चित्रण नहीं है, वरन् उसके इसी पतन का चित्रण है, पूंजीवाद के भीषण अभिशाप का चित्रण है।

उपन्यास के सभी मुख्य पात्र यौन-तृष्णा के रोग से ग्रसित हैं। उपन्यास का नायक राजेन्द्र स्वयं उसका शिकार है। किसी भी सुन्दर युवती को देख कर उसका मन फ़ौरन फिसल जाता है, जिसे वह स्वयं स्वीकार करता है— 'क्या करूँ, आदत से लाचार हूँ!' (पृष्ठ ३८६, पाँचवीं पंक्ति) जहाँ उसके चरित्र में अन्य गुण और विशेषताएँ हैं, वहाँ उसकी यह सबसे बड़ी दुर्बलता है। उसके जीवनकाल में पाँच युवतियाँ उसके सम्पर्क में आती हैं—उसकी छोटी भाभी, मिस हीरा मानिक, अर्चना, लाली और वैशाली—जिनके सौंदर्य की ओर वह मन ही मन आकर्षित रहता है, तर्क-वितर्क करता है। अन्य

पात्रों में हम नायक के पिता, भाई साहब बंशी बाबू, मुरलीमनोहर उर्फ़ राजहंस तथा रामलाल—इन सभी को हम वैसा ही पाते हैं। उसके पिता मर जाने के बाद भाग्यवशात् पुनः जीवित हो जाने पर अपनी स्त्री के पास नहीं जाते, वरन् एक विजातीय विधवा स्त्री को साथ ले नया घर बसा लेते हैं। भाई साहब बंशी बाबू दो शादियाँ कर चुके हैं, फिर भी शादी करने की इच्छा रखते हैं। रामलाल बंशी बाबू की प्रथम पत्नी अर्थात नायक की बड़ी भाभी को फाँसे हुए है और मुरली बाबू एक सेठ की विवाहिता लड़की को, जो सिनेमा की बड़ी शौकीन है और जिसका पति नपुंसक है, भगा ले जाता है, इस प्रकार उपन्यास की जितनी मुख्य घटनाएँ हैं वे सभी इसी समस्या से सम्बन्धित हैं। उपन्यास के कथानक का तानाबाना इन्हीं पात्रों और इन्हीं घटनाओं के चारों ओर बुना गया है। उपन्यास में आधुनिक सभ्यता की उपज इन विशाल नगरों की ऊँची इमारतों और तंग गलियों में पनपने वाली अनैतिकता और व्यभिचार का पर्दाफ़ाश किया गया है—बड़ी यथार्थता, वास्तविकता और कलापूर्ण ढंग से।

उपन्यास की एक अन्य विशेषता है—उसके पात्र, जो अत्यन्त सजीव और वास्तविक हैं। सभी पात्र हमें अपने समाज के जीवित पात्र दिखाई देते हैं। कोई पात्र कल्पित या बनावटी नहीं है। सभी पात्रों में सबसे अधिक उज्ज्वल पात्र छोटी भाभी है, जो पाठकों की रुचि को सबसे अधिक आकर्षित और केन्द्रित करती है। यही उपन्यास की नायिका भी है। उसमें हम पर्याप्त साहस और त्याग की भावना भी पाते हैं। यद्यपि वह भारतीय नारी को घुल-घुल कर मर जाने वाली, श्रृङ्खलाओं से जकड़ी हुई परम्परा को तोड़ती तो नहीं है, और न उसके लिए प्रयत्न करती है, किन्तु फिर भी अपने हृदय में वह ऐसे विचार अवश्य रखती है। हो सकता है, यदि उपन्यास का नायक राजेन्द्र अधिक साहसी और क्रांतिकारी विचारवान होता तो छोटी भाभी समाज की क्रांतिकारिणी महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती। राजेन्द्र तो केवल आदर्श का पुजारी और अन्तर्द्वन्द्व में घुलनेवाला व्यक्ति है। वह प्रेम की भावनाओं को खुले शब्दों में प्रकट करने का भी साहस नहीं रखता है। उसका चरित्र छोटी भाभी में इन वाक्यों में साकार हो उठता है—'तुम तो उस आदर्श के उपासक हो, जो आज तक होता आया है। कैसे हुआ है, यह बात दूसरी है। तुम में इतना साहस ही कहाँ है, जो मुँह पर साफ़-साफ़ कह सको कि जो

अब तक होता आया है, वही सत्य और उपादेय नहीं हुआ है, जो होना चाहिए, वह भी उत्तम और उपयोगी है।' (पृष्ठ ३६३) राजेन्द्र की इस साहसहीनता और दुर्बलता पर खीझ कर छोटी भाभी आवेश में यहाँ तक कह डालती है—'मेरे प्राण अधूरे घुटेंगे, केवल तुम, केवल तुम्हारा आदर्श पूर्ण रहेगा।' (पृष्ठ ४०६) राजेन्द्र के निरन्तर आत्मरत रहने पर वह कहती है कि, वह आहों, निश्वासों और अनदेखे स्वप्नों पर बहस करने की अपेक्षा (जो राजेन्द्र अधिक करता था) आग में कूद जाने को अधिक मानवी मानती है।' (पृष्ठ ४१५) किन्तु इतने पर भी राजेन्द्र में साहस नहीं आता। वह रोता भी है और दूसरे के आँसुओं को देखकर यहाँ तक स्वीकार करता है कि —'आँसू मेरी सब से बड़ी कमज़ोरी है।' (पृष्ठ ४१०) वह यह भी स्वीकार करता है कि वह स्वयं निरन्तर केवल आदर्श की दुंदुभी बजाया करता है। (पृष्ठ ४१६) और यद्यपि उसकी भाभी इतना तक कहती है कि—'तुम मुझे प्राप्त कर लो'—(पृष्ठ ४१३) किन्तु फिर भी वह स्वयं किंकर्त्तव्यविमूढ़ ही बना रहता है। और कहता है कि—'मैं दुनियाँ के अंगुलि-निर्देश पर नाचना स्वीकार करता हूँ।' जहाँ छोटी भाभी का चरित्र दृढ़ है, वहाँ राजेन्द्र का दुर्बल। वह प्रत्येक युवती के सौंदर्य को निमन्त्रण मान बैठता है। किन्तु इसके अतिरिक्त राजेन्द्र के चरित्र का दूसरा पहलू भी है, जो बड़ा दृढ़ है, खरा है, साहसी है और स्पष्टवक्ता है। जहाँ तक वर्तमान समाज, देश की राजनैतिक अवस्था, शासन की दुबलता और समाजद्रोही चरित्रहीन व्यक्तियों का सम्बन्ध है राजेन्द्र के विचार बड़े उग्र, क्रान्तिकारी और साम्यवादी हैं। किंतु उसका यह क्रान्तिकारीपन केवल मौखिक है, क्रियात्मक नहीं। वह कहता है—'शासनाधिकार की कुर्सियों पर जो लोग आसीन हैं, वे पुरानी मशीनरी का हृदय नहीं बदल पाये। जो लोग पहले विलायती पोशाक में कचहरी आते थे, वे सिर्फ़ चापलूसी के विचार से अगर खादी या देशी पोशाक में आने लगें तो शासनाधिकारियों ने समझ लिया कि सच्चा स्वराज्य हमने स्थापित कर लिया।' (पृष्ठ ६३-६४)। वह फिर कहता है 'जिनके हाथों में शक्ति है, उनके दिल साफ़ नहीं रह गये। वे व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति दिन-दहाड़े करते हैं। वे रिश्ते और मित्रता निभाते हैं।' (पृष्ठ ६५) इस प्रकार राजेन्द्र वर्तमान शासन के पाप को उघारने में ज़रा भी नहीं हिचकता। वह उस भविष्य की भी कल्पना करता है जो देश में सर्वहारा क्रांति के बाद आयेगा

या जो रूस और चीन में आ चुका है। वह कहता है—'अब देश का भविष्य जिस वर्ग के हाथों में आनेवाला है, वह इस समाज की मान्यताओं को कदापि महत्व न देगा। वह तो उसी समाज को प्रोत्साहन देगा जो जनता की सारी समस्याओं का हल मनुष्य का नवजीवन और नवजागरण का मार्ग प्रदर्शित करने वाली बौद्धिक चेतना के आधार पर करना स्वीकार करेगा (पृष्ठ ८६-६०)। वह सूदखोरी या महाजनी प्रथा को पूंजीवाद का स्तम्भ मानता है और वह वर्तमान शासन को सफेदपोश धूर्तों का संगठित रावणराज्य कह-कर कोसता है। किन्तु फिर भी यह सभी केवल उसके कोरे विचार-मात्र हैं। न तो वह इन विचारों को कहीं क्रियारूप प्रदान करता है, और न इन समस्याओं पर उपन्यास में किसी भी घटना का सृजन किया गया है।

उपन्यास में गौरीशंकर अवश्य एक महान पात्र है। वह उच्च विचार-वान है। वह कहता है—हमारे देश में धीरे-धीरे एक ऐसी नई पौध पनप रही है जो अपने पिता की आज्ञा भी उस समय टाल सकी हैं जब उसकी समझ में आ जाए कि पिता हमें ग़लत रास्ते पर ले जा रहे हैं।...भारत को स्वतन्त्र बनाने में अपने त्याग की बारम्बार दुहाई देनेवाले प्रायः वही लोग हैं जो पद और अधिकार के भूखे हैं और जो देशभक्ति को भी एक पेशा बनाए बैठे हैं। किन्तु इस पात्र का कोई विकास या अधिक उल्लेख हम उपन्यास में नहीं पाते। वह केवल एक लघु पात्र है जो कुछ ही स्थानों पर आता है। रामलाल और मुरली बाबू दुश्चरित्र व्यक्ति हैं, दूसरों का पैसा ऐंठनेवाले, ऐश करनेवाले, बहू-बेटियाँ फाँसने और भगाने वाले, जिनकी आज के समाज में कमी नहीं है। उपन्यास में कुछ अनावश्यक पात्र भी हैं; जैसे मोदी फोटोग्राफ़र उसकी बहन हीरा मानेक, वैशाली, आदि। किन्तु उपन्यास में जितने भी पात्र हैं उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जो क्रांतिकारी हो, आगे बढ़ा हुआ हो या जो समाज का नेतृत्व ग्रहण करनेवाला हो। यह बड़ी भारी कमी है।

इस उपन्यास में केवल आदर्श का अन्तर्द्वन्द्व और उसकी विवेचना तथा यथार्थ का चित्रण है। आजकल पढ़े-लिखे मध्यमवर्ग में युवक-युवतियाँ अपने-अपने मन में यौन-सम्बन्धी विकारों को बसा कर प्रत्यक्ष में भाई-बहन के सम्बन्ध का प्रगट करना एक 'एटीकेट' (अर्थात नई सभ्यता) मानने लगे हैं। इस उपन्यास में इस भयावह स्थिति का चित्रण है। इसमें समाज-सुधार या सामाजिक क्रांति की कोई प्रेरणा नहीं है और न कोई अंतिम संदेश

या दिशा-निर्देश हैं, जैसा कि कुछ अन्य उपन्यासकार कर रहे हैं। यदि इस उपन्यास में लाली का विवाह कराके विधवा-विवाह का आदर्श स्थापित किया जाता; यदि इससे छोटी भाभी अपने पति के जीवित रहते सामाजिक शृंखलाओं को तोड़ती; यदि इसमें मुरलीमनोहर की मृत्यु के बजाय उसे सामाजिक भर्त्सना, प्रताड़ना और निन्दा का पात्र बनाकर उसका अत्यन्त घृणित और दुःखपूर्ण अन्त दिखाया जाता; और इसी प्रकार रामलाल के भविष्य पर भी कोई परदा न डाला जाता, बल्कि उसे भी समुचित दण्ड का भागी बनाया जाता, तो यह उपन्यास वाजपेयीजी की आदर्श रचना हो जाती, जिस पर हिन्दी साहित्य गर्व कर सकता। फिर भी उपन्यास इस माने में बहुत सफल और सुन्दर है कि उसने आज के गिरते हुए समाज के ढाँचे को नंगा करके उपस्थित किया है। उपन्यास की भाषा-शैली बड़ी सुन्दर, प्राञ्जल, प्रभावोत्पादक, रोचक और चित्रात्मक है; बड़ी ही सौष्ठवपूर्ण। वाजपेयीजी के उपन्यासों की एक यह महान विशेषता रही है। इस उपन्यास में यह विशेषता और भी अधिक विकसित हुई है।

'गुप्तधन' में चिरन्तनसत्य का निरूपण

ले०—श्री शिवशंकर मिश्र, एम० ए०

वाजपेयीजी की भाषा स्वयं अपनी है। आलोचकों के शब्दों में वह 'टकसाली' है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषा भी प्रारम्भ से अंत तक एक ही समान है—सरिता के सहज वेग के समान स्वच्छ एवं निर्मल। वह घाटों से टकराती और कगारों को तोड़ती-फोड़ती नहीं चलती, अपितु उसकी गति में भी संयम और संतुलन है। भाषा में न तो सामान्य एवं बहु-प्रयुक्त उर्दू शब्दों की उपेक्षा है और न संस्कृत-पदावली की ठूसमठूस। मेरा अपना मत है कि ऐसी सुलझी और परिमार्जित भाषा लिखने का श्रेय वाजपेयीजी के अतिरिक्त अन्य किसी उपन्यासकार को प्राप्त नहीं है।

प्रथम बार जब मैंने 'गुप्त धन' को पढ़ना प्रारम्भ किया, लगभग एक माह में मैं इसे पूर्ण कर सका। आकार की दृष्टि से मैं इतनी बड़ी कोई

भी पुस्तक चाहे वह दर्शन-शास्त्र की ही होती, कुछ घण्टों में समाप्त कर डालता। पर इस पुस्तक ने मुझे इतने लम्बे समय तक उलझाया तथा इतने दिनों तक मैं अपना धैर्य स्थिर रख सका, इसी सत्य में पुस्तक की गुरुता और मेरी श्रद्धांजलि निहित है।

सामान्य विवेचन के लिये 'गुप्तधन' लेखक के ही शब्दों में मनोवैज्ञानिक, मौलिक, सामाजिक उपन्यास है। 'आश्वासन' में विद्वान् लेखक ने उपन्यास के आधार का स्पष्टीकरण किया है। उसके अनुसार 'यह गुप्त धन है, मनुष्य के अन्त:करण में वास करनेवाला उसका सत्य। वह सत्य, जो हमारे मन, वचन और कर्म की एकता का एकमात्र सूत्रधार है। वही हमारा बल है, वही हमारी शक्ति। उसके द्वारा हम अपने आप को ही नहीं, समाज और देश को भी सुखी, सम्पन्न और समृद्धिशाली बना सकते हैं।' इस उपन्यास की 'कल्पना की पृष्ठभूमि में एक परम पावन महामानव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है।' वस्तुत: प्रस्तुत उपन्यास मनुष्य के हृदय में निवास करनेवाले तत्वों के अन्तर्द्वन्द्व का एक रूपक है।

हाँ, तो मैंने निवेदन किया कि इस उपन्यास ने मुझे एक माह तक उलझाया। पढ़ा मैंने इसे प्रतिदिन है। कुछ पृष्ठों को पढ़ने के बाद ही अप्रत्यक्ष रूप से मन उस स्थिति पर पहुँच जाता, जहाँ रुक कर विचार करने के अतिरिक्त कोई चारा न था। उस स्थान पर या तो मुझे कोई समस्या अपने में उलझा लेती, कोई सत्य अपने में लय कर देता अथवा किसी जीवन-तत्व की प्राप्ति मुझे तुष्टि देकर अवसाद की स्थिति में पहुँचा देती।

पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठों में आचार्य गौरीशंकर के जीवन का काव्य-सा सरस किन्तु गद्य-सा सरल एवं ग्राह्य वर्णन कभी मुझे स्वयं आचार्य बनने के लिये प्रेरित करता, और कभी मैं स्वयं अपने आप को आचार्य समझने लगता। जोधा के समान ही मैं भी आचार्य के जीवन के प्रारंभिक भाग को नैतिकता की कसौटी पर बार-बार कस ही रहा था कि आचार्य की घन-गर्जन के समान गहन एवं गंभीर वाणी ने 'हृदय पटल पर गाढ़ी लाल स्याही से लिख डाला'—'किसी की याद में रोया मत करो जोधा। कहीं कोई नहीं है।' मैं यहीं रुक गया। पुस्तक मैंने बंद कर दी। ऐसा अनुभव हुआ कि युगों-युगों से अपनी स्थापना के लिये लड़नेवाला दर्शन इसी एक वाक्य में लय हो

गया हो। प्रश्न-उत्तर के इस संगम ने मुझे अपूर्व तुष्टि दी। उपन्यास के सागर में मेरे पहले ही प्रयास से एक अमूल्य मोती मिल गया। प्रतिदिन ही कुछ पृष्ठों के बाद ही इसी प्रकार का अनुभव हुआ। प्रत्येक दिन के अनुभव में कुछ-न-कुछ नवीनता रही जो मेरे धैर्य को प्रतीक्षा के लिये बल देती रही। संपूर्ण उपन्यास ऐसे स्थलों और प्रसगों से भरा हुआ है। पंक्तियों के इस जाल में जीवन के न जाने कितने सत्य उलझे हुए हैं। आप इन्हें खोजना चाहें अथवा नहीं, वह स्वयं एक अकृत्रिम आभा से आपको अपनी ओर खींच लेते हैं। भाव-सृष्टि में जीवन-तत्वों का रागात्मक निरूपण साहित्य की आधार भूमि है। इस दृष्टि से यह प्राय: स्वत: सिद्ध-सा है कि प्रस्तुत उपन्यास की आधारभूमि सुदृढ़, सुव्यवस्थित एवं सुआयोजित है।

उपन्यास घटना-प्रधान न होने के कारण उसकी कथा-वस्तु सीमित है तथा उस पर आश्रित भावनाओं का आधार अधिक विस्तृत। विश्वविद्यालय से अवकाश-प्राप्त आचार्य का जीवन, पुत्र और दत्तक पुत्र में अन्तर, कार-खानों में चलनेवाला अर्थ-चक्र, आधुनिका कुमारियों की चित्त-वृत्ति, धर्म का वैज्ञानिक निरूपण एवं कतिपय दैनिक जीवन की घटनाओं का घात-प्रतिघात, इस सबके आस-पास उपन्यास का कथाक्रम चलता है। भाव-तत्व की प्रधानता होते हुए भी किसी भी स्थान पर इसका अनुभव नहीं होता कि कथाकार की तूली आकाश की रिक्तता अथवा क्षितिज की शून्यता की नापजोख कर रही है। पाठक को कथा के साथ-साथ चलने के लिये कल्पना का अधिक आश्रय नहीं लेना पड़ता।

उपन्यास में पात्र अधिक नहीं हैं, किन्तु प्रत्येक पात्र एक दूसरे से इतना भिन्न है कि ऐसा जान पड़ता है कि जीवन के सभी कोने घेर लिये गये हों। इन सब पात्रों के बीच में सम्बन्ध के तार जोड़ कर वर्तमान जगत् के जिस रूप को मर्यादित किया गया वह अपनी सत्ता में पूर्ण तथा एक निश्चित इकाई है। यह सब पात्र अपने-अपने निश्चित स्थान पर खड़े हुए हैं, हिलते डुलते नहीं। विश्व एवं परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता इन्हें हिला-डुला नहीं पाती। एक आलोचक के शब्दों में वाजपेयीजी के पात्र बड़े हठीले हैं, अपनी ज़िद के आगे किसी की कुछ सुनते नहीं। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र भी अपने स्वत: निर्धारित मार्ग पर अनवरत रूप से चल रहे हैं। आगे-पीछे और दाएँ-बाएँ

की उन्हें विशेष चिन्ता नहीं है। प्रत्येक पात्र आत्म-निर्भरता एवं विश्वास की भावना से ओत-प्रोत है। अच्छा या बुरा उसका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है—यानी अपना एक चरित्र है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण मूलरूप में उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति के द्वारा होता है। घटनाक्रम भी सहायक के रूप में रोशनी डालता चलता है—कहीं पाठक पात्र को समझने में भ्रम न कर बैठें, धोखा न खा जायें। 'सर्विस-बुक' वाली घटना मन्मथ का भंडाफोड़ कर देती है। इतने से ही लेखक को संतोष नहीं होता। घटना की एक और किरण वह मन्मथ के चरित्र पर डालता है और ४० हज़ार रुपये के ग़बन की बात पाठक के सम्मुख रख देता है। इसी प्रकार कतिपय घटनाओं द्वारा ही लेखक ने वत्सला, साधना, चेतना और प्रेरणा, के चरित्र की झाँकी प्रस्तुत कर दी है। वेद, ज्ञान, सत्य, विनय आदि के चरित्रों का विकास अत्यन्त स्वाभाविक एवं सहज ग्राह्य है। चरित्र-चित्रण में न तो लेखक ने तनिक भी पक्षपात किया है और न पात्रों के साथ किसी प्रकार की ज़बरदस्ती। अंग्रेज़ी उपन्यासकार थेकरे के समान ही उसने अपने पात्रों को उनकी ही मतिगति पर छोड़ दिया है। इसीलिये वाजपेयीजी के पात्र रंगमंच के अभिनेता ही नहीं हैं, अपितु जीवन के उन्मुक्त क्षेत्र में स्वच्छंद विहार करनेवाले प्राणी हैं। वाजपेयीजी उन्हें अपनी तूली के रंगों से स्वरूप नहीं देते, अपितु एक दृश्यांकनकार के समान पात्रों की गति-विधि का चित्रण करते हैं।

वाजपेयीजी की भाषा स्वयं अपनी है। आलोचकों के शब्दों में वह 'टकसाली' है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषा भी प्रारम्भ से अंत तक एक ही समान है—सरिता के सहज वेग के समान स्वच्छ एवं निर्मल। वह घाटों से टकराती और कगारों को तोड़ती-फोड़ती नहीं चलती, अपितु उसकी गति में भी संयम और संतुलन है। भाषा में न तो सामान्य एवं बहु-प्रयुक्त उर्दू शब्दों की उपेक्षा है और न संस्कृत पदावली की ठूसमठूस। मेरा अपना मत है कि ऐसी सुलझी और परिमार्जित भाषा लिखने का श्रेय वाजपेयीजी के अतिरिक्त अन्य किसी उपन्यासकार को प्राप्त नहीं है।

अपने अन्य उपन्यासों के समान ही प्रस्तुत उपन्यास में भी वाजपेयीजी बहुत दूर तक प्रयोग से निष्कर्ष की ओर बढ़ते दिखलाई देते हैं। वस्तुतः समस्या से समाधान की ओर बढ़ते हुए लेखक ने अपने उपन्यास में उपदेशक

बन कर कलातत्त्व के साथ अन्याय नहीं होने दिया है। संपूर्ण उपन्यास पढ़ लेने के बाद पाठक को आश्वासन मिलता है, उसे विश्वास देकर लेखक उसे पंगु नहीं बना देना चाहता। लेखक बारम्बार जीवन के तत्व देकर पाठक की अनुभव निधि बढ़ाता जाता है, किन्तु परिणाम स्पष्ट करके अपनी देन का लेखा-जोखा, हिसाब-किताब यानी व्यापार नहीं करता। लेखक उस कुशल व्यापारी के समान नहीं है, जो किसी भी प्रकार समझा-बुझाकर ग्राहक को अपनी ही वस्तु लेने के लिये बाध्य करे। लेखक की नीति अधिकांश स्थलों पर संकेतात्मक एवं कहीं-कहीं प्रेरणात्मक है। इससे अधिक पाठक अथवा पात्र की विचार-स्वतन्त्रता का अपहरण करना लेखक को मान्य नहीं।

मैंने लेख के प्रारम्भ में कहा है कि प्रस्तुत उपन्यास लेखक की सुसंपादित योजना के अनुसार एक भाव-तत्वों एवं चित्त-वृत्तियों का रूपक है। प्रत्येक पात्र भावना-जगत का एक स्वरूप है। वेद और ज्ञान दोनों भाई हैं—सम्बन्धित किन्तु दूर, क्योंकि ज्ञान को वैभव ने समृद्धिशाली बना दिया है। सत्य वेद के ज्ञान की ओर जाता है जहाँ उससे टक्कर लेने के लिये मन्मथ उपस्थित है। सत्य और मन्मथ का संघर्ष चलता है, जिसमें अन्त में सत्य की विजय होती है। मन्मथ प्रेरणा पर विजय प्राप्त कर लेता है, किंतु चेतना, साधना और वत्सला पर वह विजय प्राप्त नहीं कर पाता। ज्ञान कभी-कभी लड़खड़ाता है, कभी-कभी मन्मथ की ओर उसका आकर्षण दृष्टिगोचर होता है, किंतु सत्य अपने स्थान पर अडिग है। चेतना सत्य से प्रभावित है। वत्सला बाल-सुलभ चंचलता के अनुरूप रुचि प्रत्येक घटना में लेती है किंतु स्वयं किसी प्रवृत्ति की द्योतक नहीं। यह पंक्तियाँ इसके रूपक तत्व पर प्रकाश डालने के लिये पर्याप्त हैं। इस रूपक को दृष्टि में रखकर यदि पाठक उपन्यास पढ़े तो उसे दुगुना आनन्द प्राप्त होगा। कम-से-कम मैं ने तो अकस्मात् कुछ पृष्ठ पढ़कर इसके रूपकतत्व को जान लिया था। इसीलिये बहुत अंशों में तो मैंने इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक पुस्तक का आनन्द लिया है। प्रत्येक पाठ के साथ रूपक अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है। दो-तीन बार पढ़ने के बाद तो लेखक की अभूतपूर्व योजना पर आश्चर्य होने लगता है।

उपन्यास देश, काल और वातावरण के सर्वथा अनुकूल है। यह न तो अतीत के कक्षों की उथल-पुथल करता है और न भविष्य की ही स्वप्निल

झाँकियाँ सजाता है। इसमें अपनी और अपने समाज की बात है। रूपक की दृष्टि से इसमें चिरंतन सत्यों का निरूपण है—शाश्वत भावनाओं की अभिव्यक्ति। इस रूप में प्रस्तुत उपन्यास आज का भी है और युग-युग का भी।

कुछ पृष्ठों की सीमा में उपन्यास की पूर्ण आलोचना कर सकना संभव नहीं। लेखक के समान आलोचक को गागर में सागर भरने की कला नहीं आती—वह तो गागर में छिपे सागर को उसका यथार्थ रूप देने का कार्य करता है। सार रूप में मुझे वाजपेयीजी का यह उपन्यास बहुत जँचा।

उपन्यास बार-बार पढ़ने के बाद कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि यदि अंत कुछ और आगे बढ़कर किया गया होता तो अच्छा था। अभी पाठक के हृदय में उपन्यास के पात्रों के साथ कुछ देर और रहने की इच्छा थी कि वे उसे छोड़कर चल देते हैं।

मुझे यह संतोष है कि हिन्दी जगत ने मेरे अपने प्रिय उपन्यासकार का अभिनन्दन करने का निर्णय किया है। इस पुण्य अवसर पर इस लेख के साथ ही वयोवृद्ध तपस्वी के श्रीचरणों में मैं अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

'पतिता की साधना' में पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

ले०—श्री विनयमोहन शर्मा, एम० ए०

हम 'पतिता की साधना' की हिन्दी के अच्छे उपन्यासों में गणना करते हैं। उसका प्रारम्भ और अन्त दोनों प्रभावोत्पादक हैं। कई उपन्यासकारों के समान उन्होंने अपने सभी पात्रों को अन्त में स्टेज पर खड़ाकर उन्हें उनका पारिश्रमिक नहीं बाँटा है। कहानी के विकास में जिन पात्रों का अत्यधिक संपर्क रहा है वही अन्त में जाकर खड़े किए गए हैं। हम लेखक से इसी कोटि के उपन्यास की आशा करते भी थे।

'पतिता की साधना' एक 'मौलिक सामाजिक उपन्यास' है। लेखक हैं हिन्दी के यशस्वी कहानीकार और औपन्यासिक पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी। उपन्यास का आकार काफ़ी बड़ा है, तीन सौ पृष्ठों को वह घेरे हुए है। उपन्यास को हम एक लम्बी कहानी कह सकते हैं; ऐसी कहानी, जो

जीवन के एक ही सूत्र को हिलाकर चुप नहीं हो जाती; उसके रेशे-रेशे को हमारे सामने झलकाने का प्रयत्न करती है; हम बिना प्रयास ही 'वह किस किस्म के तन्तुओं का बना है' जान जाते हैं। कहानी कहना और सुनना मनुष्य जाति की प्राकृतिक भूख है। उसमें कुछ ऐसे हैं जो कहे बिना रह नहीं सकते और कुछ ऐसे, जो केवल सुन ही सकते हैं, कह नहीं सकते। 'कहानी कहना' भी एक प्राकृतिक देन है, जीवन के अनुभवों से उसकी शक्ति बढ़ती है। केवल कवि ही 'पैदा' नहीं होता कहानीकार भी पैदा होता है; ठोंक-पीट कर उसे बनाया नहीं जा सकता। पं० भगवतीप्रसाद इस श्रेणी के कहानीकार हैं वे कहानी कहेंगे, हज़ार बार मना करने पर भी कहेंगे। उनका यह स्वभाव है, प्रकृति-धर्म है।

कहानी कहने के भी तरीक़े हैं। उनका भी 'टेकनिक' है। कई बार प्रसिद्ध कहानीकारों के सामने प्रारम्भ करने की अड़चन आ खड़ी होती है। प्रयत्न करने पर भी वे जो कुछ लिखते हैं, उसे पढ़ने के लिए आँखों में लालच नहीं पैदा होता—"प्रथमग्रासे मक्षिका पात:" इसी को कहते हैं। इसी प्रकार उपसंहार करते समय भी यही समस्या विस्फारित नेत्रों से कहानीकार को देखने लगती है। वाजपेयीजी इन दोनों अड़चनों से मुक्त हैं।

हिन्दी के एक कीर्ति-लब्ध कहानीकार तो ऐसी परिस्थिति में कई बार असफल हो चुके हैं। खींच-तानकर अंत कर देने की धुन में कुछ पात्रों की वे आत्म-हत्या कर देने की सलाह दे देते थे; चाहे कहानी की घटना-धारा का पानी उन्हें मार डालने के लिए गहरा न भी हो। पाठक उनके पात्रों को इस तरह बुचबुचाते देखकर हँसने लगता है और कहने लगता है—"तुम भले ही इनके मुँह में पानी उँड़ेलो; ये तुम्हारे चुप कर देने पर भी बोलेंगे और तुम्हें कोसेंगे।" जब तक घटनाओं का स्वाभाविक बिकास नहीं हो लेगा; पात्र का सहसा अन्त नहीं हो सकेगा। पात्र को एक बार कहानी की दुनियाँ में प्रवेश कर और उसमें प्राण भरकर कहानीकार उससे मनमाने ढँग से छुट्टी नहीं ले सकता।

'पतिता की साधना' को कहने का तरीक़ा सीधा-साधा है। कहानीकार एक इतिहासकार का रूप धारण कर घटनाओं का वर्णन करते जाते हैं; वर्णन के साथ ही आलोचना भी। उपन्यास की वस्तु (Plot) पहिले पहल

तो अस्तव्यस्तसी-शिथिल प्रतीत होती है पर जब हम उनके किनारे पहुँचने लगते हैं तो बिखरे सूत्र एक हो जाते हैं और इस तरह वह कसी हुई (Organic) बन जाती है। यद्यपि उसमें ऐसे 'तार' भी हैं, जो पूरे सूत्र में गुँथ नहीं पाए हैं तो भी उनसे प्लाट में शिथिलता नहीं आने पाई है। प्रत्युत उन्होंने 'प्लाट' में प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले पात्रों में चमक लाने में सहायता पहुँचाई है। संक्षेप में वस्तु है—नंदा एक ग्रामीण ज़मींदार की बहू है जिसकी आँखों में उसके पति की छाया ही विवाह के समय पड़ सकी है; मूर्ति रूप से उनमें बस नहीं पाई। वह विवाह होने के बाद, एक बार भी अपने पति के घर नहीं गई, पति-मिलन के पूर्व ही उसके सुहाग का सिंदूर पुछ गया। वह विधवा हो गई और अपने भाई-भौजाइयों के साथ रहने लगी। छोटे देवर के विवाह के समय वह अपनी स्वसुराल जाती है। वहाँ मेहमानों में उसके रिश्ते में लगनेवाला देवर हरिनाम भी आता है। वह नन्दा के सलोने रूप पर मोहित हो जाता है। नंदा अपनी नंनद चन्द्रमुखी के विवाहोत्सव के उन्माद में स्वयं उन्मादिनी बन जाती है और हरिनाम के भुज-पाश में बँध जाती है। विवाह हो जाने के बाद वह अपने भाइयों के यहाँ लौट जाती है। वहाँ सहसा एक दिन हरिनाम पहुँच जाता है और नन्दा केवल उसकी भुजाओं में ही नहीं बँधती, वह अपनी भावज को 'अपनी दूसरी धोती पहने हुए, सोने के कमरे के निकट, द्वार की चौखट पर, उदास बैठी हुई अपने ऊपर धीरे-धीरे पंखा झलते' हुए भी दीख पड़ती है। परिणामत: उसे उसके बड़े भाई भौजाई कानपुर में छोड़ जाते हैं। वहाँ उसे 'प्रसव' होता है और फिर वह वेश्याओं के मुहल्ले में 'वेश्या' कहलाते हुए भी अवेश्या रहती है। हरिनाम अपने भाई से झगड़ा होने के कारण एक व्यक्ति द्वारा चलाये गये मान-हानि के मामले में जेल जाता है। वहाँ से छूटकर अपने 'कर्म' के पश्चात्ताप में आँखों को अंधा बना लेता और 'सूरदास' के रूप में कानपुर में ही भिखारियों के बीच रहने लगता है। भूलते-भटकते हुए वह नन्दा से मिलता है और फिर अन्त में नन्दा के नन्दोई के ज़रिए उस का सारा भेद खुल जाता है और फिर सब एक हो जाते हैं।

उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण स्वाभाविक ही नहीं है, सजीव भी है। 'नन्दा' वेश्या कहलाकर भी बारह वर्ष तक अवेश्या कैसे रही, यह प्रश्न उन्हीं को सता सकता है जो व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न होनेवाली

भावना को नहीं समझते। 'नन्दा' मामूली स्त्री के रूप में चित्रित नहीं की गई और न उसे मनुष्येतर ही बनाया गया है। वह जितनी स्वाभाविकता के साथ पतित हुई है उसके हृदय में पाप-पुण्य का द्वन्द्व अहर्निश होता रहा है। उसने केवल 'एक' को अपना सर्वस्व लुटाया; और जिसकी वह पुजारिन थी, उसी को अपने हृदय के आसन पर, अंत तक बिठलाये रही। जिस तरह 'नन्दा' का चरित्र, लेखक ने ऊँचा उठाया है उसी प्रकार 'हरिनाम' भी खूब ऊँचा उठता है। वह 'नन्दा' जैसी नायिका का सर्वथा नायक बनने योग्य है। उसकी साधना भी ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाली है, वह रूप-ज्योति पर शलभ के समान टूट पड़नेवाला 'कीड़ा' मात्र नहीं है; उसके पास सिद्धान्त भी है। उन्हीं को सत्य बनाने के लिये वह दर-दर फिरा। लाखों यातनाएँ सहीं। अन्य पात्र भी अपने निर्धारित कार्य-भार का ठीक तरह से निर्वाह करते हैं। किसी भी पात्र को उठा लीजिए, उस पर जिस सोसाइटी का रंग चढ़ा हुआ है, वह उसी का हूबहू चित्र दीख पड़ता है। कृष्णगोपाल, देहाती ज़मीदार का ऐसा चित्र है जिसकी आकृति के पहचानने के लिए 'टार्च' फेंकने की ज़रूरत नहीं है। उनके मैनेजर भी चुनिन्दे मुख़्त्यार हैं जिनका पेशा ही मालिक के सामने 'ठकुरसुहाती' कहना और ग़रीब प्रजा पर जुल्म ढाने के लिये मालिक को प्रोत्साहित करना है। नन्दा की बड़ी भौजाई उसके भाई की दूसरी पत्नी है। अत: उसके पति उससे स्वभावत: कुछ 'दबते थे'। स्वभाव का चिड़चिड़ापन उसका हर जगह झलक उठता है। उसके स्वभाव को संतुलित करने के लिये उसकी देवरानी की रचना की गई है, जिसके सौंदर्य प्रेम ने नन्दा के रेतीले जीवन में 'ओयसिस' खड़े कर रखे थे। सहदेव मामा, जिस तरह देहाती बूढ़े हुआ करते हैं, वैसे ही हैं। इसी प्रकार भिखमंगों का चरित्र-चित्रण भी सजीव हुआ है। बारात का वर्णन तो इतना अधिक विस्तृत है कि उससे बहुत सी बातें सीखी जा सकती हैं। उसे विस्तृत करने का भी कारण है क्योंकि वहीं नायिका के नाज़ुक जीवन के बाँध में फिसलाहट प्रारम्भ होती है। उसके यौवन भरे मनोभावों को उस ओर ले जाने के लिये 'चन्द्रमुखी' के विवाह की उद्दाम भावनाएँ सीढ़ी का काम दे रही हैं; वह अनभ्यस्त अल्हड़ छोकरी उन पर चढ़कर सँभली न रह सकी। पात्रों के चरित्र-चित्रण में कहानीकार ने अपने मनोविज्ञान और समाज की अवस्था के सूक्ष्मनिरीक्षण का अच्छा परिचय

दिया है। उनमें हमें यथार्य कल्पना (Realistic Imagination) का सुन्दर स्वरूप दीख पड़ता है। हिन्दू समाज में विधवा का क्या स्थान है, इसे कपोलों को आँसुओं से सतत तर रखनेवाली 'नन्दा' से पूछो। इस उपन्यास की सफलता, उसके हूबहू वर्णन (Graphic description) में है। वर्णन कहीं-कहीं इतना वास्तविक हो गया है कि प्रतीत होता है कहानीकार अपने पाठक की ग्राह्य-शक्ति की परीक्षा ले रहे हैं। एक जगह 'नन्दा' को हरिनाम के भुजपाश में भरकर और उस पर शतशः चुम्बनों की वर्षा कर भी उन्होंने उसकी 'धोती बदलवा' ही डाली! 'प्रसंग' का इतना खुला वर्णन आवश्यक न था। इसी एक स्थल को छोड़कर हमें उनके वर्णनों ने अँगुली उठाने का अवसर नहीं दिया। आयरिश कवि आस्कर वाइल्ड के विषय में कहा जाता है कि वह परस्पर विरोधी बात और सुभाषित कहने में इतना पटु था कि उनका अनुकरण आज 'शा' जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार भी कर रहे हैं। 'पतिता की साधना' में ऐसे वाक्यों की कमी नहीं है जो सुन्दर सुभाषित के रूप में न कहे जा सकते हों। उदाहरण के लिये हम यहाँ दो तीन ऐसे वाक्य उद्धृत करते हैं।

(१) अन्याय को सहन न करके जो जाति मर मिटती है, मैं नहीं मानता कि कभी उसका विनाश सम्भव है। (२) मैं आज के विद्रोह को इसलिए स्वीकार करता हूँ कि वह कल के सहयोग को जन्म देता है। (३) जो लोग आज एक बात को ज्ञान या अज्ञान में सोच समझ कर या बिना सोचे हुए ही कर डालते हैं और उसे 'भूल' कहकर अलग जा खड़े होते हैं वे बिलकुल नहीं सोचते कि उनके इस अनिश्चित स्वरूप के कारण कितनी निर्मल और निर्दोष भावनाओं की हत्या हो जाया करती है। (४) जनता की उत्तेजना को सदा दबाये रखना उसकी उस स्वाभाविक वीरता और साहस की भावना को नष्ट करना है, जो समाज के संगठन का प्राण है।

उपन्यास में एक-दो स्थल पर लेखक भूले से दीखते हैं। पृष्ठ २७० पर 'चपरासी ने हरी से कहलाया—कहो ईश्वर को हाजिर नाजिर जानकर सच कहेंगे; सच के सिवा 'झूठ बिलकुल न कहेंगे।' यहाँ 'हरी' जो दफा ५०० भारतीय दण्ड-विधान के अन्तर्गत अभियुक्त है, 'शपथ' लेकर बयान देता है। फौजदारी मामलों में भारतीय कानून में मुलज़िम के बयान के लिये 'शपथ' का विधान नहीं है; हाँ, ब्रिटिश क़ानून में यह विधान है। इसके

अतिरिक्त मजिस्ट्रेट अभियुक्त के बयान पर ही बिना स्वतन्त्र शहादत लिए उसे सज़ा नहीं दे सकता और मुलज़िम का बयान इस्तग़ासे की शहादत होने पर लिया जाता है।

पर इस कानूनी 'प्रोसीजर' की ग़लती के कारण 'चरित्र-चित्रण' में कोई फीकापन नहीं आने पाया। हम 'पतिता की साधना' की हिन्दी के अच्छे उपन्यासों में गणना करते हैं। उसका प्रारम्भ और अन्त दोनों प्रभावोत्पादक है। कई उपन्यासकारों के समान उन्होंने अपने सभी पात्रों को अन्त में स्टेज पर खड़ाकर उन्हें उनका पारिश्रमिक नहीं बाँटा है। कहानी के विकास में जिन पात्रों का अत्यधिक सम्पर्क रहा है वही अन्त में लाकर खड़े किये गये हैं। हम लेखक से इसी कोटि के उपन्यास की आशा करते भी थे।

'गुप्तधन' : एक समीक्षा

ले०—श्री जगदीशनारायण त्रिपाठी, एम० ए०

वाजपेयीजी हिन्दी के उच्चतम उपन्यासकारों में से हैं। उनकी कृतियों में हमें थैकरे (Thackeray) का हास्य तथा व्यंग इलियट (Eliot) की दार्शनिकता और डिकेंस (Dickens) के मानव-प्रेम के एक साथ दर्शन होते हैं। वाजपेयीजी हमारे समाज के मध्यवर्ग के चित्रकार हैं। इस संकुचित क्षेत्र के भीतर विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाना उनका उद्देश्य है और 'गुप्तधन' द्वारा वे मानव को अभीष्ट सुपथ प्रदर्शित करने में पूर्णतः सफल हुए हैं। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों पक्षों को लेकर लिखा हुआ यह उपन्यास भाव, भाषा, शैली और विधान—सभी दृष्टियों से निस्संदेह एक उत्कृष्ट उपन्यास है।

उपन्यासकार जीवन का स्रष्टा होता है, जिसकी व्याख्या वह अपने विचारों के अनुसार करता है। वैसे तो सभी उपन्यासों में कोई-न-कोई उद्देश्य

निहित होता है, किन्तु सामाजिक उपन्यासों की कथावस्तु अधिक संयम के साथ विशेष आशय लिये हुए नियोजित होती है और विरलता की भूमि से खिंचकर सामूहिक जीवन के क्षेत्र में आती है। ऐसे उपन्यासों का आकर्षण कथानक से हटकर पात्रों, उनके पारस्परिक व्यवहारों तथा उस समाज की रीति-नीति में केन्द्रित हो जाता है जिसके वे पात्र हैं और ये पात्र भिन्न परिस्थितियों में पड़कर तथा नवीन व्यक्तियों के संसर्ग में आकर जिस भाँति आचरण करते हैं वही मनोरंजन का विषय बनता है।

'गुप्तधन' यशस्वी कथाकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी का मनोवैज्ञानिक, मौलिक सामाजिक उपन्यास है। आपने 'आश्वासन' में कहा है—"वह सत्य, जो हमारे मन, वचन और कर्म की एकता का एकमात्र सूत्रधार है। वही हमारा बल है, वही हमारी शक्ति। उसके द्वारा हम अपने आपको ही नहीं, समाज और देश को भी सुखी, सम्पन्न और स्मृद्धिशाली बना सकते हैं।" सत्य के बिना जीवन निरर्थक है, इसी सत्य का चित्रण लेखक को अभीष्ट है। उद्देश्य-सिद्धि के लिये ही उपन्यासकार ने मानव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में वाजपेयीजी ने समाज के एक मध्यवर्गीय गृहस्थ के जीवन से कथावस्तु का चयन किया है और मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से मानव-हृदय में रहनेवाली सात्त्विक और तामस इन दोनों वृत्तियों का सफल निरूपण किया है। मनुष्य सत् और असत् विचारों का केन्द्र है उनके हाथों में नाचनेवाली कठपुतली है। उपन्यास में इस दृष्टि से आचार्य गौरीशङ्कर, सत्य, वेद, करुणा, चेतना आदि ऐसे पात्र हैं जिनमें सद्विचारों की प्रधानता है और माया, मन्मथ, ज्ञान, प्रेरणा आदि ऐसे पात्र हैं जिनमें असत् विचारों का प्राबल्य है।

आचार्य गौरीशङ्कर का चरित्र ही परम पावन महामानव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। वे प्रयाग-विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफ़ेसर थे। अपने कार्यकाल के अन्त में कुछ वर्षों के लिये दर्शन-विभाग के अध्यक्ष भी हो गये थे और तब आचार्य के स्थान पर गुरुदेव कहलाने लगे थे। "व्यक्तित्व, प्रभाव, लक्षण और गुणों की सीमाओं में असीम बनकर वे एक जाग्रत, चेतन और कर्मठ हिमालय के अपने नामानुरूप, उच्च कोटि के वह शिखर थे, जो

दृढ़ता, उज्ज्वलता, पवित्रता और कर्मण्यता में भारत का गौरव और संसार का अमिट ऐश्वर्य बना हुआ है।" गुरुदेव स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर किन्तु सरल व्यक्ति थे। आत्मश्लाघा का मोह उन्हें स्पर्श तक नहीं कर सकता था। अपराध को नतमस्तक हो स्वीकार कर लेना उनके स्वभाव की विशेषता थी। उन्हें जीवन में दिखावा पसन्द नहीं था। गोष्ठियों और सम्मेलनों में वे यदा-कदा ही सम्मिलित होते थे, चाहे वह अन्तरंग हो या सार्वजनिक। वे क्रोधी स्वभाव के नहीं थे। विरोधी मतों और तर्कों का उत्तर वे कोमल, संयत और शिष्ट भाषा में देते थे। मादक द्रव्यों से उन्हें सर्वथा अरुचि थी। इस विषय में कतिपय उच्छृंखल, धृष्ट और मनचले छात्रों का कहना था—"अजी शराब की शक्ल भी उन्होंने कभी देखी है, जो उसके गुणों अथवा अवगुणों के विषय में वे एक शब्द भी कह सकें। फिर उमरखैयाम जैसे फिलासफ़र को समझना। नामुमकिन है जनाब नामुमकिन, उनके लिये।" गुरुदेव के चरित्र की दृढ़ता का परिचय हमें उस समय मिलता है जब लोगों के लाख कहने पर भी श्मशान में अपनी मृत पत्नी के शरीर को अग्नि देना वे अस्वीकार कर देते हैं। वे दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे, किन्तु उनका अध्ययन ज्ञान के विभिन्न अंगों को ले कर पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। उन्हें ग्रन्थों में ही नहीं ग्रन्थकारों में भी अपार श्रद्धा थी। गुरुदेव को प्राचीनता के प्रति मोह एवं नवीनता से एक प्रकार की घृणा सी थी। परिवर्तित युग में मानव की दशा को देखकर उनका हृदय रोया करता था। "आज एक जाति दूसरी जाति के नाश पर तुल गई है, अबोध शिशुओं को स्तन्य-पान कराते हुए ललनाओं की लाज आज संकट में है। जिन बालकों को शिक्षा-सदनों में अध्ययन करना चाहिए वे सड़कों, रेलों और मेलों में लैमनड्राप्स बेचते फिरते हैं! मनुष्य ने आज एक दूसरे का विश्वास खो दिया है।" मन्मथ की दुर्घटना पर गुरुदेव के कथन में कैसा लौकिक सत्य निहित है!—"सदा ऐसा ही होता है। हर रचना के पीछे एक संहार और संहार के पीछे एक सृष्टि छिपी रहती है।" इन शब्दों में परिवर्तित जगत की कितनी सुन्दर व्याख्या है! गुरुदेव का विश्व कल्याण के प्रति विशेष मोह था। इस प्रकार गुरुदेव की वेशभूषा, बातचीत, व्यवहार, विस्तृत अध्ययन तथा परोपकार सभी कुछ उनकी महानता को प्रकट करता था। उनका चरित्र एक उदार, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, सात्त्विक, साधुपुरुष का चरित्र था। किन्तु इतना होते हुए भी

गुरुदेव की आत्मा को शान्ति नहीं मिलती थी। उनके मुख से निकला प्रत्येक शब्द यह घोषित करता था कि उनके हृदय में कहीं कोई ऐसी भयंकर ज्वाला जल रही थी जिससे वे विक्षुब्ध रहा करते थे। परन्तु उसके कारण का ज्ञान किसी को न था। अपनी पत्नी का स्मरण करते ही वे व्यग्र हो उठते थे। अंत में एक दिन स्वयं उन्होंने इस रहस्य का उद्‌घाटन कर ही दिया। अपनी यौवनावस्था में उन्होंने अपनी सुन्दर पत्नी को असती समझा था, समझा था कि वह दुराचारिणी है, एक सन्यासी के साथ उसका अनुचित सम्बन्ध है; किन्तु यह उनका भ्रम था। जब से उन्हें यह विश्वास हुआ कि उनका यह भ्रम था तभी से वे पश्चाताप की ज्वाला में जलते जा रहे थे। वे एक पूर्ण मनुष्य थे। उनकी मनुष्यता के विषय में सत्य के ये वचन चिरस्मरणीय रहेंगे—"संसार में सत्य और शिव का समर्थन आप से अधिक कर ही कौन सकता है? निरन्तर व्यथा से, भावगोपन से, आत्म-संताप की अनन्त उग्र ज्वाला से, पल-पल के अमूल्य उरदोलन से जो भी विष निकला, उसे आप चुपचाप कण्ठगत करते गये हैं। अमृत ही अमृत आपने विश्व को दिया है। इन दशाओं में आप यदि मनुष्य न हों, तो यह जगत् मनुष्यहीन है, यह संसार वन्य जीव जन्तुओं से पूर्ण केवल एक गहन कान्तार है!"

सत्यप्रकाश उपन्यास का नायक है। वह अध्यापक वेदप्रकाश की सबसे बड़ी संतान है। वेदप्रकाश के अनुज ज्ञानप्रकाश ने सत्य को गोद ले लिया है। सत्य एक सुकुमारहृदय व्यक्ति है। यही कारण है कि उसकी मित्रता धनिकों से न होकर एक दीन छात्र विनय से है। उसे कर्म पर विश्वास है। वह धन को साधन मानता है, साध्य नहीं। मज़दूरों और दीनों से उसे स्वाभाविक प्रेम है। होली के उपलक्ष में फैक्ट्री के कर्मचारियों को सोमवार की छुट्टी देना और घनश्याम की बीमारी के लिये उसकी मज़दूरी के शेष रुपये उसके भाई को दे देना, ये दोनों घटनाएँ इस बात की द्योतक हैं! ज्ञानप्रकाश से कहे हुए सत्यप्रकाश के शब्दों में समाजवाद की झलक मिलती है—मज़-दूर भरोसा न किसी नये-पुराने मैनेजर का करता है और न मालिक का। क्योंकि उन्हें धीरे-धीरे मनुष्य की कृपा पर जीने की अपेक्षा अपनी मेहनत की कमाई और ईमानदारी पर जीने का अभ्यास हो गया है।" सत्य बी०ए० का विद्यार्थी है, किन्तु वय के अनुपात में अधिक बुद्धिमान है। पदार्थों के रूप, व्यक्तियों के व्यवहार, उनके पारस्परिक सम्बन्ध, उनमें स्वार्थों का संघर्ष,

उनकी आर्थिक विषमता, उनके आपसी छल-प्रपंच और दाँव-पेंच—जैसे सभी बातों पर उसकी एक व्यापक दृष्टि है। भले ही वह कुछ न कहे, पर उसकी तीव्र, सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से कुछ भी परे नहीं है। मन्मथ ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचा, फुल्लो ने उसकी शिकायत की, किन्तु अपनी व्यापक दृष्टि और सत्य के बल पर वह अछूता बच गया! सत्य के जीवन का लक्ष्य उच्च है, वह अपने जीवन के द्वारा देश को कुछ दे जाना चाहता है। "मेरे सामने मेरा महान देश है, अचेतन और अर्द्धसभ्य, दरिद्रता और कायरता, क्षुद्रता से ओत-प्रोत......मेरी बाँसुरी उन अर्द्धमृतकों के लिये है जो निराश जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। मरते क्षण जीवन का कम-से-कम एक राग तो सुनते जायँ।" सत्य के विचारों के अनुसार सुन्दर और असुन्दर दोनों एक से ही हैं—"सुन्दरता तो भगवान की एक देन है गुरुदेव रह गई कलुष की बात, सो वह तो समाज की मर्यादाओं, नीतियों और उनके मन्तव्यों का विरोधी आचरण है, उसके नियमों को तोड़ने की क्रिया-मात्र इसके सिवाय कलुष की कोई सत्ता नहीं।" सत्य को आत्मश्लाघा से अत्यन्त घृणा है, उसे वह मानव के प्रति अभिशाप मानता है। उसके विचार से क्षमा का कोई मूल्य नहीं ही है। असत्यवादी को अवश्य प्रतिकार दिया जाय ऐसा उसका विचार है। परसेवा को वह अपना पावन कर्तव्य समझता है। सत्य एक सफल वक्ता भी है। हिन्दी-साहित्य-परिषद् द्वारा आयोजित वाक्-प्रतियोगिता में भाषण देते हुए हमें सत्य के विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता है। उसके चरित्र में परिहास का भी समावेश है। इस प्रकार सत्य का चरित्र एक प्रिय, उदार, सुहृदय, बुद्धिमान, विद्वान, कर्मण्य, त्यागी, देशभक्त और निष्कपट व्यक्ति का चरित्र है।

मन्मथ ज्ञानप्रकाश की पत्नी माया के दूर के रिश्ते का भतीजा है और ज्ञान की ग्लासफैक्टरी का मैनेजर। तन से उजला पर मन से काला मन्मथ चेतना तथा प्रतिभा का सहपाठी है। वह अपने सम्पर्क में आनेवाली प्रत्येक लड़की से प्रेम और लड़कों से घृणा करता है। यही कारण है कि सत्य के ज्ञान का पक्ष लेनेवाली चेतना के सम्मुख वह सत्य को अप्रत्यक्ष रूप से अपमानित करता है—"वह बंदर तुम लोगों ने क्यों पाल रखा है।" दुनियाँ में ऐसे गधों की कमी नहीं, जो रात-दिन लाइब्रेरी को पीठ पर इसीलिये लादे फिरते हैं कि लोग उन्हें विद्वान समझें।" आदि। मन्मथ सादा जीवन उच्च

विचार पर विश्वास नहीं करता। वह बड़े आकर्षक ढंग से रहता है। यद्यपि वह कभी किसी के समक्ष यह प्रदर्शित नहीं करता कि वह कला, ज्ञान, सौंदर्य आदि की समीक्षा नहीं कर सकता, किन्तु वास्तव में है वह खोखला। देश-विदेश के लब्धप्रतिष्ठ कलाकारों द्वारा चित्रित मूल्यवान चित्रों को भी साधारण चित्र बता देना मन्मथ की अज्ञानता एवं कलाहीनता का प्रमाण है। गुरुदेव बीमारी में अचेतन अवस्था में पड़े हैं और मन्मथ चेतना से कहता है "मैं उपदेश देने का अधिकारी नहीं हूँ। केवल राय दे रहा हूँ। मानना न मानना आपके मन की बात है। बाबूजी जिस दशा में हैं वह चिन्त्य तो खैर है ही, पर ऐसी बात कोई नहीं जो जीवन की धारा को रोक सकती हो। क्या आप कोई पिक्चर देखने नहीं चल सकतीं? दस बजेवाला शो बड़े मज़े में देखने को मिल सकता है।" किसी का पिता बीमार पड़ा हो और कोई उसकी लड़की से सिनेमा का प्रस्ताव करे, यह कैसी लज्जाजनक और घृणित बात है! मन्मथ का जीवन एक विलासी व्यक्ति का जीवन है। नारी और उसका सौंदर्य ही उसके मनन और चिन्तन का विषय है तथा उसको हस्तगत करना ही उसके कार्य-विधि का क्षेत्र है। वह सत्यप्रकाश के विरुद्ध षड्यंत्र रचता है, किन्तु असफल रहता है। उसके पतन की चरमसीमा तब होती है जब वह ४० हज़ार रुपये ग़बन करके प्रेरणा को लेकर कहीं दूर भाग जाता है। मन्मथ के चरित्र में दुराचार, बेईमानी, छल, प्रपञ्च और कृतघ्नता आदि दुर्गुणों का समाहार है। लेखक ने इसे सत्यप्रकाश का प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है।

सत्यप्रकाश के पिता वेदप्रकाश उदार, देशभक्त पुरुष हैं। उनके जीवन का लक्ष्य ही कठिनाइयों से संघर्ष करना है। वह एक विद्वान, अध्यवसायी आदर्श अध्यापक हैं। ज्ञानप्रकाश वेदप्रकाश के अनुज हैं। वह पूर्णरूपेण आधुनिक पूँजीपति हैं। विनय सत्य का सदाचारी मित्र है! वह निर्धन होते हुए भी समाज में सम्मान-पूर्वक रहने का अभिलाषी है। जोधा माली एक स्वामिभक्त सेवक है।

चेतना गुरुदेव की एकमात्र दुहिता है। गुरुदेव के विचारों तथा जीवन का प्रभाव चेतना पर पूर्णरूप से पड़ा है। वह कुशाग्रबुद्धि, स्वभाव से सरल विश्वविद्यालय की छात्रा है। विद्यालय की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भी भाग लेना उसे प्रिय है। उसे पिता की ही भाँति प्राचीन मान्यताओं के प्रति

मोह है। सत्य का उस पर पूरा प्रभाव है। सत्य रूप से सुन्दर तथा आकर्षक नहीं है। अतएव मन्मथ उसे बन्दर कहकर पुकारता है! इस पर चेतना उसे बड़े ही सुन्दर शब्दों में मुँहतोड़ उत्तर देती है "साधारण रूप से स्वरूप जन्मजात होता है। उसमें आदमी का वश क्या है? इसके सिवा केवल रूप आदमी के भविष्य के नाम पर कलंक है! यदि इस बात को हम विचार-पथ के सामने से हटा भी दें तो हमें यह न भूलना चाहिये कि संसार की प्रत्येक वस्तु अपने गुणों में तुलनात्मक है। अर्थात सुन्दर-से-सुन्दर वस्तु भी तुलनात्मक दृष्टि में असुन्दर हुआ करती हैं। मनुष्यता का मूल्यांकन डिग्री, वैभव और रूपमात्र से करना क्या हमें शोभा देता है।"

प्रेरणा कालेज की छात्रा है। उस पर आधुनिक युग की पूरी छाप है। वह स्वभावानुसार मन्मथ को, जिसका "मेकअप बिलकुल रजतपट के कलाकारों जैसा है।" प्यार करती है। प्रेरणा का चरित्र उस नदी की धारा के समान है जो अपनी अल्हढ़ लहरों को लेकर प्रत्येक किनारे से टकराती, स्पर्श करती चलती है और अंत में सागर से मिलकर सदा के लिये अपना अस्तित्व खो देती है। प्रेरणा की स्वच्छता का अन्त हो जाता है, मन्मथ के साथ कहीं भाग जाने में। यह अन्तिम घटना प्रेरणा के चरित्र को अत्यधिक गिरा देती है।

करुणा उपन्यास के नायक सत्य की माँ तथा वेदप्रकाश की धर्मपत्नी है। वह ममता, त्याग, प्रेम एवं सहिष्णुता की मूर्ति है। करुणा भारतीय नारी का सच्चा स्वरूप है। माया ज्ञानप्रकाश की पत्नी स्वार्थिनी, धन का अभिमान करनेवाली एक साधारण नारी है। गोपी की माँ (महाराजिन) गुरुदेव के यहाँ भोजन पकाने का कार्य करती है। वह एक वाचाल घर पर पूरा अधिकार रखनेवाली स्त्री है। इसके अतिरिक्त प्रभा, प्रतिभा, साधना आदि अनेक स्त्री पात्र हैं किन्तु उपन्यास की कथावस्तु में उनका कोई विशेष महत्व नहीं है।

चरित्रचित्रण में वाजपेयीजी को पूर्ण सफलता मिली है। वैसे तो वाजपेयीजी के पात्र 'टाइप' हैं, किंतु उन्होंने उनको निजी व्यक्तित्व प्रदान किया है। पात्रों के लिये आपने मनोवैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग किया है। ज्ञान, सत्य, ब्रह्म, मन्मथ, वेद, कामना, प्रेरणा, चेतना, करुणा, साधना, माया

आदि सभी नाम सार्थक हैं। ये सभी मन की प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। लेखक ने स्थान-स्थान पर मनोवैज्ञानिक रूप को अधिक स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है जैसे—

कामना से चेतना बोली—मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि मेरी जो प्रत्यक्ष कामनाएँ हैं उनकी आप साकार प्रतिमा हैं। कामना बोली—"और आप मेरी चेतना।" इसके अतिरिक्त गुरुदेव का चित्रण बहुत ही सफल, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हुआ है। आचार्य व्याकुल हैं अपनी भार्या के संदिग्ध चरणों के संचालन पर। अपनी सती-साध्वी रूपवती पत्नी पर न जाने कितने व्यक्ति नित्यप्रति शंकाएँ किया करते और इस विषय में न्यूनाधिक ग्लानि का भी अनुभव करते हैं। फिर गुरुदेव तो फिलासफर थे। उनमें संदेह-सृष्टि तो और भी अधिक स्वाभाविक है। उनके हृदय में शंका का बीज वट-वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, किन्तु भ्रम के निवारण होने पर वह पश्चात्ताप करते हैं। अपनी त्रुटि पर पश्चात्ताप करना महान् पुरुषों का ही कार्य है। यह सब कुछ अत्यन्त मनोवैज्ञानिक वर्णन है।

कथोपकथन में भी वाजपेयीजी को अपूर्व सफलता मिली है उनकी शैली विशिष्ट प्रकार की होने के कारण कथोपकथनों द्वारा बात कहने और सुननेवाले की मुद्रा, दोनों के भाव, परिस्थिति, कथानक का तारतम्य, भाषा का माधुर्य, स्वर आदि सभी स्पष्ट हो जाते हैं। सत्य के माता-पिता की बात-चीत, गुरुदेव तथा सत्य का पारस्परिक संभाषण और विनय तथा सत्य का वार्तालाप बहुत ही रोचक और स्वाभाविक हुआ है। देश-काल की दृष्टि से लेखक को कालेज-जीवन का अच्छा ज्ञान है। आधुनिक सभ्यता और कालेज-रोमांस का भी इसमें स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

उपन्यास की कथावस्तु दो कहानियों के मेल से बनती है। एक सत्य-प्रकाश, वेदप्रकाश और ज्ञान के सम्बन्ध से और दूसरी गुरुदेव तथा चेतना को ले कर। दोनों धाराएँ भिन्न-भिन्न हैं। दो कथाओं को लेकर लेखक उलझ सा गया है। पाठक को यह नहीं ज्ञात हो पाता कि कौन सी कथा आधिकारिक है और कौन सी प्रासंगिक?

उपन्यास की भाषा शुद्ध-संस्कृत-गर्भित और काव्यात्मक है। यत्र-तत्र अँगरेज़ी शब्दों का प्रयोग कालेज के वातावरण के अनुकूल हुआ है। भाषा

मुहावरेदार है। छोटे-छोटे वाक्य भी व्यञ्जनापूर्ण हैं। हाव-भाव तथा वेश-भूषा के चित्रण में वाजपेयीजी को विशेष सफलता मिली है। इस कला में वे सिद्धहस्त हैं। पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण शैली गंभीर हो गई है। उपन्यास के पात्र शुद्ध संस्कृतगर्भित भाषा में सौंदर्य, सत्य, ज्ञान कला आदि की समीक्षा-सी करते जान पड़ते हैं। इसीलिये प्रस्तुत उपन्यास साधारण पाठकों के मनोरंजन से दूर हो गया है।

भाषा की दृष्टि से वाजपेयीजी के सम्पूर्ण कथा-साहित्य को यदि हम हिन्दी कथा-साहित्य में उनका स्थान निर्धारित करें तो दृढ़ता-पूर्वक कह सकते हैं कि वे सर्वोच्च और अद्वितीय हैं। वाजपेयीजी भाषा के धनी-साहित्यिक हैं। उनकी भाषा श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव तथा श्री भगवतीचरण वर्मा की भाँति त्रुटिपूर्ण नहीं होती है। इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त न होगा कि उनकी भाषा व्याकरण दोषों से मुक्त होती है प्रत्युत अभिव्यक्ति की विशिष्ट शैली के कारण वह पाठक को आनन्द-विभोर भी कर देती है। श्रीवृन्दावनलाल वर्मा अपने उपन्यासों में बहुत ही साधारण ढंग से कथा कहते चलते हैं। उनके बड़े-बड़े कलेवर वाले उपन्यासों में एक भी स्थल ऐसा नहीं मिलता जिसे भाषा की दृष्टि से कलापूर्ण कहा जा सके। किन्तु वाजपेयी जी की प्रत्येक कृति की एक-एक पंक्ति, हरएक स्थल और प्रत्येक पृष्ठ भाषा और विषय की कलात्मकता के कारण पठनीय और मनन करने योग्य होती है। आस्कर वाइल्ड की भाँति परस्पर विरोधी बातें और सुभाषित कहने में तो वाजपेयीजी बहुत ही पटु हैं, जिसके फलस्वरूप कथन में सदा सौंदर्य वृद्धि होती जाती है। वे गद्य में ही पद्य लिखते हैं। यदि उन की कतिपय पंक्तियाँ अन्यत्र निकालकर दी जायँ तो वे पुकार-पुकार कर कहने लगेंगी कि ये उसी साहित्यकार की पंक्तियाँ हैं जिसने अपनी कला से हिन्दी कथा-साहित्य को समुन्नत कर दिया है। इस प्रकार वाजपेयीजी के पास कथन के साथ-साथ कथन की विशेष शैली भी है जिससे उनकी कृतियों में मणि-कांचन-संयोग उपस्थित हुआ है। अभिव्यक्ति ही कला है। जिसके पास अभिव्यक्ति का उपयुक्त माध्यम नहीं है, उसे सफल साहित्यकार कैसे कहा जा सकता है? इस दृष्टि से वाजपेयीजी एक सफल कलाकार हैं और उनकी इस कला का पूर्ण विकास हमें उनके आलोच्य उपन्यास 'गुप्तधन' में मिलता है।

कमी तो विधि के विधान में भी होती है। मानव स्वयं अपूर्ण है। अतएव उसकी कला-कृति भी अपूर्ण होती है। किसी भी वस्तु की पूर्णता की संज्ञा प्रदान करना विकास-पथ को अवरुद्ध करना है। प्रस्तुत उपन्यास में भी कुछ त्रुटियाँ हैं; किन्तु वे उसकी विशेषताओं के समक्ष नगण्य हैं। वाजपेयीजी हिन्दी के उच्चतम उपन्यासकारों में से हैं। उनकी कृतियों में हमें थैकरे (Thackeray) का हास्य तथा व्यंग, इलियट (Eliot) की दार्शनिकता और डिकेंस (Dickens) के मानव-प्रेम के एकसाथ दर्शन होते हैं। वाजपेयीजी हमारे समाज के मध्यवर्ग के चित्रकार हैं। इस संकुचित क्षेत्र के भीतर मानव को मानवता का पाठ पढ़ाना उनका उद्देश्य है और 'गुप्तधन' के द्वारा वे मानव को अभीष्ट सुपथ प्रदर्शित करने में पूर्णत: सफल हुए हैं। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों पक्षों को लेकर लिखा हुआ यह उपन्यास, भाव, भाषा, शैली और विधान—सभी दृष्टियों से निस्संदेह उत्कृष्ट उपन्यास है।

चलते-चलते : एक मोहक उपन्यास

ले—डा० ब्रजमोहन गुप्त, एम० ए०, फ़िल० डी०

हास्य, व्यंग और वाक्पटुता की ऐसी छटा सारे उपन्यास में छिटकी हुई है जो मन को मोह लेती है। 'पूर्वकथा' में जैसे घनीभूत वातावरण की सृष्टि उपन्यासकार ने की है हिन्दी में अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है। पात्रों के चित्रण की एक-एक रेखा बड़े सतर्क और सधे हुए हाथों द्वारा खींची गई है। इतनी सजीव, सरस और सशक्त रचना प्रदान करने के लिए मैं वाजपेयीजी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

चौवन वर्ष पूरे करने के उपलक्ष में अभी पिछले दिनों श्रीभगवतीप्रसाद-वाजपेयी का अभिनन्दन अनेक स्थानों पर अनेक ढंग से किया गया। हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करते हुए उन्हें चौथाई शताब्दी से भी अधिक समय बीत गया है। उनकी साहित्य-साधना इतनी बहुमुखी और इतनी व्यापक रही है कि वे हिन्दी-पाठकों के सुपरिचित लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व इतना सरल और सजीव है कि जो एक बार उनके सम्पर्क में आया है उन्हें

जीवन भर भूल नहीं सका है। इसलिये मुझे यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि लम्बे मौन के पश्चात् उनकी लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत उपन्यास का विवेचन प्रारम्भ करने से पूर्व परम्परागत ढंग से उनकी अब तक की कृतियों पर विहंगम दृष्टि डालकर उनका परिचय दूँ।

'चलते-चलते' वाजपेयीजी द्वारा आत्म-कथा के ढंग से लिखा गया सवा पाँच सौ पृष्ठ का काफ़ी लम्बा उपन्यास है। उपन्यास के विवेचन का सुविधाजनक ढंग यही है कि पहले पाठकों की जानकारी के लिये संक्षेप में उपन्यास का कथानक दे दिया जाय और फिर उस कथानक के माध्यम से कथाकार ने जो कुछ कहा है और जिस ढंग से कहा है, उस पर प्रकाश डाला जाय। किन्तु प्रस्तुत उपन्यास का कथानक संक्षेप में देने की राह सरल नहीं है! वास्तव में उपन्यास केवल एक कथानक लेकर नहीं चलता। उसमें व्यक्तियों के अनेक समूह और घटनाचक्रों की अनेक शृङ्खलाएँ हैं। यदि सब घटना-चक्रों के द्रष्टा, उपन्यास के नायक राजेन्द्र को उनके बीच से निकाल लिया जाय तो व्यक्तियों के एक समूह का व्यक्तियों के दूसरे समूह से और घटना-चक्र की एक शृंखला का घटना-चक्र की दूसरी शृंखला से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह जाता। यही बात इसी ढंग से भी कही जा सकती है कि पूरे उपन्यास में हज़ार स्नैप-शाट हैं जो केवल एक द्रष्टा के माध्यम से एक सूत्र में पिरोए हुए हैं। वह सूत्र अगर निकाल दिया जाय तो माला के फूलों की तरह सब बिखर जाएँ। फिर भी संक्षेप में कथासार तो देना ही होगा। नहीं तो पूरा विवेचन उन पाठकों के लिए अर्थहीन हो जाएगा जिन्होंने मूल उपन्यास अभी तक नहीं पढ़ा है।

पूरे उपन्यास में घटना-चक्र की महत्वपूर्ण शृंखलाएँ चार हैं। प्रथम शृंखला मुख्य रूप से तीन व्यक्तियों को लेकर बनी है; उपन्यास के नायक राजेन्द्र के पिता पांडेयजी, उसकी माताजी और उसकी तथाकथित चाची। उपन्यास पांडेयजी की शव-यात्रा से प्रारम्भ होता है। नायक के साथ राम-लाल, गौरीशंकर, त्रिवेणी, मामाजी आदि अनेक व्यक्ति हैं। गाँव का एक छोर है और अँधेरी रात है। पास ही एक बैलगाड़ी खड़ी है, उसके ऊपर बाँस और बाँस की खपच्चियों का बना एक विमान है जिस पर पांडेयजी का शव रखा हुआ है। उसकी शांतिकर दाह-क्रिया के लिए सब जमना के एक घाट पर जा रहे थे, अँधेरा पूरा घिर आने पर भी दो मील चले ही

आये। किन्तु फिर रात अधिक हो जाने के कारण विवश होकर प्रात:काल की प्रतीक्षा में ठहर जाना पड़ा। तभी बड़ी ज़ोर की आँधी, पानी और ओले आ गए, लालटैन बुझ गई। सब को समीप के गाँव में जाकर शरण लेनी पड़ी। आँधी-पानी का वेग कम हो जाने पर उस बैलगाड़ी को भी समीप ले आने के लिए लालटेन लेकर जब वे उसके समीप पहुँचे, तो देखा जिस वस्त्र और रस्सियों से पांडेयजी के निष्प्राण शरीर को उस विमान में कसकर बाँधा गया था वह भीगा और धूल से सना हुआ गाड़ी के पहिये के नीचे पड़ा है और पांडेयजी का शव वहाँ नहीं है। रात-भर जब लोग दूर-दूर तक इधर-उधर शव की खोज में भटकते रहे, लेकिन शव का पता लगना तो दूर, किसी प्रकार के मानवीय अथवा अमानवीय वन्यपशु के चिन्ह तक न दिखाई दिये, तब प्रात:काल सब निरुपाय, निराश, खिन्नमन, नतशिर अपने-अपने घर लौट आये।

बाद में पड़ोस के नाते चाची कहलानेवाली राजेन्द्र के लिये स्नेहशील नारी से उसे इस बात का आभास मिलता है कि उन्होंने अपनी तीर्थ-यात्रा में पांडेयजी को सन्यासी के रूप में देखा है और इस प्रकार से कहीं न कहीं अपने पराभौतिक शरीर में, अवश्य जीवित विद्यमान् हैं। कुछ समय पश्चात् चाची फिर तीर्थ-यात्रा के लिए कहीं जाती हैं और अपनी विधवा पुत्री लाली के ज़ेवर भी चुपके से साथ ले जाती हैं।

एक दिन दिल्ली में अचानक राजेन्द्र को चाची एक कैफ़े की मालिका के रूप में मिल जाती हैं और तब उसे ज्ञात होता है कि उसके पिताजी की चेतना उस ओले-पानी की भयानक रात्रि में जब अचानक लौट आई तो सहायता के लिये पुकारने पर विधि के विधान वश यही नारी उसके पास पहुँच गई और उन्हें विमान पर से खोल ले गये। अपनी इन विधवा पड़ोसिन के साथ पांडेयजी का सम्बन्ध तो पहले ही से था, किन्तु यह नया जीवन प्राप्त होने के बाद उन्होंने अपने परिचित संसार से दूर दिल्ली आकर उन्हें पत्नी रूप में ग्रहण करके अपनी एक नई दुनियाँ बना ली। पांडेयजी की निगाहों में उनकी सती सध्वी पत्नी राजेन्द्र की माँ का यही दोष था कि सन्तान की मृत्यु के पश्चात् उनके मन में ऐसा वैराग्य जगा और वे सदा इतनी उदास और खिन्न रहने लगीं कि पांडेयजी के अनेक बार सचेत करने पर भी वह

अपने रूप, यौवन और साज-शृङ्गार के सम्बन्ध में सतर्क और प्रफुल्ल नहीं रह सकीं।

उपन्यास के घटना-चक्र की दूसरी शृंखला प्रमुख रूप से पाँच व्यक्तियों को लेकर बनी है। उपन्यास का नायक राजेन्द्र, उसका मोसेरा भाई बंशी, बंशी की दो पत्नियाँ अर्थात राजेन्द्र की बड़ी भाभी तथा छोटी भाभी और रामलाल जिसके सगे नाना की लड़की बड़ी भाभी है।

बंशी के पिता जी उसके लिये केवल इतना ही छोड़ कर मरे थे, कि वह एक सप्ताह तक खाना खा सकता था ! बाद में उसने लाखों की सम्पत्ति अर्जित कर ली। विवाह के बहुत बाद तक सन्तान न होने पर अपनी पत्नी विमला के आग्रह पर उसने दूसरा विवाह कर लिया। सन्तान दूसरी पत्नी से भी नहीं हुई। जब बंशी की दोनों पत्नियाँ राजेन्द्र की बहन मधु के विवाह में आई हैं तो छोटी पत्नी राजेन्द्र के सम्पर्क में आती है। उनके जीवन में गहरा असन्तोष और अतृप्ति है। वे राजेन्द्र को प्राण, मन और तन से पूरी तरह पा लेना चाहती हैं। राजेन्द्र भी उसके प्रति कम आकर्षण अनुभव नहीं करता, किन्तु आदर्श के प्रति उसके मन में मोह है और वह समाज-भीरु भी है। इसलिए उसके मन प्राण में मंथन चलता रहता है। मानसिक धरातल पर तो वह उनके रूप और सान्निध्य से रस ग्रहण करता रहता है किन्तु व्यवहार के धरातल पर वह सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं होने देता, लेकिन इस मानस-मंथन के फलस्वरूप उसकी दशा इतनी दयनीय हो जाती है कि उसकी माँ की दृष्टि से भी यह बात नहीं छिपती और पुरातन संस्कारों के प्रति श्रद्धा रखने वाली उस स्नेहशील वृद्धा माँ का हृदय भी इस सम्बन्ध में चिंतित हो उठता है कि इस छोटी बहू के जाने के पश्चात् उनके लाल का जीवन किस प्रकार चलेगा।

वंशी की दोनां पत्नियाँ मधु के विवाह के कुछ समय बाद अपने पति के पास कानपुर लोट आती हैं। बड़ी बहू के संतान उत्पन्न होने की सम्भावना नज़र आती है। वंशी उसे लेकर मनोरंजन तथा अमोद-प्रमोद द्वारा अधिक सुखी तथा संतुष्ट रखने के अभिप्राय से दिल्ली आ जाते हैं। छोटी बहू की स्थिति और भी अधिक शोचनीय हो जाती है। अंत में वंशी निश्चित रूप से यह जान जाते हैं कि उनकी बड़ी बहू का प्रेम-सम्बन्ध अपने रिश्ते के भाई

रामलाल के साथ बराबर चलता रहा है और उसके जो संतान होने वाली है उसका वास्तविक पिता रामलाल ही है। वे निश्चित रूप से यह भी जान जाते हैं कि छोटी बहू तन-मन-प्राण से राजेन्द्र के प्रति समर्पित है और राजेन्द्र के मन में भी उसके प्रति कम मोह नहीं है, यह बात दूसरी है कि शारीरिक धरातल पर उसने सामाजिक मर्यादा का उल्लङ्घन न होने दिया हो। जीवन की इतनी बड़ी प्रवंचना का आघात वे सह नहीं पाते और इसी के फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो जाती है। मरने के पूर्व बड़ी बहू को गुजारे के लिए पाँच सौ रुपये प्रति मास देने की बात लिखकर वे दानपत्र में शेष सब सम्पत्ति राजेन्द्र के न्यायशील हाथों में सौंप जाते हैं कि राजेन्द्र और छोटी बहू उनके जीवन-काल में केवल आत्म-मिलन तक ही सीमित रहे हैं, पर अब वे उन्हें देह-धर्म के नाते से भी सुखी और सन्तुष्ट देखना चाहते हैं।

उपन्यास के घटना-क्रम की तीसरी शृंखला लाला साँवरे, उनकी लड़की जमुना, जमुना के पति राय चन्द्रनाथ और एक आवारा राजहंस को लेकर बनी है। लाला साँवरे धनी व्यक्ति हैं। सूद पर रुपया उधार देते हैं। अपनी कन्या जमुना का पालन-पोषण उन्होंने बड़े लाड़-प्यार से किया। इसका विवाह रामचन्द्र नामक सम्पन्न व्यक्ति से कर दिया। बाद में जमुना फिल्म की हैरोइन बनने के मोह में राजहंस के साथ भाग जाती है। बाद में जब वह उससे तंग आ जाती है वो नशे में बुत्त राजहंस को चलती ट्रेन से धक्का देकर नीचे गिरा देती है और बाद में स्वयं पागल हो जाती है। बाद में ज्ञात होता है कि रामचन्द्र महोदय नपुंसक हैं और जमुना की यौन अतृप्ति ही उनके जीवन की विकृतियों का मुख्य कारण है।

घटनाचक्र की चौथी शृंखला का प्रमुख व्यक्ति मुरलीमनोहर है जिसने राजहंस के नाम से जमुना के जीवन में प्रवेश किया था। अर्चना उसके दूर के रिश्ते की बहन है जिसे बिना सामाजिक ढंग से विवाह किए ही उसने पत्नी बना कर रक्खा। बाद में दोनों में मन-मुटाव हो जाता है और दोनों अलग हो जाते हैं। चाहे पुरुष हो या नारी, मुरलीमनोहर जिसके भी सम्पर्क में आता है उसे धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करता है। उसके द्वारा अनेक लड़कियों का जीवन नष्ट हुआ।

घटनाचक्र की इन चार शृंखलाओं के सम्बन्ध में जिन व्यक्तियों का ज़िक्र आया है उनके अतिरिक्त और भी दर्जनों व्यक्तियों का परिचय उपन्यास

में मिलता है जो अपने व्यक्तित्व की छाप पाठक के हृदय पर छोड़ जाते हैं। इनमें दो विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, जिस विधवा को लेकर नायक के पिता ने अपनी अलग दुनियाँ बसा ली उसकी विधवा लड़की लाली और मालती के पति दीक्षित जी की छोटी वैशाली, दोनों ही नायक राजेन्द्र के प्रति समर्पण की भावना अभिव्यक्त करती हैं, दोनों को देखकर राजेन्द्र कभी-कभी विचलित तो हो जाता है किन्तु उन्हें तथा अपने मन को समझाने के लिए बराबर कहता रहता है, तुम मेरी बहन हो, मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ।

इस प्रकार उपन्यास में महाभारत के पर्वों की भाँति पात्रों की संख्या बहुत अधिक है। सब की अपनी अलग-अलग समस्याएँ हैं, सब का अपना अलग-अलग व्यक्तित्व है, उनके सजीव चित्रण में लेखक को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है, किंतु उपन्यास में कथा का प्रवाह बहुत धीमा है। घटनाओं का अभाव उसमें नहीं है, किंतु उनकी अपनी स्थिति अलग है। अमावस्या की अँधेरी रात के निरभ्र आकाश में जड़े तारों की भाँति वे घटनाएँ अपनी-अपनी जगह चमकती हैं और सब मिलकर झिलमिलाहट-युक्त जीवन प्रस्तुत कर देती हैं। वे सरिता की उन असंख्य धारों की तरह नहीं हैं जो मूलाधार को इतनी तीव्र गति प्रदान कर देती हैं कि पाठक का मन जहाँ एक बार उस प्रवाह में पड़ा कि उस के साथ बह जाता है, बिना किसी प्रयास के बरबस बहता ही चला जाता है, चिंतन, दर्शन, तर्क-वितर्क तथा प्रवचन के झाड़-झंखाड़ में कभी-कभी तो कथा का प्रवाह प्रायः बिलकुल लुप्त हो जाता है।

उपन्यास का नाम 'चलते-चलते' बिलकुल सार्थक है। उसका नायक राजेन्द्र अपने जीवन-पथ पर चलते-चलते अपने चारों ओर जो कुछ देखता है, जो कुछ अनुभव करता है उसका वर्णन करता है, विश्लेषण करता है प्रारम्भ से ही वह अपने आपको आदर्शवादी मानता है, अपने को देवता समझने के मोह का भी उसमें अभाव नहीं है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही जब फ़ोटोग्राफ़र मोदी ने उससे पूछा "कैसा फ़ोटो खिचाना चाहते हैं आप?" तो उसके मन में आया कि कह दे, "जो उस शैतान की नज़रों में जँच कर रह जाय, जो मुझे देवता से मनुष्य बनाने वाली है।" और यह शैतान उसकी छोटी भाभी है जिनके चरणों की धूल लेने के लिए उसके हाथ, माँ द्वारा परिचय दिये जाने पर, प्रथम दर्शन में झुके थे! उपन्यास के प्रारम्भ में

ही उसने अपने आपको 'सौंदर्य-द्रष्टा' और 'सौंदर्य-स्रष्टा' कहा है, किंतु केवल सौंदर्य की सृष्टि में लीन तटस्थ सौंदर्य-द्रष्टा वह नहीं है। नारी के रूप का लोभ उसकी नस-नस में समाया हुआ है। प्रत्येक तिरछी चितवन उसके हृदय को वेध देती है और आदर्शवादी होने के नाते संयम की वांछनीयता और नारी-रूप के आकर्षण के संघर्ष में उसका मन सदा उलझा रहता है। छोटी भाभी, हास्पिटल की नर्स मिस लाज, लाली, फ़ोटोग्राफ़र मोदी साहब की बहन हीरा मानिक, जमना, वैशाली आदि जितनी भी सुन्दर नवयुवती उपन्यास में आती हैं सब के रूप ने राजेन्द्र को आकर्षित किया है। उनमें से अधिकांश को देखकर उसका मन विचलित हो गया है। नारी के साथ यौन-सम्बन्ध की समस्या को लेकर वह शारीरिक धरातल पर सामाजिक मर्यादा का निर्वाह करने के लिए सदा सतर्क है और इसीलिए वह अपने को संयमी, सन्त, यहाँ तक कि देवता मानने की भ्रांति में पड़ा रहता किंतु केवल मानसिक धरातल पर स्नेह के आदान-प्रदान से उसके मन का सन्तोष कभी नहीं होता। सामाजिक मर्यादा का ध्यान शारीरिक धरातल पर जिन स्नेहियों का उपभोग करने से उसे वंचित रखता है, मानसिक धरातल पर वह चेतन और अर्धचेतन अवस्था में उनका रस बराबर लेता रहता है। इस प्रकार उसके जीवन में मानसिक धरातल पर उस संयम और साधना का अभाव है जो मानव का विकास महा-प्राण मानव के रूप में करने की पहली शर्त है। रूप और प्रेम की उस साधना का भी उसके जीवन में अभाव है जो मन को एक स्थान पर ऐसा कस कर बाँध देती है कि फिर वह कम-से-कम कुछ समय तक तो इधर-उधर नहीं भटकता।

मानवीय दुर्बलताओं के विरुद्ध स्वच्छ मन के उस संघर्ष और पूर्ण आत्मदान या विवश पराजय का भी उसके जीवन में अभाव है जो शरद् की रचनाओं में नायक को पाठकों की सहानुभूति और उसके माध्यम से स्नेह का पात्र बना देते हैं।

कर्म की दृष्टि से राजेन्द्र के जीवन का पलड़ा बहुत हल्का है। पगली जमना को दिल्ली की सड़कों पर खोज निकालने और उसके उपचार का प्रयत्न करने के अतिरिक्त पूरे उपन्यास में उसने और कोई ठोस कार्य किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। वह अपने चारों ओर फैले हुए जीवन-प्रवाह का द्रष्टा अधिक है, उसे मोड़ने वाला कम। वह सतर्कता से अपने चारों ओर के

जीवन को देखता है तर्क-वितर्क करता है, विश्लेषण करता है, समाज की असंगतियों पर आक्रोश भी प्रकट करता है किन्तु स्थिति को अपनी आस्था के अनुरूप रूप देने के लिए कुछ भी कर नहीं पाता। उसका विद्रोह केवल ज़बानी जमा खर्च तक ही सीमित है। दलित तथा शोषित वर्ग के प्रति उसकी सहानुभूति भी प्रमुख रूप से केवल बौद्धिक है। असंगत विवाह और विधवा की स्थिति के सम्बन्ध में वह समाज से नाराज़ है किसी भी सम्बन्ध में सक्रिय कदम उठा नहीं पाता।

जीवन के प्रवाह को वह किनारे बैठकर देखता रहता है। कभी उसकी लहरों में हाथ डाल कर उसके प्रवाह की तेज़ी का अनुभव करना चाहता है। कभी किनारे पर बैठा-बैठा ही प्रवाह में बह कर आते नाना प्रकार के रूप रस, गंध वाले फूलों से खेलता रहता है। वह जीवन के उस प्रवाह में कूद नहीं पड़ता क्योंकि देवता होने की उसकी भ्राँत धारणा और समाज भीरुता उसे धार के साथ उन्मुक्त रूप से बहने के लिये अपने आप को प्रवाह में छोड़ने नहीं देती। धार की दिशा को अपने आदर्श के अनुरूप वह मोड़ सके इतनी शक्ति उसमें नहीं है। प्रवाह के बीच कूद कर अपनी जगह अडिग खड़ा रह सकेगा इतना आत्म-विश्वास भी उसमें नहीं है। किनारे बैठा-बैठा धार में बहते आते फूलों के साथ खेलने का मोह भी वह छोड़ नहीं पाता। कर्म की अपेक्षा चिन्तन और तर्क-वितर्क उसके जीवन में अधिक है किंतु कर्म के अभाव में चिन्तन उसके व्यक्तित्व को विकसित उसकी आकांक्षा के अनुसार महामानव बनाने के पथ पर उसे आगे बढ़ाने में सहायक नहीं होता।

सामाजिक भीरुतावश शारीरिक सम्बन्धों के धरातल पर, सामाजिक मर्यादा की रक्षा के अतिरिक्त राजेन्द्र के पूरे जीवन में किसी भी व्यक्ति या आदर्श के प्रति उन्मुक्त आत्मदान नहीं है और इसीलिए पाठक उसके हृदय की झकझोर तथा घटना-क्रम को तटस्थ रूप से देखता रहता है उसके हृदय के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता।

उपन्यास के सभी पात्र मध्यवर्ग तथा उच्च मध्यवर्ग के हैं। उनकी समस्याएँ भौतिक जीवन के संघर्ष की कम और मानसिक धरातल की अधिक हैं। जीवन के संघर्ष में पिसने वाले श्रमिक वर्ग को तो इस प्रकार की समस्याओं की उधेड़-बुन के लिये अवकाश ही नहीं मिलता और यदि कोई

समस्या आ ही पड़े तो वे इतने रूढ़ि भीरु और समाज भीरु नहीं होते कि कोई .निश्चित कदम उठा ही न सकें। इसलिए उनमें यौन-अतृप्ति की समस्या को लेकर ऐसे उन्माद ग्रस्त व्यक्ति कम ही मिलते हैं जैसे छोटी भाभी बड़ी भाभी, लाली, वैशाली, जमुना, चाची, रामलाल, बंशी, मुरली मनोहर, राजेन्द्र और उसके पिता जी आदि हैं।

मैं मानता हूँ कि आज के उच्च मध्य सम्पन्न वर्ग में इस कोटि के प्राणियों की कमी नहीं है किंतु मेरी धारणा रही है कि इस प्रकार के स्त्री-पुरुषों के लिये यदि ऐसा कानून बनाया जा सकता कि प्रतिदिन चार घंटे फौजी कवायद करना या प्रतिदिन चार घंटे फावड़ा चलाना अनिवार्य है और पसीने में लथ-पथ हो जाने पर भी कार्य में शिथिलता आने पर गोली मार दी जायेगी तो उनके सारे मानसिक उन्माद का उपचार स्वयं हो जाता और वे स्वयं मानस के सामाजिक प्राणी बन जाते।

यदि उपन्यास में चित्रित मानसिक उन्माद के इन सब रोगियों के जीवन पर दृष्टि डालकर देखें तो ज्ञात होगा कि उनमें से अधिकांश को बिना किसी संघर्ष या परिश्रम के भोजन, वस्त्र, निवास की सब सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि अपने को देवता समझने का अहंकार और दंभ लेकर चलने वाले नायक को भी अपने तथा अपने परिवार के भरणपोषण के लिए तिल भर भी परिश्रम करना नहीं पड़ता। सुख-सुविधा पूर्वक खाने-पीने पहनने तथा मकान खरीदने योग्य धन किसी प्रबन्धक की देख-भाल में छोड़ी गई जमीदारी से स्वत: चला आता है। मेरा विश्वास है कि यदि जीविका उपार्जन के लिए उसे आठ घंटे प्रतिदिन किसी कारखाने में मज़दूरी या दफ्तर में क्लर्की करने का लाचारीयुक्त सौभाग्य प्राप्त होता तो उस अभागे को अपने देवता होने के दम्भ तथा अहंकार अपने दर्शन और तद्जनित प्रवचनों तथा तर्क-वितर्कों तथा प्रत्येक सुन्दर नौजवान स्त्री या लड़की के प्रति उभर आने वाली लिप्सा से छुटकारा मिल जाता और मानिसक दृष्टि से स्वस्थ मनुष्य के रूप में उसके विकास का मार्ग उन्मुक्त हो जाता।

अनेक नपुन्सक पात्रों की सृष्टि उपन्यास में की गई है। नायक के मौसेरे भाई वंशी ने दो विवाह किए किन्तु अपनी एक भी पत्नी को सन्तानवती वह नहीं बना सके, उनकी बड़ी पत्नी से जो सन्तान जन्म लेती है उसका पिता रामलाल है इस बात का निश्चित प्रमाण मिल जाता है।

विधवा लाली जिस अवैध सन्तान को जन्म देने वाली है उसके पिता वंशी हैं। यह धारणा क्षण भर भी मेरे मन में नहीं टिकती और इसका कारण भी स्पष्ट ही है। जमुना के पति रामचन्द्रनाथ नपुन्सक हैं इस बात का प्रमाण-पत्र परिस्थिति और डाक्टर दोनों से मिलता है। आवारा और चरित्र-हीन मुरलीमनोहर के सम्पर्क में जितनी स्त्रियाँ जाती हैं, उनमें से कोई माँ नहीं बनती, उसकी पत्नी अर्चना भी नहीं।

नायक राजेन्द्र भी जो विवाह से इतना घबराता है और सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक सुन्दर नवयुवती के प्रति मानसिक धरातल पर एक विचित्र प्रकार के आकर्षण का अनुभव करता है और यद्यपि उनसे .आवृत्त वक्ष के उभार को देखकर विचलित और अनावृत को देखकर पागल हो उठता है, बराबर उन्हें याद दिलाता रहता है, कि मैं तुम्हारा भाई हूँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ और जिन अतृप्त तथा तन-मन-धन से पूर्णतया समर्पणयुक्त छोटी भाभी के प्रति वह पूर्णरूपेण आसक्त है, उन्हें पत्नी रूप में प्राप्त कर लेने के लिए माँ की परोक्ष अनुमति के बाद भी अपने देवता होने की दुहाई देकर उनकी चरणधूल लेकर अपने को कृतकृत्य मानता रहता है, किसी सन्तान का पिता बनने की क्षमता रखता है या नहीं, अन्तर्यामी ही जानें सो इतने नपुन्सकों की सृष्टि में यदि उपन्यास के नारी पात्र जीवन में अतृप्ति लिए; पथभ्रष्ट या उन्मादग्रस्त होकर नायक राजेन्द्र की परिक्रमा करती दृष्टिगोचर होती हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

इस प्रकार वाजपेयीजी को विनाशोन्मुख उच्च मध्य वर्ग के थोथे आदर्श, अतृप्ति, छल, प्रपंच और उन्माद का सजीव चित्र उपस्थित करने में महान् सफलता प्राप्त हुई है। क्षण भर के लिए भी जो पात्र सामने आता हैं, अपनी गहरी छाप हृदय पर छोड़ जाता है। हृदय में हाहाकार और होठों पर मुस्कान लेकर टालने वाली हिस्टीरिया ग्रस्त छोटी भाभी को, मैना की तरह चहकने और फुदकने वाली, उन्मुक्त गगन में उड़ान भरने की आकांक्षी निश्छल वैशाली को, और अपने देवता होने के अहंकार में सबको बौने के रूप में देखने वाले तथा सत्य निष्ठा के दम्भ में अविनयशील होकर औरों की तरह कटु बातें कह देने में भी न चूकने वाले राजेन्द्र को कौन पाठक भूल पाएगा।

वाजपेयीजी का कवि उनके उपन्यासकार की गर्दन पर सदा सवार रहा है। यदि कवि उपन्यास में उपन्यासकार का अनुगामी होकर चल पाता तो अधिक अच्छा होता। जिन कवित्वपूर्ण, सरस, मधुर उक्तियों की अमूल्य निधि उपन्यास में जहाँ तहाँ छिटकी पड़ी है उनमें से काफ़ी उपन्यास की दृष्टि से अनावश्यक हैं।

इसी प्रकार विचारक, दार्शनिक और समाज का आलोचक होने का मोह छोड़ने की छूट यदि नायक राजेन्द्र का अहङ्कार उसे दे देता तो उपन्यास इतना बोझिल न हो उठता। लेखक अपनी व्यंगात्मक वाक्पटुता की शैली में कह सकता है कि तब उपन्यास 'हल्का' हो जाता। मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक उनसे निवेदन करूँगा कि यह 'हल्कापन' नहीं, उसका इस प्रकार हल्का होना, उपन्यास की दृष्टि से अधिक उपयुक्त होता। फिर भी उपन्यास अत्यन्त रोचक है। मैंने उसका दो बार पारायण किया और दोनों बार मुझे रस मिला। इसका मुख्य कारण यह है कि उपन्यास में कथानक की प्रधानता नहीं, पात्रों के सजीव व्यक्तित्व की प्रधानता है और जितनी बार आप उसके सम्पर्क में आते हैं, उनके मानस की नई गहराइयों पर आपकी दृष्टि पड़ती है।

उपन्यास में देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति की जो आलोचना की गई है, उसे तो मैं अधिक महत्व नहीं देता। क्योंकि घटनाओं के घात-प्रतिघात के फलस्वरूप स्वयं उभर कर सामने आने की अपेक्षा ड्राइंग रूम चर्चा का ही विषय वह अधिक रही है।

हास्य, व्यंग और वाक्पटुता की ऐसी छटा सारे उपन्यास में छिटकी हुई है जो मन को मोह लेती है। 'पूर्व कथा' में जैसे घनीभूत वातावरण की सृष्टि उपन्यासकार ने की है, हिन्दी में अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है। पात्रों के चित्रण की एक-एक रेखा बड़े सतर्क और सधे हुए हाथों द्वारा खींची गई है। इतनी सजीव, सरस और सशक्त रचना प्रदान करने के लिए मैं वाजपेयीजी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

निमंत्रण : एक अध्ययन

ले०—प्रो० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' एम० ए०

निमन्त्रण की भाषा शैली की विशेषता यह है कि प्रत्येक अध्याय में मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन देकर पात्रों की गति-विधि से परिचित कराया जाता है। यहाँ एक ओर लेखक के मनोविज्ञान के सूक्ष्म ज्ञान का परिचय मिलता है और दूसरी ओर उसकी जीवन सम्बन्धी मान्यता का। उदाहरण के लिए बारहवें अध्याय का यह प्रारंभिक अंश देखिए—"चरित्र का मूल्यांकन करते समय हम प्रायः शरीर धर्म की ओर ही अपनी दृष्टि रखते हैं किन्तु पुरुष और स्त्री के मिलन को, जहाँ तक वह शरीर धर्म से सम्बद्ध है। चरित्र के मूल्यांकन में अधिक महत्व देने का अर्थ है—छल, कपट, अविश्वास, कृतघ्नता, दम्भ तथा आडम्बर आदि उच्चवृत्तियों की उपेक्षा करना, जिनका नियंत्रण मानवता के विकास के लिए आवश्यक है।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास में निमन्त्रण का स्थान बहुत ऊँचा है। कई दृष्टियों से वह उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास

में वाजपेयीजी के उपन्यास-सम्बन्धी दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण है। अपने पहले के उपन्यासों में वाजपेयीजी शरत् के प्रतिनिधि रहे हैं। 'पतिता' 'पतिता का साधना' और 'दो बहनें' में उनके इस रूप का दर्शन भलीभाँति किया जा सकता है। उनमें अति भावुकता और समाज के प्रति असमर्थ आक्रोश का उफान वैसा ही है, जैसा शरत् के उपन्यासों में। घोर-से-घोर सामाजिक विकृति में भी उनकी नारी विगत के चरणों में नत होकर कराहती है और करुणा और सहानुभूति के लिए फैलाए हुए उसके जीर्ण-शीर्ण आँचल में पुरुष-समाज के दम्भ और अधिकारपूर्ण ग्लानि के अतिरिक्त कुछ नहीं पड़ता। 'निमन्त्रण' में पहली बार वाजपेयीजी का कथाकार अपना पथ बनाता और स्वस्थ वातावरण में साँस लेता है। यहाँ वह शरत् को तो छोड़ता ही है, प्रेमचन्द को भी छोड़ देता है और इन दोनों से आगे एक सजग कलाकार के रूप में नए समाज, नए युग और नए मानव की कल्पना करता है।

निमन्त्रण की कथा बड़ी सरल है। उपन्यास का आरम्भ होता है गिरधारीलाल के जीवन के परिचय से। गिरधारीलाल एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता और पत्रकार हैं। उसकी दशा वही है जो सामान्य-पत्रकार की होती है। उसके पुत्र रञ्जन को बुखार है और उसकी पत्नी रेणु उसकी चिन्ता में घुलती हुई चाहती है कि गिरधारी तनिक उसे देख ले पर गिरधारी की स्थिति यह है कि रात के ग्यारह बजे वह सोच रहा है—"सवेरे ही उठकर तो सम्पादकीय लेख लिखना है। नौ बजते-बजते फ़ोरमैन मैटर माँगेगा।......तनखाह उसकी कई मास की चढ़ गई है।......मसीन के इन्स्टालमेण्ट की तारीख भी आज बीत गई। कल ही मुमकिन है उसका तकाज़ा आ धमके।...... पत्र के लिए नया टाइप भी चाहिए। हमारे स्टैण्डर्ड के अनुरूप छपाई हो नहीं रही है। हेडिंग टाइप्स तो बहुत ज्यादा घिस गए हैं।......ये मेहरोत्रा मोटर कम्पनी वाले अगर एक पेज का विज्ञापन दे दें......।" बड़ी अन्य-मनस्कता में वह अपने पुत्र को देखने जाता है और तस्वीर लाने की बात से बच्चे को सान्त्वना देकर चला आता है। उसे न जाने कितने कार्यकर्ताओं और मज़दूरों की चिन्ता है, पर अपनी और अपनी पत्नी रेणु की नहीं। परिणामतः घर में असन्तोष और कुढ़न लिए उसकी पत्नी जलती रहती है।

एक दिन उसकी भेंट होती है मालती से, जो कभी उसकी शिकार रह चुकी है। वह जा रहा था एक कार्यकर्ता के घर जिसे टी. बी. हो गई थी

ग्रौर जिसके घर में वृद्ध माता, युवती भार्या ग्रौर तीन छोटे-छोटे बच्चे थे ग्रौर बीच में मिल गई ग्रंग्रेज़ी में एम. ए., पाश्चात्य सभ्यता की पुतली, नृत्य ग्रौर वाद्य की विशेषज्ञ यह युवती। मिली थी तो कोई बात नहीं पर उसने जो यह कह दिया कि ग्रापने हमारे यहाँ ग्राने की कृपा नहीं की तो गिरधारीलाल शर्मा के मर्म को ही मानों छू दिया ग्रौर वे हो लिए मालती के साथ। उसके महल जैसे मकान में पहुँचकर उसे ग्रपने गाँव के टूटे फूटे मकान की याद ग्राती है। लेकिन थोड़ी देर को ही ड्राइङ्ग रूम में बैठते हैं ग्रौर उसकी ग्रीवा की एक लट में उलझ कर रह जाते हैं। मज़ाक में ही भावमत्त मालती गंभीर हो उठती है ग्रौर कह उठती है—"मैं जीवन भर के लिए निमन्त्रण देती हूँ। ग्रापको कहीं जाने की ग्रावश्यकता नहीं है।" मालती के ये शब्द गिरधारी को उसके प्रति प्रेम की भावना से भर देते हैं। बातचीत के दौरान में मालती की माँ ग्रौर मालती की दोनों भाभियाँ तारिणी ग्रौर पूर्णिमा भी ग्रा जाती हैं ग्रौर शर्माजी का ग्रादर्शवाद सबको ग्रभिभूत कर लेता है। कला ग्रौर साहित्य पर जो बातचीत होती है उसके द्वारा गिरधारी का व्यक्तित्व मालती के परिवार के लिए श्रद्धा की वस्तु बन जाता है।

मालती गिरधारी के व्यक्तित्व से ग्रभिभूत होकर सोचती है— "एक शर्मा हैं, जो कहीं भूल से निकल पड़ें तो रास्ते से गुजरने वाले लोग भी उन्हें घेरकर खड़े हो जाँय ग्रौर ललचा उठें कि वे हमसे दो ही बात कर लें। समाज की श्रद्धा उनकी ग्रर्चना करती है, देश का हृदय उन पर ग्रपने को न्योछावर करने को तत्पर रहता है।......क्या मैं ऐसी नहीं बन सकती! क्या मैं......? क्या ??" समस्त ग्राभिजात्य भूलकर वह समाज में नव-जीवन फूँकने के लिए सार्वजनिक जीवन बिताने का व्रत लेती है। ग्रपने बड़े भाई के समझाने पर भी वह नहीं मानती ग्रौर शर्माजी से दीक्षा लेने पहुँच जाती है। शर्माजी उसे ऊँच-नीच समझाते हैं, भली प्रकार उसकी जाँच करते हैं ग्रौर उसे स्वतन्त्र जीवन न बिताने की सलाह देते हैं। वह उस समय चाहती है कि शर्माजी उसके साथ पार्क घूमने जाँय पर जब वे साफ़ मना कर देते हैं तो ग्रपने को ग्रपमानित ग्रनुभव करती हुई वह घर लौट ग्राती है। उसमें परिवर्तन यह होता है कि वह दूसरी वार जब शर्माजी से मिलती है तो खद्दर की साड़ी पहने, जिसे देखकर उनके ग्राश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। यहाँ उसका परिचय होता है रेणु से। गिरधारी की

पत्नी रेणु विवाह का अभिशाप भोगते-भोगते जीर्ण हो गई है। वह मालती से एकदम विपरीत है क्योंकि मालती विवाह में विश्वास ही नहीं करती।

अपने दृढ़ विश्वास के बल पर मालती सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती है। मज़दूरों के भीतर घुसकर कार्य करती है और सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान देती है। गिरधारी के निकट वह आती है—इतना निकट कि एक दिन वह रंजन की बीमारी में गिरधारी के घर ही सो रहती है और रात को अवसर पाकर पहुँच जाती है गिरधारी के पास। मालती अचानक उसकी शैय्या सूनी देखकर शंकाशील हो उठती है। इस घटना से रेणु और मालती के बीच ही दूरी नहीं बढ़ती। रेणु और गिरधारी में भी खिंचाव पैदा हो जाता है। डाक्टर ललित इस खिंचाव को और बढ़ाते हैं, जो उपन्यास के अन्त में जाकर ही समाप्त होता है।

एक कथा है श्री विनायक बाबू की जो तीन विषयों के एम. ए. हैं और बड़े ही पवित्रतावादी हैं। घर पर केवल माँ हैं। मालती के भतीजे को पढ़ाते हैं। मालती की छोटी भाभी पूर्णिमा के प्रति आसक्त रहते हैं लेकिन आगे चलकर इनसे ही मालती की शादी होती है।

विपिन की कथा भी विनायक की ही भाँति गिरधारी से जुड़ी है। उसकी पत्नी गाँव की है, जिसे उसके माँ-बाप नहीं भेजते। एक बार वह गाँव जाता है तो देखता है कि उसके ससुर ने नई शादी की है और उसकी पत्नी नौकरानी की भाँति काम करती है। यहीं तक बात रहती सो भी ठीक था पर उसका एक कहार से अनुचित सम्बन्ध भी है। यह देखकर वह विष पी लेता है और बड़ी कठिनाई से बच पाता है।

मालती के भाई व्रजनाथ और बूँदी की एक और कथा है। जिसमें बूँदी व्रजनाथ से बदला लेती है। उसका वास्तविक नाम है वीणा। पहले व्रजनाथ ने शादी का वादा कर उसे भ्रष्ट किया था और यह सुनकर कि वह गंगा में डूब मरी, दूसरी शादी कर ली थी। वेश्या बनकर उसने उससे बदला लिया।

उपन्यास का अन्त शर्मा के जेल जाने से होता है। विनायक और मालती की शादी के साथ रेणु और मालती में भी सुलह हो जाती है।

'निमन्त्रण' उपन्यास की पृष्ठभूमि द्वितीय महायुद्ध की है। उस समय एक ओर विश्व पर युद्ध के बादल छा रहे थे और दूसरी ओर हमारे देश

पर गुलामी का शिकंजा जकड़ रहा था। एक स्थान पर शर्मा जी कहते हैं—"आज हमारे देश को कला के नाम पर वायोलिन की मधुर झंकार, अभिनय और नृत्यकला के नव-नव प्रकार की अधिक आवश्यकता है या उस संगठित शक्ति और स्वाधीनता की, जो मदान्ध फैसिस्ट देशों के आक्रमण से हमें बचा सके—हमारी संस्कृति की रक्षा कर सके ? कर सकेगी रक्षा उसकी उस समय तुम्हारी यह कला, जब फैसिस्ट देशों के सैनिक हमारी सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक मर्यादा को भंग करने—उसे कुचलने—आयेंगे ? (निमंत्रण पृष्ठ १७) पूँजीवाद और समाजवाद की निन्दा भी कई स्थानों पर हुई है—"संस्कृति और सभ्यता के सार्वभौम आदर्शों की आधारभूत मान्यताओं में आज एक गहरी खाई उपस्थित होगई है। बीच-बीच में गर्त और अन्धकूप हैं। और उन्हें बनाया है पूँजीवाद-साम्राज्यवाद ने। जब तक वह नष्ट नहीं होता, तब तक समाज में वर्ग रहेंगे और उनकी सीमाएँ आभास में टकरायेंगी। मानवता के शाश्वत विधान ही उनमें स्थायी समन्वय और सामंजस्य स्थापित रख सकेंगे। किन्तु व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा तो ऐसी दशा में असम्भव ही रहेगी।" (निमन्त्रण पृष्ठ ७५) इस कथन से स्पष्ट है कि वाजपेयीजी वर्गवाद को मिटाने के पक्ष में तो हैं पर व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा वर्गहीन समाज में सम्भव नहीं मानते। परिणामत: वे मार्क्सवाद के यशपालजी जैसे समर्थक नहीं हो पाते। उनके वर्गवाद को मिटाने का अपना एक पृथक् मार्ग है। मालती जैसी अभिजात कुल की लड़की को उन्होंने विनायक जैसे गरीब, पर शिक्षित व्यक्ति से बाँधा है और समस्त परिवार की सम्मति से ही यह हो पाया है। गांधीजी के हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त के अनुकूल यह अवश्य है, लेकिन यह है काल्पनिक तथ्य। व्यावहारिकता इसकी उतनी अमोघ और सरल नहीं है, जितना कि वाजपेयीजी ने 'निमन्त्रण' में माना है। वस्तुत: बात यह है कि वाजपेयीजी का यह उपन्यास आधारित तो राष्ट्र कर्मी पात्रों पर है पर हो गया है शुद्ध रोमांटिक, जिसमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की संगति मिलाने का प्रयत्न है। गिरधारी, विनायक और विपिन तीनों ही आदर्शवादी और राष्ट्रवादी व्यक्ति हैं। वे संघर्षरत कार्यकर्ता हैं पर उनका मानसिक द्वन्द्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। और यह कहना असत्य नहीं होगा कि 'निमन्त्रण' में मानसिक द्वन्द्व ही प्रमुख होगया है। हम सहज ही इस उपन्यास को अन्तर्द्वन्द्वप्रधान उपन्यास कह सकते हैं।

स्त्री के यहाँ दो रूप हैं। एक का प्रतिनिधित्व मालती करती है और दूसरे का रेणु। मालती आधुनिका है। विवाह में उसका विश्वास नहीं। चरित्र के सम्बन्ध में उसका मत है—"चरित्र मानसिक सदाचार का दूसरा नाम है। जो लोग दुनियाँ भर के झूठ-सच, छल-प्रपंच, कपट, धूर्तता तथा ईर्ष्या-द्वेष के खून से रंगे रहते हैं, जो मनुष्य के साथ कुत्ते का सा व्यवहार करते नहीं लजाते, जो सत्य और न्याय से दूर रहकर एक मात्र स्वार्थों में ही संलग्न रहते हैं, पैसे के बल पर जो ज़मीन और जायदाद, स्त्री और प्रेयसी के लिए भाई और पुत्र तक का छिप कर सत्यानाश कर सकते हैं, जो समाज उन्हें चरित्र-हीन नहीं मानता, मैं ऐसे समाज को नहीं मानती बल्कि मैं तो उसका नाश देखना चाहती हूँ।" (निमन्त्रण पृष्ठ २)। उसकी दृष्टि में विवाह जीवन के स्वतन्त्र प्रवाह में अवरोध है और सतीत्व क्या है, इस विषय में उसका विचार है— "वास्तव में यह एक पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म भी एक प्रकार की कट्टरता है। इसमें जीवन ने अपने को रास्ते में लाकर एक जगह छोड़ दिया है। कल्पना और बुद्धि का स्वतन्त्र चिन्तन और पटक्षेप इसने अवरुद्ध कर रखा है। केवल अपनी सन्तान को मनुष्य ने त्याग, प्रेम और समर्पण की केन्द्रभूमि मान लिया है। मनुष्य के बीच भेदाभेद की वीभत्स क्षुद्रता इसी का देन है।" (निमन्त्रण पृष्ठ १२६)। विनायक का उसके संबंध में विचार है— मेरे जैसा आदमी तो अपने को बेचकर भी उसकी फरमाइशों को पूर्ण नहीं कर सकता। तिस पर अविवाहित। ओ बाप रे! करेला और नीम-चढ़ा" (निमन्त्रण पृष्ठ ३८)। शिक्षित नारियों की दशा बिलकुल ऐसी ही है।

रेणु का जीवन इसके बिलकुल विपरीत है। वह विवाहिता नारी है। विवाहिता नारी के सम्बन्ध में गिरधारी का कथन है—"विवाह का अभिशाप भोगते-भोगते सुन्दर-से-सुन्दर स्त्री दस वर्ष के अन्दर-अन्दर प्रायः सूखकर अमचुर होजाती है। × × × गृहस्थी का प्यार उसकी समस्त आकांक्षाओं को धूल में मिला देता है। उसका सारा दिन केवल खाना बनाने, बच्चों की देखभाल करने और दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार घर को पूर्ण और तत्पर रखने में बीत जाता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सौंदर्य और मानसिक विकास के रक्षण और उन्नयन का उसे अवकाश ही नहीं मिलता। चारों ओर से घिरकर, विवश होकर, वह पति की सहचरी न रहकर सर्वांश

में एक अनुचरी हो जाती है।" (निमन्त्रण पृष्ठ ४५)। इतना होने पर भी वह मालती को विवाह करने की सलाह देता हुआ कहता है—"मैं यह नहीं कहता कि विवाह प्रेम की आदर्श कल्पना है। किन्तु समाज-निर्माण के लिए अब तक, विवाह से उत्तम दूसरी कोई आदर्श कल्पना भी तो स्थिर नहीं हुई है।" भारतीय नारी का यही रूप है, जो वरेण्य है। पति की अनुचरी होकर उसे भले ही रहना पड़े पर समाज की व्यवस्था उसके इसी त्याग में है। रेणु इन्हीं विचारों की नारी है। भारतीय नारी का ही हृदय है, जो अपने पति की विकृति को सहकर भी शान्त रह सकती है। रेणु यह जानती है कि गिरधारी मालती में अनुरक्त है। वह मालती से कहती हैं—"मैं हार मानती हूँ। वे कभी स्वीकार नहीं करेंगे कि तुम्हें कितना चाहते हैं। तुम उनकी दशा देख रही हो, कितने दुर्बल होगए हैं। वे कभी तुमसे कहेंगे नहीं कि तुम उनकी प्रेयसी हो। वे प्राण तक दे देंगे। तुम कुछ ऐसा करो कि वे अपने साथ अत्याचार न करें। तुमसे हँसे, बोलें, घूमें। तुम्हारे साथ चाहे जिस तरह रहें, मुझे कभी कोई आपत्ति न होगी। किसी तरह तो वे प्रसन्न रहें, किसी तरह उनका जीव तो सुरक्षित रहे।" (निमन्त्रण पृष्ठ २२६) नारी का रूप क्षमा और दया का है। पहले रूप की प्रतिहिंसा के स्थान पर यहाँ समर्पण मुखर है।

लेकिन निमन्त्रण का प्रतिपाद्य इसके अतिरिक्त कुछ और है। विवाह के आदर्श का समर्थन वहाँ अभीष्ट न होकर प्रेयसी की प्रशस्ति ही लक्ष्य है। रेणु गिरधारी के शब्दों को मालती के समक्ष इस प्रकार रखती है—"विचित्र बात है बहन! मैं तो समझ नहीं सकती। कहते थे प्रेयसी, प्रेयसी तो देवी होती है। वह अर्चना की वस्तु है। उसके साथ कहीं ब्याह हो सकता है? विवाह तो देवी को नारी बना डालता है। विवाह तो शरीर के उन स्थूल व्यापारों से सम्बद्ध है। जिनसे गन्ध आती है—जो बासी पड़ते-पड़ते अन्त में सड़ तक जाते हैं। किन्तु प्रेयसी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूख शान्ति का एक मार्ग है। किन्तु तृष्णा तो अजर होती है, उसकी शान्ति तो प्रेयसी हो करती है अपने आत्मदान से। वह बदला नहीं चाहती है, उसे कोई आकांक्षा नहीं होती। वह अर्पित ही करती चलती है। किन्तु पत्नी? वह तो बदला चाहती है। चाहती है कि वह कुल पाये, उसको कुछ प्राप्त हो। कल्पना पर उसका निवास नहीं होता। मानसिक

पूजा का जो एक सौंदर्य होता है, एक माधुर्य होता है, वह उससे दूर रहती है। वह नश्वर है।" (निमन्त्रण पृष्ठ २२६) ये शर्माजी के शब्द हैं—रेणु के पति के। वे पीड़ित हैं एक अन्तर्द्वन्द्व से। नैतिकता की रक्षा का उनमें आग्रह है इसीलिए उनकी मान्यता है कि "यदि मनुष्य समाज की नैतिक मान्यताओं की उपेक्षा करेगा तो वह अपने घर और कुटुम्ब ही नहीं, अपने समस्त समाज को विषाक्त करके समस्त मानवता की हत्या कर डालेगा। मनुष्य जीवन की अपेक्षा वह पशु जीवन को अपना लेगा। (निमन्त्रण पृष्ठ १८२) यह द्वन्द्व उन्हें मालती के साथ घूमने से रोकता है और यही उनके आदर्शवाद की आधारशिला है अन्यथा वे क्या हैं, यह प्रेयसी के समर्थन वाले शब्दों से प्रकट होता है।

बूँदी या वीणा द्वारा नारी के प्रतिकार लेने वाले रूप का भी चित्रण हुआ है। वह व्रजनाथ को जी भर कर सजायें देती है। जब व्रजनाथ माफ़ी माँगते हैं तो वह कहती है—"माफ़ी माँग अपने उस भगवान से, जिसके नाम पर एक तरफ सेठों के मन्दिरों में सुबह-शाम पूजा आरती होती, शंख-घंटे बजते और प्रसाद बाँटा जाता है और दूसरी तरफ किसान भूखों मरते और मिलों के मज़दूर लाठी और गोले खाते हैं। और दूसरी ओर मैं क्यों जाऊँ। क्या उस वक्त भगवान् ने तेरी मदद न की होगी जब तूने एक बेगुनाह नौजवान लड़की से यह वादा करके उसकी असमत ली कि मैं तेरे साथ शादी कर लूँगा लेकिन बाद में उसको नापाक क़रार देकर ठुकरा दिया। उसका दीनोईमान लेते और उसके अरमानों का खून करते वक्त भी तो तुझे उसी भगवान् की मदद मिली होगी।" (निमंत्रण पृष्ठ २१८)

पुरुष पात्रों में गिरधारी, विनायक और विपिन प्रमुख हैं। गिरधारी विनायक और विपिन तीनों ही आदर्शवादी हैं। राष्ट्रीय जीवन में मरना-खपना उनका ध्येय है। गिरधारी संजीवन-पत्र के संचालक-सम्पादक हैं। उन्हें सबकी चिन्ता है। घर को नहीं देख पाते पर दूसरों की सहायता करते हैं। कला उनके लिए उपयोगिता की वस्तु है। दिन रात समाज की चिन्ता में रत रहने वाले हैं। कांग्रेस मज़दूर संघ का कार्य, सार्वजनिक सभाओं का आयोजन, 'संजीवन' का संचालन आदि अनेक कार्य उनको करने पड़ते हैं। सामाजिक मर्यादा और प्रतिष्ठा के लिए वह सदैव सावधान रहते हैं।

विनायक संस्कृत, इतिहास और दर्शन तीन विषयों का एम. ए. है। स्त्रियों के सम्बन्ध में बड़े ही सुन्दर विचार रखता है। उसका कहना है कि त्याग स्त्री की प्रकृति है और तपस्या उसकी एकान्त निष्ठा, लेकिन जहाँ स्त्री प्रतिहिंसक हो उठती है वहाँ सारी विकृतियों को अपना कर स्वतः भी अपरूप हो उठती है। उस विकृति का कुफल केवल स्त्री ही भोगती हो, यह बात भी नहीं है। आजीवन अविवाहित रहने के प्रयोग जिन पुरुषों ने किए, उन्होंने पतन की चरम सीमाओं का आलिंगन करके क्या पाया। नमंत्रण पृष्ठ ५५) स्वाभिमानी ऐसा है कि मालती ने एक बार कहीं ३०) के ट्यूशन दिलाने का अहसान जताया तो तत्काल छोड़ दिया। शुद्ध सात्विक विचारों का युवक है। वह मालती की ओर तो नहीं, उसकी छोटी भाभी पूर्णिमा की ओर अवश्य झुकता है। मालती को परिवर्तित रूप में अपनाने में संकोच नहीं करता। मातृ-भक्त है।

विपिन सच्चा देशसेवी है। शर्माजी का दायाँ हाथ। वह बड़े कोमल हृदय का है। अपनी पत्नी के दुराचार का ज्ञान होने पर ग्लानि के कारण विष खा लेता है। उसका जीवन परोपकार रत है।

निमन्त्रण की भाषा-शैली की विशेषता यह है कि प्रत्येक अध्याय में मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन देकर पात्रों की गतिविधि से परिचित कराया जाता है। यहाँ एक ओर लेखक के मनोविज्ञान के सूक्ष्म ज्ञान का परिचय मिलता है और दूसरी ओर उसकी जीवन सम्बन्धी मान्यताओं का। उदाहरण के लिए बारहवें अध्याय का यह प्रारम्भिक अंश देखिए—"चरित्र का मूल्यांकन करते समय हम प्रायः शरीर धर्म की ओर ही अपनी दृष्टि रखते हैं किन्तु पुरुष और स्त्री के मिलन को, जहाँ तक वह शरीर धर्म से सम्बद्ध है, चरित्र के मूल्यांकन में अधिक महत्व देने का अर्थ है— छल, कपट, अविश्वास, कृतघ्नता, दम्भ तथा आडम्बर आदि उन वृत्तियों की उपेक्षा करना, जिनका नियन्त्रण मानवता के विकास के लिए आवश्यक है। खाना-पीना, उठना-बैठना और सोना आदि शरीर के धर्म हैं। चरित्र के साथ वे वहीं तक संलग्न हैं, जहाँ तक वे समाज के मानसिक सदाचार की सीमाओं को भंग नहीं करते। आकर्षण का भी शरीर धर्म की अपेक्षा मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसकी उत्पत्ति का हेतु है सौंदर्य-लिप्सा। और समाज की मान्यतायें मर्यादित चाहे जैसी हों, संस्कृति और धर्म की सीमारेखाएँ

भी चाहे जैसी स्पष्ट, दृढ़ और चिरस्थिर बनी रहें, मनुष्य की सौंदर्य-लिप्सा कभी मिट नहीं सकती, वह चिरन्तन है। चरित्र के मान उसके नाम पर सदा विवश रहेंगे। (निमन्त्रण पृष्ठ १००-१०१)

दूसरी बात यह है कि पात्र का व्यक्तित्व वे बड़ी सूक्ष्मता से अंकित करते हैं। उसके चित्रण में स्वभाव, रूप और वेश-भूषा सब साथ आ जाते हैं। पुरुष और स्त्री दोनों के ही चित्र देने में वे निपुण हैं। दो चित्र देखिए—

१—गिरधारी: अवस्था चालीस के लगभग, बदन एकहरा, वर्ण गेहुँआ, लम्बी नाक पर सुनहरी फ्रेम के चश्मे का ब्रिज, खादी का कुर्ता पहिनते हैं, पैरों में अक्सर चप्पल रहती है, कभी-कभी लाल महाराष्ट्र जूता, जिसकी एड़ी मुड़ी हुई, पैदल ज़रा तेज़ चलते हैं, काम के समय मज़ाक से चिढ़ते हैं, हाथ में छाता-छड़ी कुछ नहीं रखते। बालों का एक गुच्छा कभी-कभी दायीं भौंह तक आ जाता है। (निमन्त्रण पृष्ठ ५)

२—उसके समक्ष पूर्णिमा के रूप में एक स्वस्थ मांसल नारी खड़ी हो जाती थी। नाक की कील में हीरे का नग और मस्तक पर दमकती हुई लाल रोली की बूँद। वाटरकलर की साड़ी इतनी खुशनुमा कि एक बार देखकर देह-सृष्टि की छवि आँखों में बस जाय। बाडिस से कसा हुआ वक्ष प्रथम दर्शन में ही अपना उन्नत रूप बतला उठता है। बात कम करना, करना भी तो बहुत सोच समझ कर। हास्य की मन्द-मधुर बुँदिया छोड़ती हुई। (निमन्त्रण पृष्ठ १३७)

तीसरी बात यह है कि उनके उपन्यासों में सौंदर्य भाषा की रंगीनी का नहीं, मानव स्वभाव और समाज की परिस्थितियों के विश्लेषण का है। वे बड़े गहरे जाकर मानव मन के स्तर स्पष्ट करते हैं।

अन्त में हम केवल यह कहना चाहेंगे कि यद्यपि हिन्दी में मनो-विश्लेषण-प्रधान उपन्यासों की भरमार है पर वाजपेयीजी के उपन्यासों में भारतीयता का जो पुट है वह उनके उपन्यासों को अन्य सब उपन्यासकारों की कृतियों से अलग कर देता है। वस्तुत: यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

"निंदिया लागी"

ले०—श्रीनरेशचन्द्र चतुर्वेदी

'निंदिया लागी' कहानी वाजपेयीजी की सर्वोत्तम कहानियों में से एक है। लेखक द्रष्टा के रूप में कहानी में प्रवेश करता है और अन्त में वह अपने रागी हृदय तथा विचारशील मस्तिष्क को लेकर अपनी ही विचार सरिता में खो जाता है। ...'पत्ती' का मधुर संगीत, दीवाल गिर जाने से उसकी मृत्यु, उसके दुखी पति तथा बच्चों के लिए बेनी बाबू की सहायता। और फिर वही स्वार्थी संसार जहाँ 'पत्ती' जैसी एक नहीं अनेक मजदूरिनें नित्य मरती हैं। बच्चे दूध के लिए तड़फते रहते हैं। जहाँ के अनाथ परिवारों का मीत सिर्फ अभाव होता है।

तभी हम यह भी देखते हैं कि कुशल कथाकार वाजपेयीजी के हृदयोद्‌गार जो उनकी कहानी में पात्रों के मुख से निकलते हैं पाठक के सामने प्रश्न चिन्ह बन कर नाच रहे हैं। अन्य विशेषताओं के साथ यही हैं इस कहानी की श्रेष्ठता और महत्ता।

पं० भगवतीप्रसाद वापपेयी की कहानियाँ हिन्दी संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इसका प्रमुख कारण है उनमें सहज सरलता और

गम्भीरता के साथ सादगी का होना। इनकी कहानियों में गुम्फन नहीं, स्पष्टता है। भाषा और भावों की दुर्बोधता नहीं, स्वाभाविक सुबोधता है। अविवेकी मस्तिष्क की उलझन नहीं, विवेकी हृदय का अन्तर्द्वन्द्व है। वाजपेयीजी की कहानियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर उनके चिन्तन और मनन की छाप मिलेगी। मानवीय वृत्ति का सूक्ष्म चित्रण करने में वे अत्यधिक सफल हुए हैं।

विधान (टेकनीक) की दृष्टि से उनकी कहानियाँ सशक्त और चुभती हुई हैं। लगभग सभी प्रचलित शैलियों में उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं।

कहानी में कहने के लिए वे कुछ भारी भरकम पत्थर सा बोझ लेकर नहीं आते, बल्कि आते हैं वे हलकी-फुलकी कोई ऐसी घटना लिए जिसे प्रायः हम सब देखते नहीं या देखने के बाद भी उपेक्षणीय समझकर दृष्टि फेर लेते हैं ऐसी अनेक घटनाएँ जिन्हें साधारण जन की बुद्धि समझ कर भी महत्व नहीं देती, उन्हीं को बाजपेयीजी अपनी अन्तरानुभूति में डुबोकर कला का कलश बना देते हैं। अनुभूति की तीव्रता ने उनकी कला को प्राणवान् और स्थायी बना दिया है। वैसे तो प्रत्येक कलाकार अपनी अनुभूति के द्वारा कुछ ऐसी ही चीजें समाज के सामने रखता है, जिन्हें समाज ने देखा नहीं या देखने के बाद भी वह उसमें रमा नहीं। परन्तु जब कलाकार के द्वारा वही चीजें सज-बजकर प्रस्तुत की जाती हैं तो समाज की हर इकाई गले लगाने के लिए ललक उठती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी आज के लेखकों में प्रायः मिलता ही है। परन्तु वैज्ञानिक विवेचना में कला की जो सरसता, कलाकार के व्यक्तित्व एवं उसकी सहृदयता पर निर्भर करती है, उसका अभाव बहुतों की रचनाओं में देखने को मिल सकता है। वाजपेयीजी इस दोष से मुक्त हैं। उनकी रचनाएँ उनके व्यक्तित्व से अभिभूत हैं। वे यथार्थवादी लेखक हैं किन्तु उनके यथार्थ में व्यर्थ का कड़ुआपन नहीं मिलेगा। वाजपेयीजी का यथार्थ जीवन-तंत्री के तारों को झनझनाकर जाग्रति की ओर अभिमुख करता है। 'निंदिया लागी', 'मिठाई वाला', 'चोर' आदि प्रमुख कहानियाँ उनकी यथार्थवाद की भूमि पर खड़ी हैं; किन्तु आदर्श 'का अवलंब उन्होंने छोड़ा नहीं। यथार्थ और आदर्श का सुन्दर समन्वय उनकी कहानियों में सफलता के साथ हुआ है।

वाजपेयीजी की कहानियों में विद्रोह की आग भी है और विवेक की शीतलता भी। समाज की रूढ़ि पर करारी चोट भी है और मधुरता भी। उनकी 'निंदिया लागी' नामक कहानी इस कसौटी पर कस कर देखी जा सकती है। इसमें जीवन के उस भीतरी पहलू पर प्रकाश डाला गया है जिसकी ओर सहज दृष्टि पहुँचती भी नहीं। नित्य की चलती सी घटना कला का रंगीन परिधान ओढ़कर पाठक को रिझाने तथा विचारमग्न करने की अद्भुत क्षमता किस प्रकार प्राप्त कर लेती है, यह इस कहानी में भली भाँति देखा जा सकता है।

प्रस्तुत कहानी में अपरिचित चित्त की व्यग्रता, सहज आकर्षण, कर्त्तव्य-परायणता समाज की यथार्थता के साथ कला की वह उच्चता और पवित्रता भी है जो किसी भी रचना को मंगलमयी और लोक-कल्याण-कारी बना देती है।

बिना कथोपथन और पात्रों के चरित्र को उभारकर जितनी सुन्दरता और कुशलता के साथ पाठक के सामने रक्खा गया है वह प्रशंसनीय है। उत्तम पुरुष (मैं) शैली में लिखी गई प्रस्तुत कहानी में लेखक एक विचारवान-द्रष्टा के रूप में उपस्थित हुआ है। बेनी बाबू इस कहानी के मुख्य पात्र हैं। उनके चरित्र-विश्लेषण में लेखक की ओर से टीका-टिप्पणी नहीं की गई है। बल्कि उनकी कार्य-शैली का दिग्दर्शन कराके पाठक को स्वतन्त्र रूप से सोचने का अवसर दिया गया है। चरित्र-चित्रण इस युक्ति से किया गया है, जिससे पाठक बेनी बाबू की क्रियाशीलता, मनुष्यता, व्यक्ति और समाज के प्रति उसका दृष्टि-कोण, तथा अमीरी और ग़रीबी के आरोह-अवरोह को ठीक प्रकार से समझ सके। बेनी बाबू परिश्रम कराना और करना जानते हैं। कठोर अधिकारी की भाँति उनकी आज्ञा का पालन तत्काल ही होता है। फिर भी वे सहृदय मानव हैं। उनकी बाहरी कठोरता ने अन्तर का सहज, सबल स्नेह खो नहीं दिया है। मज़दूरों को कम समय में ही एक निश्चित सीमा तक काम समाप्त करने की दी गई आज्ञा के विरुद्ध कार्य-पूर्ति में शंका उठाने पर वे कहते हैं :—

"बको मत, रामलखन! काम पूरा नहीं होगा तो पैसा भी पूरा नहीं होगा।" और तभी रामलखन के साथ अन्य मज़दूर स्त्री-पुरुषों के हाथ तेज़ी से चलने लगते हैं। कहानी के सूत्रकार द्वारा जब बेनी बाबू की कड़ाई के

प्रति शिकायत पूछी जाती है तो वही रामलखन मजदूर कहता है, "काम सख्ती से होते हैं तो मजदूरी भी तो ज्यादा और वक्त पर देते हैं। ऐसे मालिक मिलें तो मैं जिन्दगी भर उनकी गुलामी करूँ।" इन शब्दों से एक ओर भारतीय भोले अशिक्षित किन्तु ईमानदार मजदूर के कृतज्ञ हृदय का परिचय मिलता है और दूसरी ओर बेनी बाबू की कार्य-कुशलता की झलक मिलती हैं। बेनी बाबू सिर्फ अपनी कहना ही नहीं जानते, बल्कि दूसरों की सुनना और समझना भी जानते हैं। अनुभवी वृद्ध मिस्त्री को वे ठीक तरह काम करने की चेतावनी देते हैं तो मिस्त्री मुँह से कुछ कहने के बजाय सिर्फ़ उनकी ओर आँख उठाकर देखने भर लगता है और तब बेनी बाबू उसकी दृष्टि के सामने ठहर भी नहीं पाते। बूढ़े मिस्त्री के इस मौन उत्तर के समक्ष जैसे वे बहुत हल्के पड़ जाते हैं। वर्तमान सामाजिक दुरवस्था और अर्थवादी प्रवृत्ति के प्रति जो उद्‌गार बेनी बाबू ने प्रकट किए हैं, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वे पात्र को बहुत ऊँचा उठा ले जाते हैं। साथ ही बेनी बाबू के माध्यम से लेखक को हम जन-वाणी का उद्‌घोष करते भी देख लेते हैं। वे शब्द हैं—

"जो स्त्री यहाँ काम रही है हमको सिर्फ़ उसी से मतलब है, उसी की मज़दूरी हम दे रहे हैं। किन्तु हम यह सोचने की ज़रूरत ही नहीं समझते कि वह स्त्री अपने जगत को लेकर क्या है। जो बच्चा उसने उत्पन्न किया है वह भी अपने पालन-पोषण का भार अपनी माँ पर रखता है, पर हम लोग यहाँ तक सोचना ही नहीं चाहते। हमारे स्वार्थों ने सत्य को कितनी निरंकुशता के साथ दबा रक्खा है!" उपर्युक्त शब्दों में कलाकार की भावधारा वेगवान् परन्तु संयत रूप में प्रवाहित हुई है। इस प्रकार समाज को चिन्तन के लिए जो दिशा-निर्देश किया गया है, वह बाजपेयीजी की अपनी विशेषता है। सबके समक्ष कैसा प्रश्न रख दिया गया है हल करने के लिए! किस सरलता के साथ एक जटिल समस्या को सुलझाने के लिए पाठक से मूक आग्रह है! भला कौन नहीं जानता कि 'बड़ों' के यहाँ काम करनेवाले अनेक 'छोटे' अपना एक परिवार रखते हैं, जिसके उदर-पोषण का भार उनके दुर्बल कन्धों पर होता है। परन्तु अपना काम हर तरह की दाब-धौंस से लेने के बाद भी विकृत समाज का वह 'बड़ा' अपने यहाँ के कथित 'छोटे' की आवश्यकता पर सोचता भी है?

इस प्रकार बेनी बाबू की चिंताधारा हम देखते हैं कि अविवेकी और स्वार्थी समाज की सतह से ऊपर उठकर मानवता के ऊँचे स्तर पर प्रवहमान है। पात्र के चरित्र-चित्रण का यह सर्वोत्तम आदर्शोन्मुखी उदाहरण है।

'निंदिया लागी' कहानी वाजपेयीजी की सर्वोत्तम कहानियों में से एक है। लेखक द्रष्टा के रूप में कहानी में प्रवेश करता है और अन्त में वह अपने रागी हृदय तथा विचारशील मस्तिष्क को लेकर अपनी ही विचार-सरिता में खो जाता है।...... 'पति' का मधुर संगीत, दिवाल गिर जाने से उसकी मृत्यु, उसके दुःखी पति तथा बच्चों के लिए बेनी बाबू की सहायता और फिर वही स्वार्थी संसार जहाँ 'पत्नी' जैसी एक नहीं अनेक मज़दूरिनें नित्य मरती हैं, बच्चे दूध के लिए तड़पते रहते हैं, जहाँ के अनाथ परिवारों का मीत सिर्फ अभाव होता है।

तभी हम यह भी देखते हैं कि कुशल कथाकार वाजपेयीजी के हृद्योद्‌गार जो उनकी कहानी में पात्रों के मुख से निकले हैं, पाठक के सामने प्रश्न-चिन्ह बनकर नाच रहे हैं। अन्य विशेष रूपों के साथ यही है इस कहानी की श्रेष्ठता और महत्ता।

मानव जीवन के जिस दहकते अंगारे के समान प्रश्न को, कला के अमित रंग भर कर, वाजपेयीजी ने समाज के समक्ष रख दिया है, सोचने के लिए, हल करने के लिए! और आखिर एक युग के प्रतिनिधि कलाकार से हम चाह भी क्या सकते हैं?

संस्मरण, अभिमत और शुभकामनाएँ

श्रीइलाचन्द्र जोशी

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों का मैं बहुत पुराना प्रेमी हूँ। जब मैं १६३२ में मासिक 'विश्वमित्र' का संपादन कर रहा था तब मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय नहीं था। पर तब तक उनकी दो-चार कहानियाँ मासिक पत्रों में पढ़कर मेरे मन में यह धारणा बन चुकी थी कि वह बहुत बड़े कहानी लेखक हैं। उनकी कहानियों में भाव-प्रवणता अधिक होने पर जीवन की गहरी अनुभूति का परिचय मिलता था। इसलिए उनमें परिचय न होने पर भी मैंने मासिक 'विश्वमित्र' के लिये उनसे कहानी माँगी थी और उन्होंने बड़े प्रेम से भेजी थी।

सन् '३६ में जब मैं स्थायी रूप से प्रयाग आया तब उनसे मेरा परिचय हुआ। उनके शरीर की स्थूलता के बावजूद उनकी स्निग्ध मुस्कान के भीतर निभृत गहन भाव-छाया ने उनके कुछ बोलने के पहिले ही मुझे अपने-आप इस बात का परिचय दे दिया कि उनके प्राणों में कलाकार की अन्तर्वेदना रह-रह कर छलक रही है। पहिले ही मिलन से मुझे लगा कि मुझे अपना कोई सगा आत्मीय मिल गया है।

वाजपेयीजी भाव-प्रधान कथाकार हैं। भावुकता एक ऐसी चीज़ है जिसमें स्थान, काल, पात्र, भेद के अनुसार दोष और गुण, विष और अमृत दोनों निहित रहते हैं। पर वाजपेयीजी के संसर्ग में रहकर उनके स्वभाव का अध्ययन करने पर मुझे एक यही अनुभव हुआ है कि उनकी भावुकता में गुण की ही मात्रा अधिक है। भाव-सागर के मन्थन से जो-जो विष ऊपर

उठता है, उसे उन्हें स्वयं पान करना पड़ता है और जो अमृत उठता है उसे वे अपने पाठकों और अपने साथियों को प्रदान करते हैं।

आज के युग के सभी साधक कलाकारों की तरह वाजपेयीजी को भी निरन्तर जीवन की कठोर परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा है, और आज अपने जीवन की अर्द्धशताब्दी से कई वर्ष अधिक पार कर चुकने के बाद भी उन्हें इस संघर्ष से तनिक भी मुक्ति नहीं मिली है। फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा है अपने कर्त्तव्य पथ पर अडिग रहकर वह निरन्तर आगे की ओर कदम रखते चले जा रहे हैं। उनकी इस महान् साधना के प्रति मैं आंतरिक श्रद्धा जताता हूँ और उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी

पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी से मेरा बहुत पुराना परिचय है। वास्तव में उनके साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश इसी नगर में हुआ है। उनके व्यक्तित्व का आदि उनके कथाकार जीवन के अर्थ से मिलकर जिस छोटी और हलकी परिस्थिति में उठा, उसका आभास उनके वर्तमान स्वरूपों में प्राप्त करना कठिन है। परन्तु एक पुस्तकालय की साधारण नौकरी में भी पुस्तकों का जो सान्निध्य भगवतीप्रसादजी उपलब्ध कर सके और अपने अनुशीलन को व्यसन बनाकर ज्ञान-विस्तार कर सके वह उनकी साधना अथवा उनके भाग्य का वरदान था यह कोई कथाकार ही सिद्ध कर सकता है। पर कथा-साहित्य की ओर उनका रुझान आदि से ही था। घटनाओं की श्रृंखला मानव वृत्तियों की पृष्ठभूमि में जब कल्पना केवल अपने बल पर सुलाती है तो कथा का जन्म होता है और जब वास्तविकता के सहारे मानव वृत्तियों की आड़ में घटनाएँ सजती चलती हैं तब इतिहास बनता है। परन्तु कल्पना का विस्तार निस्सीम है अतएव कथा का वैलक्षण्य भी निस्सीम होता है। इस वैलक्षण्य में ही कौतूहल को रस मिलता है।

कभी-कभी वास्तविकता विलक्षणता में कल्पना को परास्त कर देती है। यही इतिहास की विजय है। पर कलाकारों का महत्व कल्पना द्वारा वास्तविकता के पराजय में है। मन को मनोराज्य के विस्तार में रस तभी मिलता है जब पार्थिव भोग से उसमें अधिक मिठास हो। भगवतीप्रसादजी एक प्रसिद्ध कथाकार हैं और उनका जीवन स्वयं एक सरस कहानी है।

आरम्भ में हम लोग जब साहित्यिक चर्चा किया करते थे तो उन्हें कथा-साहित्य से बड़ी रुचि थी और मुझे बड़ी विरति थी। पर उनकी चर्चा के नैरन्तर्य से मेरी विरति समाप्त हुई और मैं भी कहानयाँ पढ़ने लगा।

एक बार हम लोग घूम रहे थे। कहानियों के शीर्षक के सम्बन्ध में कुछ चर्चा हुई। प्रसंगवश हम लोगों ने एक शीर्षक चुना— 'फूटाशीशा'। कुछ कथानकों की भी चर्चा हुई। वे बात करके कानपुर के बाहर चले गये। कदाचित् उन्होंने कोई कहानी इस शीर्षक पर लिखी अथवा नहीं यह नहीं कह सकता परन्तु मैंने उसी एक शीर्षक पर ११ कहानियाँ लिखीं और उनका संग्रह, बहुत समय हुआ, स्वर्गीय प्रेमचन्द की भूमिका के साथ निकल गया है।

पंडित भगवतीप्रसाद अपने परिचय को स्थिर रखने में निस्संकोची हैं। वे जब-जब कानपुर आते हैं, मुझे मिलते हैं। हम लोग परस्पर खूब परिचित हैं। हम लोगों ने अपने जीवन के पापपुण्य, सुभाव, कुभाव, बलाबल, जीवन-यापन विधियाँ साहित्यिक कसौटियाँ इत्यादि सभी पर खुलावट के साथ झाँका और झँकाया है। इतना पढने-लिखने के बाद भी जीवन-कला और साहित्य कला के सम्बन्ध में मैं ऐसे बेधड़क निष्कर्ष सामने नहीं रख सकता जो भाई भगवतीप्रसाद रखते हैं। वे दृढ़ता के साथ अपनी बातें कहते हैं और उनमें समझने और समझाने का बल होता है। यह विचित्र बात है कि जीवन की आर्थिक सुनिश्चिन्तता की रेखा पर खड़े होकर भी मेरे पल्ले चिंतना और बुद्धि के अध्यवसाय ने निष्कर्षों में लचीलापन भर दिया है और भगवतीप्रसादजी अधिकतर अनिश्चित जीवन व्यतीत करते रहे पर फिर भी कठोर और तन कर खड़े रहने वाले निष्कर्षों से उनकी बुद्धि सुशोभित है। पर इसका यह भाव नहीं कि वे भावनाओं में कोमल नहीं हैं। अभी उस दिन मेरा एक एकांकी पढ़ते-पढ़ते वे रोने लगे।

मैं उनकी श्रीवृद्धि और कीर्तिवृद्धि की कामना करता हू। इस समय मेरे पास इतना अवकाश नहीं है कि मैं उनकी कृतियों की चर्चा कर सकूँ। वे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करती हैं।

डा० रामकुमार वर्मा

ये ऐसी शिलाएँ हैं, जिन्हें न गर्मी से शिकायत है और न वर्षा से मोह! निर्विकार भाव से पड़ी हुई हैं। उन्हीं के बीच में एक अंकुर निकल

आया। उसने किसी माली के हाथ की प्रतीक्षा नहीं की। शिलाओं के नीरस हृदय से ही जिसने अपनी बाढ़ का सम्बल प्राप्त किया, वह अंकुर प्रखर ऊष्मा में और घोर बरसात में अपने प्राणों को पोषित करता रहा। एक दिन ऐसा आया कि उसमें पल्लव निकल आये और फूलों के गुच्छे झूमने लगे। उनकी सुगन्धि से खिचकर हम और आप अनेक दिशाओं से आये और एक केन्द्र विन्दु पर मिल गये।

यही श्री भगवतीप्रसादजी वाजपेयी हैं। जीवन की शिलाओं की जड़ से अपने को पोषित करते हुए उनकी प्रतिभा के अंकुर ने साहित्य के अनेक पल्लव और पुष्प विकसित किये हैं और सत्य और सुन्दरम् की सुगन्धि आज हमें उनकी ओर आकर्षित कर रही है।

तब मैं विद्यार्थी ही था; एम० ए० में हिन्दी-साहित्य ले रक्खा था। अपनी आलोचना की कसौटी पर प्रत्येक साहित्यकार को परखकर देखना चाहता था। बहुतों में कंचन की लीक नहीं मिली, जिनमें मिली उनका मैं —क्या कहूँ; मैं उनका हो गया और उन्हें अपना बना लिया। श्रीभगवतीप्रसाद वजापेयी की कहानियों में मुझे 'कंचन की लीक' मिल गई। मैं उनका हो गया। राजीव की डायरी के प्रत्येक पृष्ठ पर मेरा हृदय था और 'अन्ना' मेरी ही थी। भगवतीप्रसाद वाजपेयी स्वयं उसे नहीं छीन सकते थे। मैंने 'अन्ना' की स्मृति में अपने बहुमूल्य और गम्भीर अध्ययन की न जाने कितनी घड़ियाँ समर्पित कर दीं। मेरी 'अन्ना' अमर हो गई और मैंने उसे जैनेन्द्र की 'कट्टो' के साथ वर्षों तक न रखनेवाली आँसुओं की माला पहना दी!

थोड़े से जल-विन्दुओं के सहारे वाजपेयीजी ने यह साहित्य का इन्द्रधनुष खींच दिया है जो इस दिशा से उस दिशा तक फैला हुआ है। सामान्य धरातल से वे केवल अपनी साधना के रूप में ऊँचे उठ गए हैं। ऐसी शक्ति—ऐसी साधना कम साहित्यकारों में होती हैं जो पत्थर से प्रतिमा का निर्माण कर दे। और जब मैं इस साधना की परीक्षा करता हूँ तो पाता हूँ कि यह मातृभूमि के—सामान्य जन के—उच्छ्वासों की शक्ति है। भूमि-पुत्र एकलव्य ने भूमिकणों से ही आचार्य द्रोण की प्रतिमा बनाई थी और अपनी शक्ति-साधना में उसने पाण्डव अर्जुन को भी चकित कर दिया था!

पीड़ाओं का बोझ भी जिसे नहीं कुचल सका वह हँसी, वह आनन्द, इस साधना का आधार है।

आज संध्या समय जब मैं ये पंक्तियाँ लिखने बैठा हूँ तो वह हँसी गूँजती हुई मेरे पास आ रही है। इतने वर्षों के बाद, जब मैं विद्यार्थी से अध्यापक होगया हूँ—उनकी निर्द्वन्द्व हँसी उनके साहित्य की पृष्ठभूमि में दीख रही है और वृद्ध समय उसे टेकता हुआ अब भी आगे बढ़ रहा है।

डा० उदयनारायण तिवारी

परिडत भगवतीप्रसाद वाजपेयी से गत तीन दशाब्दियों से मेरा घनिष्ठ सम्पर्क है। इस दीर्घकाल में, मुझे उनके जीवन के उतार-चढ़ाव को देखने का अवसर मिला है। वाजपेयीजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके निर्माण में उनके मित्रों तथा सहायकों का बहुत कम हाथ रहा है। उन्होंने अपने ऊबड़-खाबड़ मार्ग को स्वयं प्रशस्त किया और उस पर वे अबाध गति से आगे बढ़ते गये। उन्होंने परस्थितियों से संघर्ष किया और निरन्तर स्वाध्याय से अपने को इस योग्य बनाया, जिससे वे आधुनिक हिन्दी में कथा-साहित्य सर्जन करनेवालों में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सके। इस स्वाध्याय का एक लम्बा इतिहास है और वह तभी प्रकट हो सकता है जब वाजपेयीजी अपने किसी उपन्यास के नायक के रूप में अवतरित हों अथवा अपनी आत्मकथा से हिन्दी-साहित्य के इतिहास को समुज्ज्वल करें।

वाजपेयीजी की कृतियों के पढ़ने से कभी-कभी लोगों को यह भ्रम हो जाता है कि वे नितान्त प्रगतिशील व्यक्ति हैं, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। तो क्या वाजपेयीजी प्रतिक्रियावादी अथवा रूढ़िवादी हैं? उनके सम्बन्ध में यह धारणा भी भ्रामक ही होगी। सच बात तो यह है कि वे इन दोनों से परे हैं। आप लीलामय पुरुष हैं और अपनी रचना में इसी रूप में दीख भी पड़ते हैं! वाजपेयीजी के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय बात है कि चाहे वे जिस परिस्थिति में हों, आप जीवन का आनन्द लेने में नहीं चूकते।

कथा-साहित्य के स्रष्टा के साथ-साथ वाजपेयीजी में कुशल अभिनेता बनने की भी पूर्ण क्षमता है। यदि वे अपनी इस गोपनीय शक्ति का प्रयोग कर पाते तो आज आर्थिक चिंता से मुक्त होते और सुखमय जीवन व्यतीत

हाँ, अनपौलिश्ड इन्सानियत, जिसने उन्हें सदा "चलते-चलते", के नायक की तरह भीरु संस्कारों से जकड़े रक्खा है, पर जिसने उन्हें बरसों तंगदस्त ही नहीं भूखों मरने की स्थिति में रहने के बाद सिनेमा में जाने पर भी वहाँ बिकने नहीं दिया फिर पहले जैसी ही अनिश्चित स्थिति में बस लौट आने का साहस दिया !

कुछ ऐतिहासिक और कुछ सामाजिक कारणों से यह बीच की पीढ़ी असमय बूढ़ी हो गई है, पर कुछ मास पहले वाजपेयीजी मुझे मिले, तो पूरी तरह ताजा और तेज़—सचाई यह है कि एकदम चौवन साल के युवक !

मैंने पूछा—आगे और कुछ लिखने का प्रोग्राम है या 'चलते-चलते' में आगई मंज़िल ?

"वाह, दोस्त !" इतने ज़ोर से कि एक धड़ाका, तो हा-हा एक अट्टहास, इतने ज़ोर से कि एक गूंज और तब एक लिस्ट, लिखे जाने वाले साहित्य की, जिसकी पृष्ठ संख्या कई हज़ार।

कलाकार वाजपेयी हमारे साहित्य को कई हज़ार पृष्ठ अपनी जवानी में दे चुके और कई हज़ार पृष्ठ उम्र के इस ढलाव में वे हमें देने को हैं, मैंने सोचा तो मन खुशी से भर गया, पर तभी जागा यह प्रश्न—और हमने उन्हें क्या दिया ? तो मन उदासी से सुस्त हो बैठा।

जो कलाकार प्रतिदान न पाकर भी दिए गया और दिए ही जा रहा है, वह जीवन में १०० वां बसंत देखे।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप लोग श्री भगवतीप्रसादजी का अभिनन्दन करने जा रहे हैं। श्री वाजपेयी मेरे बहुत पुराने मित्र हैं। मैं उनके स्वभाव को जानता हूँ। वे चुपचाप साहित्य-सेवा करते रहे हैं। सब प्रकार की विज्ञापनबाजी से वे दूर रहे हैं। उनका अभिनन्दन करके आपने बहुत उत्तम कार्य किया है। इस अवसर पर मेरी हार्दिक प्रीति और श्रद्धा को आप श्री वाजपेयी तक पहुँचा दें।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

हिन्दी के पुराने साहित्य-सेवी श्री भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के अभिनन्दन के लिए आपके प्रयत्न की सफलता चाहता हूँ।

श्रीकिशोरीदास वाजपेयी

प्रिय बन्धु पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी के अभिनन्दन से मैं स्वयं अभिनन्दित हो रहा हूँ—मैं भी कानपुर का ही हूँ— ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, अँखियन को सुख होत'। इसी तरह के उत्सवों की लहर चलनी चाहिए, जागरण होगा।

श्रीसच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय'

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की साहित्य-सेवाओं से कौन हिन्दी पाठक अपरिचित होगा ? साहित्य के एकाधिक क्षेत्र में उन्होंने अपना स्थान बनाया है, और विशेष समय से उनके उपन्यासों में रुचि रखने वाले पाठकों की संख्या तो बहुत बड़ी है। उनकी ५४वीं वर्षगाँठ पर मेरी विनम्र सत्कामनाएँ और शुभकामनाएँ उन तक पहुँचाने की कृपा करें। अभिनन्दन समारोह में देह से न उपस्थित होकर भी मैं उसमें भागी रहूँगा।

श्रीरामकृष्ण शर्मा बेनीपुरी

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप लोग मेरे प्रिय मित्र श्री भगवती प्रसाद वाजपेयीजी को अभिनन्दन ग्रंथ अर्पित करने जारहे हैं। वाजपेयीजी के प्रति मेरा झुकाव स्वाभाविक रहा—वह मेरी तरह हँसोड़ हैं, खुले दिल हैं, फक्कड़ हैं, यारवाश हैं, दोस्तपरस्त हैं और सबसे बढ़कर हैं आप अपना निर्माण करने वाले—कोई कालेज, कोई उपाधि, कोई व्यक्ति उन पर अपने अहसान का बोझ नहीं डाल सकता। उन्होंने अपने को स्वयं बनाया है, संवारा है। उनका व्यक्तित्व अपना है, भाषा अपनी है, शैली अपनी है। शायद इसीलिए साँचे में ठंडे हुए या साँचे में ढालने वाले लोगों में वह खप नहीं पाते, खप नहीं सके। किन्तु, साहित्य को उन्होंने जो कुछ दिया है, वह उन्हें सदा अजर अमर बनाए रखेगी। मैं उनका एक साथी हूँ, हमराही हूँ। अत: इस शुभ अवसर पर आप उन तक मेरा हार्दिक अभिनन्दन पहुँचा दें, यही निवेदन है।

श्रीसियारामशरण गुप्त

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की ५४वीं वर्षगाँठ के अवसर पर मेरे विनम्र प्रणाम अर्पित हैं।

श्रीज्ञानचन्द्र जैन

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयीजी की ५४वीं वर्षगाँठ पर उनके अभिनन्दन का जो आयोजन हुआ है, उससे मुझे भारी प्रसन्नता हो रही है। प्रेमचन्द के बाद हमारे साहित्यकारों में कलम के सच्चे मज़दूर के पद पर आसीन होने का यदि कोई अधिकारी है तो वाजपेयीजी हैं। वाजपेयीजी का अभिनन्दन करके हम वस्तुतः कलम के उस मज़दूर का अभिनन्दन कर रहे हैं जो हमें समाज के सपने जगाने और उस यथार्थ की भूमि पर उतारने के लिए दीपक की भाँति स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश का दान करता है। आज यदि समाज उनका अभिनन्दन करने के लिए प्रेरित होता है तो समझना चाहिए कि वह इस बहाने स्वयं अपनी शक्ति के मूल स्रोतों को पहचानने की कोशिश कर रहा है और वह वस्तुतः अभिनन्दन किसी व्यक्ति-विशेष का न करके अपना ही कर रहा है।

श्रीरामप्रताप त्रिपाठी

पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी कथा-साहित्य के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। वे एक संवेदनशील उच्च कवि हैं तथा उनकी लेखनी में चमत्कार है। एक पाठक के रूप में मैं उन्हें चिरकाल से जानता हूँ और उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ी उच्च भावनाएँ हैं। सौभाग्य से पिछले दस वर्षों से मैं उनके अधिक से अधिक समीप में आया और मैंने अनुभव किया कि साहित्यकार वाजपेयी की भाँति ही उसका व्यक्ति भी महान् है। उसका समादर एक ऐसे साहित्यकार का समादर है, जिसने अकेले अपने पुरुषार्थ से अपना भाग्य निर्माण किया है और जिसने कालेजों की पुस्तकों के पन्नों से अधिक धरती के प्रत्येक अंचलों में अपनी गहरी आँखे फैलाकर उसका रंग-ढंग देखा है। और उसके मीठे-कड़ुए पदार्थों का स्वाद चखा है।

वाजपेयीजी अभी प्रौढ़वय के हैं। उनका यह अभिनन्दन ही अन्तिम नहीं है। हमारी मंगल कामना है कि वह पूर्ण निरोग एवं स्वस्थ रहें तथा आपका यह शुभ आयोजन सब प्रकार से सफल हो।

श्रीगङ्गाप्रसाद पाण्डेय

आज हिन्दी के चिरपरिचित सुप्रसिद्ध कथाकार श्री भगवतीप्रसादजी वाजपेयी की चौवनवीं वर्षगाँठ हिन्दी जगत् बड़े उत्साह एवं उल्लास के साथ मना रहा है।

यह साहित्य-सेवियों के माध्यम से साहित्य-देवता की अर्चना है। वाजपेयीजी के सैकड़ों कहानियों तथा दर्जनों उपन्यासों से साहित्य का भण्डार भरा है।

सरस्वती-मंदिर के वे साधना-सफल पुजारी हैं। वे अभ्यास से कर्मठ और स्वभाव से सदैव सरल रहे हैं, स्वभावत: उनका साहित्य सुबोधता में सहज और विस्तार में व्यापक है।

व्यक्ति की भावात्मक उदारता में उनके साहित्य और उनके व्यक्तित्व का शोभनीय संगम दर्शनीय ही नहीं कला की विषदता में वांछनीय भी है।

इस मंगल बेला में उनके लिए मैं अपने हृदय की शतशत शुभ कामनाएँ और विनम्र प्रणाम भेजता हूँ। मेरी कामना है कि घर-घर में इस उत्सव के बधावे बजें और वाजपेयीजी के चिरायु होने की प्रार्थनाएँ की जाँय।

प्रगाढ जीवनव्यापी वेदना को संगिनी के रूप में स्वीकार करते हुए भी चिर-प्रसन्न मुद्रा में स्नेह-तरल दृष्टि के संचार में स्वर्गीय प्रेमचन्द के बाद वे अकेले हैं।

बच्चों-सी गोली, हिरन जैसी भोली आँखों में निर्विकल्प उत्सुकता की सम्भावना उनके स्मरण भाव से मेरे सामने साकार हो उठती हैं।

बड़े अच्छे हैं वाजपेयीजी, बहुत अच्छा लिखते हैं। उन्हें बारम्बार प्रणाम।

श्रीसुन्दरलाल त्रिपाठी

स्रष्टा के सृजन का वर्णन अथवा विश्लेषण सहज नहीं है।—शिल्पी के जीवन का अंकन भी कठिन है। साहित्य और काव्यकला के इतिहास में कथाशिल्प और कवितावस्तु की परिभाषाएँ हैं, जो मनोमोहक हैं। परिभाषा अंकित की जा सकती है। जीवन्त मनुष्य का विश्लेषण नहीं होता।—हो नहीं सकता। कथाशिल्पी तथा कवि का विश्लेषण और दुरूह है।

पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी साहित्य के कथाशिल्पी और कवि हैं। उनके लेखन को प्रशंसा प्राप्त हुई है। उनकी वर्षगाँठ मनाई जा रही है! वाजपेयीजी के जीवन का यह अपराह्न है। उन्होंने कथाशिल्प में शरच्चन्द्र अथवा प्रेमचन्द अथवा वात्स्यायन अथवा जैनेन्द्र अथवा प्रभाकर

श्रीरूपनारायण पाण्डेय

श्रीभगवतीप्रसादजी को मैं स्नेहमिश्रित श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ— केवल इसलिये नहीं कि वह एक उच्च कोटि के कवि, श्रेष्ठ कहानीकार तथा सूक्ष्मदर्शी औपन्यासिक हैं। ये विशेषताएँ तो और भी कई सज्जनों में हो सकती हैं और हैं। मैं तो उनके अदम्य उत्साह, उठने की सच्ची लगन और स्वावलम्ब के जीते-जागते आदर्श का भक्त हूँ। वाजपेयीजी ने जितना कम संबल लेकर जीवन की इतनी मंजिल पार की है, वह बहुत ही थोड़ा था। पर उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की। अपनी सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा उन्होंने संसार का अध्ययन किया, ज्ञान की पूँजी बढ़ाई और तेनसिंह की तरह प्रतिपत्ति की ऊँची चोटी पर पहुँच कर ही दम लिया और अपना झंडा गाड़ दिया। उनके रचे साहित्य से, उनकी साहित्यिक दृष्टि और विचार शैली से भले ही कुछ लोगों का मतभेद हो, पर उनके इन गुणों की सराहना सभी करेंगे। मैं इस अवसर पर इन्हीं शब्दों में अपनी भावना प्रकट करके इस महावीर साहित्यिक का अभिनन्दन करता हूँ। ईश्वर वाजपेयीजी को शतायु करें। उनकी रत्नप्रसविनी लेखनी रुकने का नाम ले।

श्रीविश्वम्भरनाथ जिज्जा

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे परम प्रिय आदरणीय मित्र श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की ५४वीं वर्षगाँठ मनाने का आयोजन किया गया है। इस अवसर पर एक अभिनन्दन-पत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय भी सराहनीय है।

लगभग तीन दशाब्दियों से मेरा वाजपेयीजी से परिचय है। वे निस्सन्देह उन तपस्वी लेखकों में हैं, जिन्होंने बिना किसी भय या प्रलोभन के, केवल साहित्य साधना को ही अपने जीवन का उच्चतम लक्ष्य बनाया और वे उसी पथ पर निरन्तर अग्रसर रहे।

वे 'प्रसाद' और मुंशी प्रेमचन्द के समकालीन हैं, और 'प्रसाद' जी की ही तरह उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि सभी साहित्यिक क्षेत्रों में अपनी लेखनी के चमत्कार दिखाये हैं। वाजपेयीजी की कृतियों का हिन्दी संसार में समुचित आदर हुआ है। साहित्यिक जगत में उनका एक विशेष स्थान है। उन्होंने हिन्दी के विकास में जो महत्वपूर्ण योगदान किया है वह साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

वाजपेयीजी सरीखे प्रतिष्ठित साहित्यसेवी के इस अभिनन्दन समारोह में हम भी हृदय से सम्मिलित हैं, और अपनी शुभकामना प्रकट करते हैं। जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसे यशस्वी साहित्यकार को दीर्घकाल तक साहित्यसेवा करने और मातृभाषा का गौरव बढ़ाने का सुअवसर प्रदान करता रहे। आपके अभिनन्दन द्वारा हम साहित्य का अभिनन्दन करते हैं।

श्रीरामकिशोर मालवीय

पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी ने अपनी श्रेष्ठतम औपन्यासिक प्रतिभा से, अपने उच्चकोटि के उपन्यासों और कहानियों से मातृभाषा हिन्दी के भण्डार को जिस प्रकार भरा है और अपने साहित्य से जो साहित्यिक तथा सामाजिक सेवा की है, वह हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ियों को प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

जहाँ तक वाजपेयीजी की कहानी और उपन्यास-कला का सम्बन्ध है, उसे हिन्दी संसार को बताने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो एक शब्द में इतना ही कहना चाहूंगा कि कल्पना की उड़ान, पात्रों के कार्यों और कथोपकथन में मानव स्वभाव की सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों का व्यक्तीकरण और सामाजिक बुराइयों पर चाबुक नहीं हथौड़े की चोट से प्रहार करने में वाजपेयीजी वर्तमान कलाकारों में अपना सानी नहीं रखते।

अन्त में मैं अपने पुराने और सम्मानित मित्र पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी को उनके इस अभिनन्दन समारोह में अपना आन्तरिक हर्ष प्रकट करते हुये हार्दिक बधाई देता हूं और परम-पिता से प्रार्थना करता हूँ कि वाजपेयीजी को वह दीर्घ जीवन प्रदान करे और वे अपने सत्साहित्य से मातृभाषा का भण्डार निरन्तर भरते रहें।

श्रीउपेन्द्रनाथ 'अश्क'

वाजपेयीजी के अभिनन्दन की बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। हिन्दी के इस तपस्वी का मान बढ़ाना, राष्ट्र-भाषा का मान बढ़ाना है। आज से बहुत पहले यह आयोजन होना चाहिये था। पर यह अंग्रेज़ी में कहते हैं कि न करने की अपेक्षा देर से करना भला है और फिर 'देर आयद दुरुस्त आयद'।

वाजपेयी जी का अभिनन्दन-समारोह पूर्ण रूप से सफल हो और वाजपेयी जी शतायु हों, यह मेरी और कौशल्या की शुभकामना है।

श्रीकृष्णदास

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी की मौन साधना और निष्कलुष साहित्य-सेवा का सादर, सस्नेह, साधिकार अभिवादन-अभिनन्दन।

श्रीसत्यकाम विद्यालंकार

श्रीवाजपेयीजी की साहित्य-सेवाओं से मैं परिचित हूं। उनकी कहानियों में जो सुरुचिपूर्ण हास्य रहता है वह उनकी अपनी चीज़ है। उनके सौजन्य से भी मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। जिस लगन से उन्होंने साहित्य-सेवा की है वह स्पृहणीय है।

श्रीमार्तण्ड उपाध्याय

मैं आपके इस आयोजन की सफलता चाहते हुए कामना करता हूँ कि वाजपेयीजी दीर्घजीवी हों और बहुत समय तक हिन्दी को अपनी सेवाओं का लाभ देते रहें।

डॉ० रामचरण अग्रवाल

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी जैसे हिन्दी के अमर कलाकार का अभिनन्दन करके यह समिति स्वत: अभिनन्दित होगी। श्रीवाजपेयीजी की साहित्य-साधना की ओर ध्यान देते हुए समिति का यह कार्य बहुत ही पुनीत एवं स्वानुरूप है। श्रीवाजपेयीजी उन मूक साहित्य-साधकों में हैं जो अपनी कला का ढिंढोरा नहीं पीटते, किन्तु अपनी मूक-साधना द्वारा ही सहृदयों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। साहित्य को जो 'गुप्तधन' उन्होंने दिया उसे प्रकट होने की आवश्यकता है। आशा है, यह समिति उस कार्य को करने में सक्षम होगी और इस अभिनन्दन-ग्रन्थ द्वारा वाजपेयी जी की कला का मूल्याङ्कन समुचित रूप में कर सकेगी।

श्रीवाजपेयीजी के विषय में मैं व्यक्तिगत रूप में क्या कहूँ। वे अपने हैं, प्रयाग के हैं, उनकी अधिकांश साहित्य-साधना प्रयाग ही में हुई है। यह ईर्ष्या का विषय है कि कर्णपुर ने उनको प्रयाग से छीन लिया। जो प्रयाग का कार्य था, उसे कर्णपुर ने कर दिखाया। अस्तु, कहीं से भी हो, यह अभिनन्दन हिन्दीजगत द्वारा ही कहा जायगा।

श्रीरतनलाल जोशी

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के अभिनन्दन की यह योजना अत्युत्तम है। शिकायत यही है कि वाजपेयीजी को यह सम्मान १० वर्ष पूर्व ही मिल जाना चाहिये था। मैं वाजपेयी जी के कर्मठ व्यक्तित्व और प्राणवान लेखनी से वर्षों से परिचित हूँ। जीवन के समस्त गरल को निःशंक भाव से पीकर श्रीवाजपेयीजी ने हिन्दी का अमृतोपम पोषण किया है। उनके व्यक्तित्व की सबसे आकर्षक विशेषता यह है कि आजीवन संघर्षों के साथ जूझते हुए भी उनके मानस में कटुता एवं विरसता नहीं आने पायी है। आपके द्वारा आयोजित इस शुभ प्रसंग पर मैं हिन्दी के इस तपोधनी साहित्यकार को सादर नमस्कार करता हूँ।

श्रीयमुनाप्रसादसिंह

हिन्दी-साहित्य के यशस्वी कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी के अभिनन्दन समाचार से हार्दिक प्रसन्नता हुई। वाजपेयी जी की कृतियाँ समाज एवं राष्ट्र के लिये अमूल्य निधि हैं। उन्होंने जिस विषय में जो कुछ लिखा है उसमें उनकी अपनी आत्मानुभूति, अपना दृष्टिकोण है। हर्ष का विषय है कि वाजपेयीजी ने अपने विचारों को स्वाभाविकता की पुट देकर, कथा की शैली में, पात्रों के कथोपकथन में, पात्रों की भाषा में व्यक्त किया है। मैं वाजपेयीजी को इस शुभ अवसर पर बधाई देता हूँ।

श्रीनीलकण्ठ तिवारी

इस ५४ वीं वर्षगाँठ के शुभावसर पर मैं अपनी समस्त हार्दिक शुभकामनाओं एवं भावनाओं सहित भगवान से यही विनती करता हूँ कि हिन्दी के समुज्वल रत्न श्रीवाजपेयीजी दीर्घ-काल तक दिन दूना रात चौगुना जगमग-जगमग करते रहें तथा राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भण्डार को और भी अधिक उज्ज्वल रत्न-हारों से समृद्ध एवं यशस्वी बनाते रहें। भगवान् आपको पूर्ण सफलता प्रदान करें।

श्रीनरसिंहराम शुक्ल

श्रीवाजपेयी जी आज के लेखक हैं, नकि बीते कल के, अथवा आने वाले कल के। उनकी रचनाओं में आज के समाज की हलचलों का सुन्दर

दर्शन मिलता है। वे कठिनाइयों से पलायनवाद नहीं सिखाते, यह उनका एक अद्भुत गुण है। वे अपनी रचनाओं में अपनापन देते हैं। किसी अन्य के खेत का उपजा गेहूं, पचाकर, सूजी या मैदा के रूप में 'नयी चीज़' देने का नाट्य नहीं करते। मुझे वे एक निश्छल और कोमल हृदय लेखक के परम उत्कर्षमय रूप में दीख पड़ते हैं।

मैं उनमें हूँ जो उन्हें बड़ा मानते हैं। मेरी मनोकामना है कि एक स्वाभाविक लेखक के रूप में अधिक से अधिक समय तक वर्तमान रहकर वे हमारे आज को आनन्दमय बनाते हुए अपने मित्रों के लिये स्पृहा के पात्र बने रहें।

श्रीरघुनाथ पाण्डेय 'प्रदीप'

लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार श्री पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी का सम्मान हिन्दी-जगत के लिए गौरव का विषय है। श्रीवाजपेयीजी का स्थान हिन्दी के गिने-चुने साहित्यकारों में है। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में उन्होंने प्रर्याप्त कीर्ति अर्जित की है। वाजपेयीजी के उपन्यासों और कहानियों में जहाँ हमें चिन्तन और दर्शन की सामग्रियाँ मिलती हैं, वहाँ समाज में फैली हुई विविध रूढ़ियों और कमजोरियों को दूर करने के लिये तीव्र प्रेरणा भी। लेखन और चरित्र-चित्रण की सजीव शैली पाठक पर अपनी अमिट छाप लगा देती है। आपकी लेखनी सरपट दौड़ती है। तभी तो आपने लगभग चार दर्जन उत्कृष्ट पुस्तकें लिख ली हैं, जिनमें कई उपन्यास, कहानी-संग्रह नाटक और कविता-संग्रह आदि हैं।

श्रीवाजपेयीजी का व्यक्तित्व भी, उनके साहित्य की ही तरह आकर्षक है। बड़े ही मृदुभाषी और कोमल स्वभाव के सीधे और सरल, मित्र-मण्डली में खुलकर हँसने-बोलनेवाले। अहमन्यता से कोसों दूर। सरस्वती के अधिकांश वरद पुत्रों की तरह वे बड़ी मस्ती में रहते हैं।

उनके जीवन ने निकट परिचय रखने वाले जानते हैं कि वाजपेयीजी ने किस तरह स्वाध्याय के बल पर ही, अपने को इतना ऊँचा उठाया है। अधिकांश ऊँचे साहित्यकारों की तरह, उन्हें कोई डिग्री-डिप्लोमा प्राप्त नहीं। लेकिन उनकी कई पुस्तकें उच्च कक्षाओं में सम्मानपूर्वक रखी गयी हैं।

यह यशस्वी साहित्यकार हिन्दी के माध्यम से समाज और देश की अधिकाधिक सेवा करने के लिए दीर्घजीवन प्राप्त करें, यही भगवान से हार्दिक प्रार्थना है।

श्रीराजेन्द्रनाथ मिश्र

कानपुर का गर्दोगुबार और कड़ुवा धुँआ। नवम्बर सन् १६५० की एक अलसाई उनींदी सर्द रात। फ़र्श पर बिछे गलीचे, उन पर बैठे हुए कवि, साहित्यकार, कलाकार और साहित्यप्रेमी। उनके सामने गर्म चाय के प्याले और दालमोठ। मसनद के सहारे एक श्यामवर्ण सौम्य मुखमण्डलवाले व्यक्ति, अवस्था यही ५० वर्ष की होगी। मोटे फ्रेम के चश्मे से झाँकती हुई अनुभवी आँखें।

मैंने अपने एक मित्र से आग्रह किया कि सबसे परिचय करा दें। उन्होंने मेरी इच्छा पूरी कर दी। परिचय कराते हुए उन्होंने कहा कि आप हैं श्रद्धेय भगवतीप्रसादजी वाजपेयी चोटी के कवि, कथाकार, विचारक एवं दार्शनिक—आज के सभापति। मैं इतना सुनते ही सोचने लगा कि तो यही वह वाजपेयीजी हैं जिनकी 'पतिता की साधना' मैंने हाईस्कूल की परीक्षा के बीच चुपचाप समय निकालकर पढ़ी थी और फिर गर्मी की छुट्टियों में तो 'प्रेमपथ' 'मीठी चुटकी' और 'प्रेमनिर्वाह' को भी पढ़ डाला था। तो यही वह सज्जन हैं जिन्होंने काँटों से खेल कर फूल सजाए हैं। समाज की कुरीतियों का विषपान करके अमृत प्रदान किया है। कभी अध्यापक, तो कभी कम्पाउंडर और पुस्तकाध्यक्ष तो कभी पुस्तक विक्रेता, कभी उपसम्पादक और सम्पादक। और उन सब के मूल में एक कवि और लेखक। कवि ऐसा कि जिसकी कविता की एक-एक पंक्ति श्रोताओं की हृत्तंत्री के तारों को झंकृत कर दे और लेखक ऐसा कि पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ दे। यही है वह सत्य का पुजारी चिन्तन और मन्थन का साधक। वादों के अपवाद से दूर भागनेवाला विचारक, स्वर्ण जैसी तपी भाषा का पण्डित, वास्तविक जगत और जीवन से लिए हुए चरित्रों का स्रष्टा। कसी चुस्त शैली का स्वामी। मानवप्रकृति सम्बन्धी भावनाओं का पारखी और कुरीतियों का शत्रु। समाज का सच्चा मित्र।

इस प्रकार मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय हुआ। धीरे-धीरे उनके निकट आ गया। उनकी कविताएँ सुनी-पढ़ीं। उनके सब उपन्यास और कहानी संग्रह पढ़े। 'चलते-चलते', पतवार', 'पुष्करिणी' और 'ख़ाली बोतल' मुझे बहुत अच्छी लगी।

वाजपेयीजी सिनेमा-क्षेत्र में भी काम कर चुके हैं, किन्तु आप वहाँ बहुत समय तक नहीं रहे। अच्छा हुआ, आप उस जगत से चले आये। वहाँ आप जैसे कोमल एवं सरलस्वभाव के व्यक्तियों के लिये स्थान ही नहीं है।

श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री

हिन्दी के अन्यतम प्रतिनिधि कथाकार श्रीभगवतीप्रसादजी वाजपेयी ने जिन दिनों कथासूत्र को मनोवैज्ञानिक आधार देना शुरू किया था, तब मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आग्रह आज की भाँति सस्ता नहीं हुआ था। वाजपेयीजी ने पाश्चात्य साहित्य के गम्भीर अध्ययन, मनन के परिणाम स्वरूप ही यह निष्कर्ष निकाला होगा कि हिन्दी की कथावस्तु को आदर्श यथार्थ की सतह से गहराइयों में उतारने का सबसे सुन्दर माध्यम मनोवैज्ञानिक हो सकता है। और वह प्रारम्भिक प्रयास से प्रौढ़ परिणति तक उसे प्रश्रय देते रहे।

इस युग में 'दलहीन' साहित्यिक की उपेक्षा का क्या कहना और मैं पुस्तकों के अभाव में अब तक वाजपेयीजो की दो रचनाएँ ही पढ़ पाया हूँ— "मिठाई वाला" कहानी और "दो बहनें" उपन्यास। मैं समझता हूँ, कलात्मक सौष्ठव में वाजपेयीजी की प्रौढ़ि तो आकर्षक है ही, किन्तु वस्तु का प्रस्तुत विस्तार जो विचार विवेक या औचित्य को क्षण भर नहीं छोड़ता, चरम विन्दु पर पहुँचा हुआ प्रभावोत्पादक होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रस और विज्ञान की होड़ाहोड़ी में व्यक्ति या समाज के माध्यम से जीवन की उत्ताल-शपथ तरङ्गों को ही वह रूप और वाणी देते हैं।

मैं निराला जी के लड़के के ब्याह के अवसर पर दो-एक दिन उनके साथ रह चुका हूँ। उसी समय आचार्य्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी के साथ उनका साहित्यिक संलाप भी सुन चुका हूँ। मुझे उनके व्यक्तित्व में और विचारों में भो, आत्मश्लाघा का जगह सर्वत्र अपने ऊपर अटूट आस्था का ही आभास मिला था। यहो आस्था निर्माण का प्राण है। हिन्दी के कथा-साहित्य को वाजपेयीजी पर गर्व है।

डा० प्रतिपाल सिंह

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी साहित्य की एक दीर्घकाल से सेवा कर रहे हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता और नाटक आदि लिखकर अपनी

बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है। मैं श्रीवाजपेयीजी को उनकी ५५वीं वर्ष गाँठ के अवसर पर अभिनन्दन करता हूँ।

श्रीनारायणप्रसाद अरोड़ा

१६२१ में खन्ना प्रेस से मासिक "संसार" के निकलने पर पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी से परिचय हुआ। "संसार" के सम्पादक पं० उदयनारायण जी वाजपेयी थे। ग्राहकों को पत्र भिजवाने, प्रूफ़ देखने और रजिस्टर आदि के रखने का काम पं० भगवतीप्रसाद जी के सिपुर्द था। इन्होंने कभी-कभी "संसार" के लिए नोट्स और लेख लिखना भी शुरू किया और अपने अध्यवसाय से पत्र के लिए अपने को आवश्यक बना लिया। जब पं० उदयनारायण जी ने पत्र से किनाराकशी कर ली और इन पंक्तियों का लेखक जेल चला गया, तब सद्गुरुशरणजी अवस्थी "संसार" के सम्पादक बनाये गये। किन्तु कालेज में पढ़ना जारी रखने के कारण उन्होंने भी "संसार" का भार नहीं सम्हाला। अतः "संसार" के सम्पादन आदि का कार्य भी पं० भगवतीप्रसाद के सिर मढ़ा गया। उन्होंने खूब परिश्रम किया और जब तक "संसार" चला वही उसके सम्पादक रहे। जेल से आकर मैंने भी उनके कार्य से अपना संतोष प्रकट किया। पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी अपने परिश्रम और अध्यवसाय से साहित्यिक जीवन में आये हैं और नगण्य से अग्रगण्य हो गये हैं और अब तो साहित्यिक जगत में, विशेषकर कथाकारों में उनका एक विशिष्ठ स्थान है। ईश्वर उन्हें और भी आगे बढ़ाए।

"संसार" ने पं० सद्गुरुशरण अवस्थी और पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी नामक जो दो साहित्यिक ढाले, उन दोनों ही ने ईश्वर कृपा से हिन्दी जगत् में अपना-अपना स्थान बना लिया। मातृभाषाहिन्दी को दोनों से बड़ी आशाएँ हैं। ईश्वर उनकी सहायता करे।

श्रीहीरालाल खन्ना

साहित्यकार पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी मेरे पुराने दयालु हैं। मैं भी उनके तुच्छ प्रशंसकों में हूँ। ईश्वर उनको दीर्घायु करे।

श्रीकृष्णविनायक फड़के

पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी मेरे पुराने मित्रों में है। उनके भीतर एक अदम्य अंतः ज्योति विद्यमान है। उनकी अनेक रचनाएँ इसी ज्योति के व्यक्त

रूप हैं। मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ कि ईश्वर वाजपेयीजी को दीर्घायु प्रदान करे जिससे उनकी अन्त: प्रेरणाओं से हमारा राष्ट्र अधिकाधिक लाभान्वित हो।

श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री

पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी हिन्दी-साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। उनकी साहित्यिक सेवा अवश्यमेव अभिनन्दनीय है। इस आयोजन के उपलक्ष में मैं वाजपेयीजी के प्रति शुभकामना प्रकट करता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें पूर्णायुष करें।

श्रीलक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी मेरे पुराने मित्रों में हैं। वे एक दीर्घकाल से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। उन्होंने नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए जो साहित्य-साधना की है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह उन्हें दीर्घायु करे, जिससे वे हिन्दी की अधिक से अधिक सेवा कर सकें।

श्रीहृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

यशस्वी साहित्यकार पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी हिन्दी जगत् के एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं। आपकी साहित्य-यात्रा का एक दीर्घकाल व्यतीत हो चुका है। इस यात्रा में आप कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार आदि अनेक रूपों में आये हैं, किन्तु इनमें कथाकार का व्यक्तित्व ही सर्वोपरि रहा है।

जिस समय वाजपेयीजी ने माता भारती के पुनीत प्रतिष्ठान में साहित्य-सुमनाञ्जलि चढ़ाकर अर्चना के अदम्य उत्साह से पदार्पण किया था, उस समय सरस्वती के दो वरद् पुत्रों प्रसाद और प्रेमचन्द के युग का प्रारम्भ था; किन्तु आपने इन दोनों महान् कलाकारों में से किसी का भी पूर्णतया अनुकरण नहीं किया। प्रत्युत् अपनी प्रतिभा द्वारा दोनों धाराओं का समन्वय कर एक नवीन ही धारा प्रभावित की जिसका प्रतिनिधित्व आपकी अद्यावधि लिखित रचनाओं में स्पष्टरूपेण देखने को मिलता है। यही है आपकी कला की मौलिकता और विशेषता।

वाजपेयीजी के पचपनवें वर्ष के प्रवेशोपलक्ष में उनके अभिनन्दन से मुझे प्रसन्नता हुई है। इस प्रकार के अभिनन्दनों से साहित्यकारों को साहित्य-

सृजन के लिये प्रोत्साहन मिलता है और मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्य में वाजपेयीजी की कला का महत्‌दान (Magnum opus) हिन्दी को अवश्य प्राप्त होगा। आयोजन के लिये मेरी शुभकामना है कि यह साहित्यिक अभिनन्दन वाजपेयीजी के स्वास्थ्य और आयुष्य-वृद्धि में सहायक होकर उनकी कला-साधना की ज्योति को और अधिक जगाये।

श्रीबालमुकुन्द गुप्त

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के मूक तपस्वी साहित्यकारों में हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य को गद्य एवं पद्य दोनों क्षेत्रों में अपूर्व सम्पन्नता प्रदान की है। प्रेमचन्द के उत्तरकालीन कथाकारों में इनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इनके उपन्यासों में 'प्रसाद' की कान्ति और प्रेमचन्द का प्रसाद गुण है। इनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य की अमर निधि हैं, जिनमें अद्‌भुत एकतथ्यता है। शैली की दृष्टि से भी वे नितांत मौलिक और अति आधुनिक हैं।

हर्ष का विषय है कि कानपुर के साहित्यिक वर्ग ने इस स्वाभिमानी एवं निस्पृह कलाकार को यथार्थ रूप में पहचाना। वे हम सबके अभिनन्दनीय हैं। इस पुण्य अवसर पर उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक शुभकामना समर्पित करता हूँ और ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि इस कलाकार को चिरकाल तक सेवा करने का अवसर दे।

श्रीलक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी

आज हिन्दी-जगत यशस्वी कलाकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कृतियों को इसलिए आदर के साथ पढ़ रहा है कि उनका जीवन-सम्बन्धी अध्ययन गहरा तथा व्यापक है। वह समाज की बारीकियों के एक सफल तूलिकाकार हैं। उन जैसी विलक्षण एवं चतुर्मुखी प्रतिभा हिन्दी में 'प्रसाद' के पश्चात् बहुत कम साहित्यकारों को मिल पाई है। उनके निकट रहकर उन्हें देखने और समझने की मैंने भरसक चेष्टा की है और मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जहाँ वह ऊँचे कलाकार हैं वहीं एक संवेदनशील महामानव भी हैं।

आज एक ऐसे अवसर पर जब कानपुर में इस कर्मठ साहित्यकार का अभिनन्दन किया जा रहा है, मैं भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

श्रीश्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'

सन् १६३८ से लेकर आज तक पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के समीप बैठने के सुअवसर मुझे मिलते रहे हैं। उनकी अनेक कहानियाँ मैंने पढ़ी हैं। उनके लगभग सभी उपन्यास भी ('पतवार' के अतिरिक्त) पढ़े हैं। किन्तु मैं आज भी उनको पूर्णत: समझ नहीं पाया हूँ। साहस करके यह तो कह सकता हूँ कि वाजपेयीजी के कथासाहित्य के पात्र जीवन-संघर्ष की जिन विषम परिस्थितियों में साँस लेकर प्रेम, मिलन, वियोग में हँसते, मिलते और बिछुड़ते रहते हैं, सम्भवत: उन्हीं के कथोपकथन में वाजपेयीजी का अपना कथन और उनके पात्रों के आन्तरिक उद्‌गारों में वाजपेयीजी के अपने हृदयोद्‌गार मिल गये हैं। पात्रों के अतिरिक्त वाजपेयीजी स्वयं मूक हैं। वे अपने को समझने नहीं दे सकते, वे अपनी बात नहीं कहना चाहते, वे अपना दृष्टिकोण नहीं व्यक्त करते, फिर भी अनजाने ही अपने पात्रों की भाषा में वे सब कुछ कह जाते हैं और यहीं पर मैंने वाजपेयी जी को समझा है।

अन्त में मैं यह भी कहने का साहस करूँगा कि एक ओर जहाँ उपन्यास और कहानियों में पात्रों के आन्तरिक भावों, अनुभूतियों का चित्रण करने में वाजपेयीजी यथार्थवादी रहे हैं, वहीं दूसरी ओर मर्यादा और परम्परा की लीक पर चलने वाली नारी की परवशता पर दृष्टि डालते हुए, उसे जागरण-संदेश देकर, नवयुग का पथ प्रशस्त करते हुए, वे यथार्थवाद को भी पीछे छोड़ कर आगे निकल गए हैं। विपत्तियों से घिरी हुई परिस्थितियों की शिकार गरीब भारतीय नारी के साथ वाजपेयीजी ने दु:शाशन का सा व्यवहार नहीं किया—उसकी लज्जा को निरावरण नहीं किया। इसीलिए वाजपेयीजी स्तुत्य हैं, वन्दनीय हैं। वाजपेयीजी का साहित्य अपनी अजेय शक्ति के बल पर मानवीय दुर्बलताओं को चुनौती देता हुआ 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की ओर उत्तरोत्तर गतिशील है। ऐसे आदरणीय एवं महान कलाकार के श्रीचरणों में मैं प्रणाम करता हूँ।

श्रीयादवचन्द्र जैन

एक वह दिन था जब मैं वाजपेयीजी के दर्शन करके सीढ़ियों से उतरा था और एक आज, जब मैं वाजपेयीजी से विनोद की गहराइयों में अनायास पैठ जाता हूँ। यह मैं अपनी धृष्टता नहीं मानता अपितु, यह है

वाजपेयीजी का मेरे प्रति अपार स्नेह, जो मुझे ही नहीं, प्रसाद रूप में प्रत्येक को उन्होंने बाँटा है।

हाँ, वाजपेयीजी का "कलाकार"—उसके सम्बन्ध में "सागर के मन्थन" का-सा प्रयास जब मैं कर पाऊँगा तभी कुछ व्यक्त करने का साहस करूँगा।

श्रीश्रीकृष्ण टण्डन

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयीजी के समस्त उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा है। प्रेम की प्रधानता होते हुए भी लेखक ने सब स्थानों पर साधना और त्याग की विजय दिखाकर अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इस प्रकार यथार्थ की आधार-शिला पर खड़े होकर लेखक हमें आदर्श की ओर सर्वत्र उन्मुख दिखाई देता है। उनके पात्र परिस्थितियों के आघात-प्रतिघात से उठते और गिरते चलते हैं; किन्तु फिर भी प्रायः हमारी सहानुभूति उनके साथ बनी रहती है। गिरे से गिरे पात्र में भी कहीं-न-कहीं ऐसी उदात्त भावनाएँ देखने को मिलती हैं कि अनायास ही वाजपेयीजी की चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी कुशलता के लिये मुख से वाह-वाह निकल पड़ती है। मनुष्यों में निहित आसुरी और दैवी शक्तियों और क्षणप्रतिक्षण होने वाले स्वाभाविक संघर्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए पात्रों का चरित्र-चित्रण करना ही लेखक का जैसे उद्देश्य प्रतीत होता है।

भाषा की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि प्रवाहमयी संस्कृत हिन्दी का जो स्वरूप, हमें वाजपेयीजी में देखने को मिलता है वह प्रेमचन्दजी की भाषा से बिल्कुल भिन्न है और अधिक साहित्यिक है। भाषा में प्रायः कवित्व की भी झलक देखने को मिल जाती है। वाजपेयीजी कहीं विचारक के रूप में और कहीं कवि के रूप में, भाषा के प्रवाह में जो एक परिवर्तन करते चलते हैं, वह उनकी अपनी एक और विशेषता है। कथोपकथन में सजीवता और स्वाभाविकता है। यद्यपि कथावस्तु का मेल कहीं-कहीं प्रयत्न-साध्य और अस्वाभाविक सा भी दिखाई देता है किन्तु आँधी, पानी और तूफानों से घिरे होने पर भी, पग-पग पर आर्थिक संकटों से उलझते और जूझकर उन पर विजयी हो, द्विगुणित उत्साह के साथ निरन्तर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी हिन्दी के सामाजिक उपन्यासकारों में अद्वितीय हैं।

श्रीयशोविमलानन्द

पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी हिन्दी-साहित्य के अनुपम कलाकार हैं। उनकी साहित्यिक सेवा किसी से छिपी नहीं है। वाजपेयीजी के इस साहित्यिक अभिनन्दन के उपलक्ष में मैं उनके चरणों में श्रद्धासहित प्रणाम अर्पित करता हूँ।

श्रीविकास वाजपेयी

मैं स्वनामधन्य साहित्यकार पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के व्यक्ति और साहित्य दोनों का पुराना भक्त हूँ। उनकी इस पचपनवीं वर्ष गाँठ के अवसर पर मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

श्रीइच्छाशङ्कर दुबे

मैं साहित्यकार पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के सम्पर्क में जब से आया हूँ उनकी दो बातों ने मुझे विशेष प्रभावित किया है। प्रथम उनके स्वभाव की सरलता है। वह साधारण से साधारण व्यक्ति से भी बहुत विनम्रता और प्रेम से बात करते हैं। अपरिचित व्यक्ति उनसे बात करते समय यह अनुभव नहीं करता है कि वह उसके पूर्व परिचितों में नहीं हैं। दूसरा आकर्षण उनकी भाषण कला में है। मुझे दो-चार बार उनके साहित्यिक भाषणों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि संभाषण की उनमें असाधारण प्रतिभा है। श्रोताओं को अपनी सारगर्भित वाणी से मन्त्रमुग्ध करना अच्छी तरह जानते हैं। ऐसे महान साहित्यिक के चरणों में मैं भी अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

मुद्रक :—पं० लालमणि शर्मा, माडर्न प्रेस, जनरलगंज, कानपुर।